MAED-11

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम विकास

(Curriculum Development)

MAED-11

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम विकास
Curriculam Development

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक एवं समन्वयक

संयोजक

डॉ. दामीना चौधरी
सहआचार्य,शिक्षा
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

सदस्य

- **प्रो. सोहन वीर सिंह चौधरी**
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली
- **प्रो. मंजूलिका श्रीवास्तव**
  दूरस्थ शिक्षा परिषद
  इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
- **प्रो. एस.पी. मल्होत्रा**
  कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
- **डॉ. अनिल शुक्ला**
  लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
- **प्रो. डी.आर. गोयल**
  एम.एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा, गुजरात

सम्पादन एवं पाठ्यक्रम-लेखन

संपादक

डॉ. रीटा अरोड़ा
अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

पाठ लेखक

- **डॉ. सुनीता भार्गव**
  संजय टी.टी. कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. अंशु भाटिया**
  जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर
- **डॉ. कुसुमलता यादव**
  बियानी गर्ल्स टी.टी. कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. शकुंतला शर्मा**
  राजश्री महिला टी.टी. कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. सुरजीत**
  वनस्थली विद्यापीठ वि.वि. टोंक
- **डॉ. यदु शर्मा**
  सुबोध पी.जी. टी.टी. कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. ओ.पी. शर्मा**
  शा.गो.ला. काबरा शि.प्र. महा., जोधपुर
- **डॉ. मुरलीधर मिश्रा**
  वनस्थली विद्यापीठ वि.वि. टोंक
- **डॉ. अजय सुराणा**
  वनस्थली विद्यापीठ वि.वि. टोंक
- **डॉ. मधु माथुर**
  वनस्थली विद्यापीठ वि.वि. टोंक
- **डॉ. महेश कुमार गंगल**
  वनस्थली विद्यापीठ वि.वि. टोंक
- **डॉ. मीनू अग्रवाल**
  श्री अग्रसेन पी.जी. टी.टी. कॉलेज, जयपुर
- **डॉ. अशोक कुमार सिडाना**
  श्री अग्रसेन पी.जी. टी.टी. कॉलेज, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो. (डॉ.) अनाम जेटली**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक(शैक्षणिक)	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन : जुलाई 2009 ISBN-13/978-81-8496-102-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

।व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम विकास

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	पाठ्यक्रम की अवधारणा, लक्ष्य एवं उद्देश्य और व्यक्तित्व से इसका सम्बन्ध	6
2.	पाठ्यक्रम विकास-प्रक्रिया एवं सिद्धान्त	17
3.	पाठ्यक्रम विकास का इतिहास	28
4.	पाठ्यक्रम के निर्धारक आधार	37
5.	पाठ्यक्रम मे विचारणीय दार्शनिक विचार : दर्शन एक पाठ्यक्रम बल के रूप में, प्रगतिवादी, पुनर्निर्माणवादी, आधारभूतवाद एवं प्रगतिवाद के अनुसार पाठ्यक्रम मूल्यों एवं पाठ्यक्रम के बीच सम्बन्ध	59
6.	पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार : मनोविज्ञान एक पाठ्यक्रम बल के रूप में, साहचर्यवाद एवं क्षेत्र सिद्धान्त के सन्दर्भ में अधिगम के अधिनियमों की उपयोगिता	71
7.	पाठ्यक्रम में विचारणीय सामाजिक आधार : पाठ्यक्रम के माध्यम से संस्कृति : भारत मे सामाजिक परिवर्तन (विशेष रूप से विज्ञान एवं तकनीकी के सन्दर्भ में) एवं इसकी पाठ्यक्रम मे निहितार्थ	89
8.	पाठ्यक्रम आकल्पन एवं संगठन : आकल्पन के अवयव एवं स्रोत, पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त, पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन में पाठ्यचर्या संगठन की विधियाँ	104
9.	पाठ्यक्रम अभिकल्प : प्रकार एवं वर्गीकरण	122
10.	पाठ्यक्रम निर्माण : विभिन्न मॉडल एवं पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त	136
11.	पाठ्यक्रम मूल्यांकन : मूल्यांकन की अवधारणा, आवश्यकता एवं महत्व	148
12.	पाठ्यक्रम मूल्यांकन के प्रतिमान पाठ्यक्रम विकास के मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ एवं भारत मे पाठ्यक्रम अनुसंधान	163
13.	विभिन्न शिक्षा आयोगों के अनुसार पाठ्यक्रम विकास के सम्बन्ध मे सिफ़ारिशें / सुझाव	179

इकाई 1

पाठ्यक्रम की अवधारणा, लक्ष्य एवं उद्देश्य और व्यक्तित्व से इसका संबंध

(Concept, Aims & Objectives of Curriculum, Its relation with Personality)

इकाई की संरचना (Structure of the Unit)

1.0 उद्देश्य (Objectives)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

- 1.1.1 पाठ्यक्रम का अर्थ(Meaning of Curriculum)
- 1.1.2 पाठ्यक्रम की परिभाषा(Definition of Curriculum)
- 1.1.3 पाठ्यक्रम,पाठ्यवस्तु एवं पाठ्यचर्या (Curriculum, Syllabus and Course of Study)
- 1.1.4 पाठ्यक्रम की आवश्यकता और महत्व (Need and Importance of Curriculum)

1.2 पाठ्यक्रम के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims and Objectives of Curriculum)

- 11.1 पाठ्यक्रम का क्षेत्र (Scope of Curriculum)
- 1.2.2 पाठ्यक्रम के उद्देश्यों से संबंधित क्षेत्र (Related Aims of Curriculum)
- 1.2.3 पाठ्यक्रम के विभिन्न भेद (Different types of Curriculum)

1.3 व्यक्तित्व पर आधारित पाठ्यक्रम (Personality Based Curriculum)

- 1.3.1 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum)
- 1.3.2 व्यक्तित्व एवं पाठ्यक्रम का संबंध (Relation between Personality and Curriculum)

1.4 सारांश (Summary)

1.5 सन्दर्भ ग्रन्थ (Reference)

1.0 उद्देश्य(Objectives)

पाठ्यक्रम शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन है । इसमें विचार-प्रधान विषयों को विशेष स्थान दिया जाता है । पाठ्यक्रम द्वारा बालकों में कला, साहित्य, दर्शन, धर्म, नीति-शास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान, संगीत आदि विषयों का विकास किया जा सकता है । बालकों की रूचियों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए ।

शिक्षा ज्ञान प्रदान करने, कौशलों का विकास व अभिरूचि-अभिवृत्ति एवं मूल्यों का प्रतिपादन करने की एक त्रिपदीय प्रक्रिया है । लेकिन वर्तमान समय में यह ज्ञान तक ही सीमित है और यह भी संतोषजनक नहीं है । आज पाठ्यक्रम में व्यावहारिक ज्ञान की अपेक्षा पुस्तकीय ज्ञान पर बल दिया जाता है । इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि-

- पाठ्यक्रम का अर्थ जान सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के मुख्य कार्य जान सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम की परिभाषा समझ सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के व्यापक कार्यो को पहचान सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के क्षेत्र को पहचान सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु व पाठ्यचर्या के अन्तर को पहचान सकेंगे ।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है, इसके द्वारा मानव के व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन एवं परिमार्जन होता है । विद्यालय में जो कुछ भी कक्षा एवं कक्षा के बाहर प्रदान किया जाता है, उसका एक निश्चित उद्देश्य होता है एवं उसे किसी माध्यम द्वारा ही पूरा करना पड़ता है । बालक के व्यवहार में निर्दिष्ट परिवर्तन का साधन पाठ्यक्रम है । पाठ्यक्रम शिक्षा का औपचारिक माध्यम है जो विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन करने में सक्षम है ।

1.1.1 पाठ्यक्रम का अर्थ (Meaning of Curriculum)

पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी भाषा के 'करीक्यूलम' शब्द का रूपान्तर है । करीक्यूलम शब्द लैटिन भाषा से अंग्रेजी भाषा में लिया गया है । यह लैटिन भाषा के 'कुर्रेर' शब्द से बना है । कुर्रेर शब्द का अर्थ होता है, 'दौड़ का मैदान', दूसरे शब्दों में करीक्यूलम वह क्रम है जिस से किसी व्यक्ति को अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में सहायता मिलती है । इस प्रकार पाठ्यक्रम वह साधन है, जिसके द्वारा शिक्षा व जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है । पाठ्यक्रम अध्ययन का निश्चित एवं तर्कपूर्ण क्रम है, जिसके माध्यम से विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वह नवीन ज्ञान एवं अनुभव को ग्रहण करता है।

1.1.2 पाठ्यक्रम की परिभाषा (Defination of Curriculum)

पाठ्यक्रम की सर्वमान्य परिभाषाएँ निम्नांकित हैं -

लबिट - उच्चतर जीवन के लिए प्रतिदिन और चौबीस घण्टे की जा रही समस्त क्रियाएँ पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आ जाती है ।

ले - 'पाठ्यक्रम का विस्तार वहाँ तक है जहाँ तक जीवन का' ।

बाल्टर एस. मुनरो - पाठ्यक्रम को किसी विद्यार्थी द्वारा लिये जाने वाले विषयों के रूप में परिभाषित नहीं किया जाना चाहिए । पाठ्यक्रम की कार्यात्मक संकल्पना के अनुसार इसके अन्तर्गत अनुभव आ जाते है जो विद्यालय में शिक्षा की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं ।

ब्लाटंस - पाठ्यक्रम को क्रिया एवं अनुभव के परिणाम के रूप में समझा जाना न कि अर्जित किये जाने वाले ज्ञान और संकलित किये जाने वाले तथ्यों के रूप में । विद्यालय जीवन के अंतर्गत विविध प्रकार के कलात्मक शारीरिक एवं बौद्धिक अनुभव तथा प्रयोग सम्मिलित रहते हैं।

जॉन डीवी - सीखने का विषय या पाठ्यक्रम, पदार्थो, विचारों और सिद्धान्तों का चित्रण है जो निरन्तर उद्देश्यपूर्ण - क्रियान्वेषण से साधन या बाधा के रूप में आ जाते हैं ।

फ्राबेल - पाठ्यक्रम सम्पूर्ण मानव जाति के ज्ञान एवं अनुभव का प्रतिरूप होना चाहिए।

विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं का विश्लेषण करने से पता चलता है कि इन का सार माध्यमिक शिक्षा आयोग के द्वारा परिभाषा में है ।

माध्यमिक शिक्षा आयोग - पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैद्धान्तिक विषयों से नहीं है जो विद्यालयों में परम्परागत रूप से पढाये जाते हैं बल्कि इसमें अनुभवों की वह सम्पूर्णता भी सम्मिलित होती जिनको विद्यार्थी विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला, खेल के मैदान तथा शिक्षक एवं छात्रों के अनेक अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है । इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम हो जाता है जो छात्रों के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करता है और उनके सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता देता है ।

1.1.3 पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु, पाठ्यचर्या (Curriculum Syllabus and Course of Study)

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम के लिए केरीक्यूलम के साथ-साथ सिलेबस तथा कोर्स ऑफ स्टडी शब्दों का प्रयोग किया जाता है । लेकिन मूल रूप से इन तीनों शब्दों में अन्तर है । जब तक पाठ्यक्रम शब्द पाठ्य विषयों के सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया जाता रहा तब तक ये तीनों शब्द प्राय: समानार्थी माने जाते रहे, लेकिन आज इसकी व्यापकता होने से इनमें भिन्नता आ गई है ।

विद्यालयी जीवन में विद्यार्थी द्वारा प्राप्त अनुभव पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं तथा जिनमें कक्षा के अन्दर व बाहर आयोजित की जाने वाली पाठ्य व पाठ्येत्तर क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

Syllabus पाठ्यवस्तु पूरे शैक्षिक सत्र के दौरान विविध विषयों में शिक्षक द्वारा छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी प्रस्तुत करती है लेकिन पाठ्यक्रम यह बताता है कि शिक्षक किस प्रकार की शैक्षिक क्रियाओं के द्वारा पाठ्यवस्तु की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा । अन्य शब्दों में पाठ्यवस्तु शिक्षण की विषयवस्तु का निर्धारण करती है ओर पाठ्यक्रम उसे देने के लिए प्रयुक्त विधि का ।

हेनरी हरेप के अनुसार - पाठ्यवस्तु केवल मुद्रित संदर्शिका है जो यह बताती है कि छात्र को क्या सीखना है? पाठ्यवस्तु की तैयारी पाठ्यवस्तु विकास के कार्य का एक तर्क सम्मत सोपान है ।

पाठ्यवस्तु का संबंध ज्ञानात्मक पक्ष के विकास से होता है जबकि पाठ्यक्रम का संबंध बालक के सम्पूर्ण विकास से होता है ।

पाठ्यचर्या (Course of Study)

यह शब्द प्रचलित शब्दों में नया शब्द है । इसका प्रयोग किसी पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध, स्पष्ट, विषयवार एवं विस्तृत स्वरूप के लिए किया जाता है । पाठ्यचर्या में अन्तर्वस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोग के लिए सहायक सामग्री एवं कार्य विधि सम्मिलित होते हैं ।

'गुड' के अनुसार पाठ्यचर्या किसी कक्षा को किसी विषय के शिक्षण में सहायता के लिए किसी विद्यालय द्वारा व्यवस्था के लिए तैयार किया जाता है ।

पाठ्यचर्या में पाठ्यक्रम के लक्ष्य, अपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री, सहायक सामग्री, शिक्षण विधियाँ, सहगामी क्रियाएँ आदि सम्मिलित किए जाते हैं ।

वर्तमान समय मे पाठ्यक्रम से संबंधित आधुनिक पदावली (Modern Terminology related to Curriculum)

1. कोर करीक्यूलम या केन्द्रीयभूत सामान्य पाठ्यक्रम
2. कोरिलेशन या सुसम्बद्धता (Correlation)
3. फ्यूजन या सम्मिश्रण (Fusion)
4. इन्टीग्रेशन या एकीकरण (Integration)
5. इकाई (Unit)
6. क्रियात्मक अनुसन्धान (Action Research)

1.1.4 पाठ्यक्रम की आवश्यकता और महत्त्व (Need and Importance of Curriculum)

पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंश है । पाठ्यवस्तु को निश्चित किये बिना पढ़ाने के समय और विधि की बात करना अनुपयोगी है । पाठ्यक्रम एक वाहक है जिसके द्वारा छात्र शिक्षा के निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम होता है । यह मुख्यत: शिक्षा की प्रवृत्तियों और दर्शन में परिवर्तन का स्वाभाविक रूप से अनुसरण करके प्रतिबिंबित करता है । पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया में एक धुरी का कार्य करता है और निःसंदेह यह विद्यालय का हृदय है । इसके अभाव में शिक्षण कार्य अर्थहीन है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
2. पाठ्यक्रम की कोई दो भाषाएँ लिखिए।
3. पाठ्यक्रम पाठ्यवस्तु व पाठ्यचर्या के अन्तर का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये।
4. पाठ्यक्रम की आवश्यकता व महत्व पर प्रकाश डालें।

1.2 पाठ्यक्रम के लक्ष्य एवं उद्देश्य (Aims and Objectives of Curriculum)

पाठ्यक्रम शिक्षक और छात्र के समक्ष सम्पूर्ण विश्व ज्ञान के रूप में विद्यमान है । पाठ्यक्रम का निर्माण शिक्षा के उद्देश्यों पर आधारित होता है । शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है

तथा पाठ्यक्रम इन उद्देश्यों की पूर्ति का महत्त्वपूर्ण साधन है । अत: यह निर्विवाद तथ्य है कि पाठ्यक्रम कुछ उद्देश्यों पर आधारित होता है किन्तु यह उद्देश्य कभी-कभी बिल्कुल निश्चित एवं स्पष्ट होते है और कभी अस्पष्ट से दिखते हैं । पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण कुछ मूल्यों को लेकर किया जाता है जिन्हें पाठ्यक्रम का आधार माना जाता है । पाठ्यक्रम निर्माणकर्त्ताओं को यह विचार करना परम आवश्यक होता है कि पाठ्यक्रम व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए महत्वपूर्ण साधन हैं ।

1.2.1 पाठ्यक्रम का क्षेत्र (Scope of Curriculum)

सामान्यतया विद्यालयों में विद्यार्थियों को शिक्षित करने हेतु जो कुछ किया जाता है, उसे पाठ्यक्रम कहते हैं । पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित ज्ञान का स्वरूप एवं विस्तार अनिवार्य रूप से संबंधित समाज द्वारा मान्य शैक्षिक उद्देश्यों पर निर्भर करता है । इसीलिए देश-काल की भिन्नता के अनुसार पाठ्यक्रम में भिन्नता पायी जाती है । वैदिक काल में शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य ईश्वर आराधना, धार्मिक भावना को दृढ़ करना, बालकों का उच्चरित्र निर्माण एवं उनके व्यक्तित्व का विकास करना था । उस समय पर विद्या अर्थात् धार्मिक साहित्य का अध्ययन व अपरा विद्या अर्थात् लौकिक एवं सांसारिक ज्ञान दोनों का ही समावेश था । उस समय शिक्षा के केन्द्र गुरूकुल थे और शिक्षार्थी गुरू एवं परिवार के सदस्य के रूप में रहते थे । "ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ गुरू एवं गुरू पत्नी की सेवा, आश्रम की सफाई, पशुओं की देखभाल, भिक्षाटन के माध्यम से कर्त्तव्यपालन, सेवाभाव, विनयशीलता व अन्य चारित्रिक गुणों की शिक्षा प्राप्त करता था ।"इस तरह पठन-पाठन के साथ-साथ विद्यार्थियों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के समुचित अवसर प्राप्त होते थे । समय परिवर्तन के साथ-साथ पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन होते रहे हैं तथा इसमें कभी व्यापकता व कभी संकीर्णता आती रही है । जैसे भारत में कुछ समय पहले तक अध्ययन व खेलकूद प्रवृत्ति को एक-दूसरे का विरोधी माना जाता था, लेकिन बाद में जब इसका आभास हुआ कि विद्यालयों से निकले हुए युवक वास्तविक जीवन में असफल भी हो रहे हैं फिर इस धारणा का विकास हुआ कि जीवन की तैयारी के लिए पढ़ना, लिखना ही सब कुछ नहीं है । मनोवैज्ञानिक विकास से भी बालक की मूल प्रवृत्तियों में विकास सम्भव है और अध्ययन मात्र से बालक का पूर्ण विकास असम्भव है ।

इसलिए विद्यालयों में पाठ्य विषयों के साथ-साथ ऐसी प्रवृत्तियों का समावेश भी किया जाने लगा जिनसे बालकों में बौद्धिक ज्ञान के साथ-साथ स्वास्थ्य, सौन्दर्य बोध, सृजनात्मकता तथा अन्य महत्त्वपूर्ण गुणों का विकास हो सके ।

पाठ्यक्रम का क्षेत्र निरन्तर व्यापकता की ओर बढ़ रहा है तथा इसके अन्तर्गत विविध प्रवृत्तियों का समावेश होता चला आ रहा है । इसके क्षेत्र के विस्तार की गति वर्तमान समय में इतनी तेज है कि उसकी सीमा को चिह्नांकित करते ही उसमें कई अन्य प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है ।

लबिट - उच्चतर जीवन के लिए प्रतिदिन और चौबीसों घण्टे की जा रही समस्त क्रियाएँ पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आ जाती हैं ।

आज विद्यालयों में आयोजित की जाने वाली सभी प्रवृतियाँ पाठ्यक्रम का अंग होती है अत: पाठ्यक्रम के विस्तार क्षेत्र का निर्धारण करना भी उतना ही कठिन कार्य है ।

1.2.2 पाठ्यक्रम के उद्देश्यों से संबंधित क्षेत्र (Related Aims of Curriculum)

पाठ्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्न है-

- **सद्चरित्र तथा उच्च चरित्र का निर्माण -** बालक में सद्चरित्र का निर्माण करना पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य है । उच्च चरित्र द्वारा बालकों में नैतिक जीवन के लिए नींव डालना ही पाठ्यक्रम का उद्देश्य है जिससे बालक समाज-कल्याण के लिए अपना योगदान दे सके ।
- **उत्तम स्वास्थ्य** - पहला सुख निरोगी काया कथन के महत्त्व को ध्यान में रखकर ही विद्यालयों में पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है । स्वस्थ शरीर में ही मस्तिष्क का निर्माण होता है । दार्शनिक का यह कथन भी पाठ्यक्रम के महत्व को स्पष्ट करता है ।
- **राष्ट्रीय विरासत का संरक्षण -** राष्ट्रीय विरासत का संरक्षण करना भी पाठ्यक्रम का उद्देश्य है । राष्ट्रीय विरासत के प्रति श्रद्धा व निष्ठा रखना तथा व्यक्तित्व के उन्नयन का भाव उत्पन्न करना इसका अहम उद्देश्य है ।
- **ज्ञान एवं कार्य दक्षता -** बालकों में व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर ज्ञान देना एवं कार्य में दक्षता उत्पन्न करना ।

1.2.3 पाठ्यक्रम के विभिन्न भेद (Different types of Curriculum)

वर्तमान समय में शिक्षा पद्धति में अनेकानेक परिवर्तन होने से पाठ्यक्रम के मूल स्वरूप और सिद्धान्तों में भी परिवर्तन हुये है । आज पाठ्यक्रम का आधुनिक सिद्धान्त परम्परागत सिद्धान्तों से पृथक है । शिक्षण के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में परिवर्तन होने से पाठ्यक्रम को एक नई दिशा प्राप्त हुई है । पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकार निम्न हैं-

1. अनुभव पाठ्यक्रम
2. जीवन केन्द्रित या संतुलित पाठ्यक्रम
3. कार्य परक पाठ्यक्रम
4. विषय केन्द्रित या परम्परागत पाठ्यक्रम

स्वमूल्यांकन (Self Evaluation)

1. पाठ्यक्रम के क्षेत्र को स्पष्ट कीजिए ।
2. पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए ।
3. पाठ्यक्रम के मुख्य भेदों की विवेचना कीजिए ।

1.3 व्यक्तित्व पर आधारित पाठ्यक्रम(Curriculum based on Personality)

पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय व्यक्तित्व पर आधारित उद्देश्यों का निर्माण करना चाहिए । क्योंकि पाठ्यक्रम का आधार निम्न प्रकार से होगा तो निश्चय ही छात्रों का व्यक्तित्व प्रभावित होगा ।

1. पाठ्यक्रम का आधार दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार निर्धारित करना चाहिए, जिससे बालकों में शाश्वत मूल्यों व आदर्शो जैसी विचारधारा विकसित हो ।
2. पाठ्यक्रम का आधार मनोवैज्ञानिक होना चाहिए क्योंकि छात्रों का व्यक्तित्व रूचियों, स्वाभाविक प्रवृत्तियों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, क्षमताओं, योग्यताओं, संवेग आदि के अनुसार प्रभावित होता
3. पाठ्यक्रम निर्माण का आधार सामाजिकता की भावना को विकसित करने में सहायक होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । अत: बालक के व्यक्तित्व को इतिहास, समाजशास्त्र, भूगोल आदि विषय प्रभावित करते हैं ।

1.3.1 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum)

पाठ्यक्रम के निर्धारण में दार्शनिक विचारधारा, सामाजिक मूल्यों, विश्वासों एवं परम्पराओं, राजनीतिक विचारधारा, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की मुख्य भूमिका होती है ।

पाठ्यक्रम के निर्धारण में सामाजिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा प्रवृतियों के महत्त्व के आधार पर अधोलिखित सिद्धान्तों का अनुसरण करना चाहिए:-

1. जीवन से संबंधित होने का सिद्धान्त ।
2. शैक्षिक उद्देश्यों से अनुरूपता का सिद्धान्त ।
3. बाल-केन्द्रीयता का सिद्धान्त ।
4. रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त ।
5. खेल एवं कार्य की क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त ।
6. अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त ।
7. जीवन सम्बन्धी क्रियाओं एवं अनुभवों का सिद्धान्त ।
8. सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त ।
9. व्यक्तिगत भिन्नता व लचीलेपन का सिद्धान्त ।

1. जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त या उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Relation- ship with Life or Utility) - इस सिद्धान्त के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों, क्रियाओं एवं वस्तुओं का समावेश करना चाहिए जिनसे बालकों के वर्तमान जीवन का

सम्बन्ध हो तथा वे बालकों के भावी जीवन के लिए उपयोगी हों । इन उपयोगी विषयों, क्रियाओं व वस्तुओं द्वारा ही बालक जीवन में सफल हो सकता है ।

2. शैक्षिक उद्देश्यों से अनुरूपता का सिद्धान्त (Principle of Confirmity with Aims of Education) - यह पाठ्यक्रम का मुख्य सिद्धान्त है । इसके अनुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण शिक्षा के उद्देश्यों पर निरन्तर ध्यान रखकर करना चाहिए । इन उद्देश्यों के अनुकूल ही विषयों व क्रियाओं का समावेश करना चाहिए । शिक्षा का सार्वभौमिक उद्देश्य है, बालक का सर्वांगीण विकास करना । इसलिए पाठ्यक्रम का निर्माण इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही होना चाहिए।

3. बाल-केन्द्रीयता का सिद्धान्त (Principle of Child Centredness) - मनोविज्ञान के अनुसार शिक्षा बाल-केन्द्रित होनी चाहिए । इसलिए वह बाल-केन्द्रित शिक्षा पर अत्यधिक बल देता है । न केवल शिक्षा, बल्कि पाठ्यक्रम भी बाल केन्द्रित होना चाहिए अर्थात् पाठ्यक्रम बालकों की रूचियों, आवश्यकताओं, योग्यताओं, क्षमताओं एवं मनोवृत्तियों के अनुरूप होना चाहिए । इनके अनुसार बालकों को विविध वर्गों में बाँटा जा सकता है, जैसे-विज्ञान में रुचि रखने वाले छात्र, साहित्यिक प्रवृत्ति या शारीरिक प्रवृत्ति में रुचि रखने वाले छात्र आदि । इनके लिए पाठ्यक्रम नियोजन भी इन्हीं रुचियों व प्रवृत्तियों के अनुरूप किया जा सकता है जिससे समुचित विकास हो सके ।

4. रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त (Principle of utilising of Constructive Powers) - बालकों को रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियाँ जन्म से प्राप्त होती है । पाठ्यक्रम निर्माण में उनकी इन प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए । जिससे उनकी इन शक्तियों का अधिक उपयोग किया जा सके । इसके फलस्वरूप बालकों को प्रोत्साहन व निर्देशन देना चाहिए ।

5. खेल एवं कार्य की क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Interrelation of Play and Work activities) - खेल बालक के लिए महत्त्वपूर्ण है इसलिए वह उसमें अत्यधिक आनन्द की अनुभूति करता है । पाठ्यक्रम का निर्माण इस बात की विशेष सावधानी रखनी चाहिए कि ज्ञान सम्बन्धी क्रियाओं द्वारा भी बालकों को खेल जैसा ही आनन्द प्राप्त हो सके और अधिगम क्रिया सरल हो सके अर्थात् खेल के माध्यम से उन्हें सहज ज्ञान हो जाए ।

- Learning by Playing

6. अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त (Principle of totality of Experience) - पाठ्यक्रम निर्माण मानव जाति के हितों को ध्यान में रखकर करना चाहिए अर्थात् मानव जाति के अनुभवों की पूर्णता उसमें निहित होनी चाहिए । पाठ्यक्रम में परम्परागत तरीके से पढाये जाने वाले सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ उन अनुभवों को भी स्थान देना चाहिए जिससे बालक स्वयं विविध क्रियाओं के माध्यम से ज्ञान प्राप्त कर सके । (पाठ्यक्रम का अर्थ सैद्धान्तिक विषयों से नहीं है, बल्कि इसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होती हैं) ।

(Curriculum does not mean only the academics subjects but it incl2222udes the totality of experience. (Secondary Education Commission Report)

7. जीवन सम्बन्धी क्रियाओं एवं अनुभवों का सिद्धान्त (Principle of Inclusion of Life Activities) - जीवन में पूर्णता प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य है अर्थात् पाठ्यक्रम में उन समस्त अनुभवों व क्रियाओं को स्थान देना चाहिए जो बालक के सर्वांगीण विकास में सहायक हैं। लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण के विकास के लिए पाठ्यक्रम में लोकतान्त्रिक पद्धति को ग्रहण एवं धारण करना चाहिए ।

8. सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of`Continual Process of Evaluation) - प्रत्येक राष्ट्र की शिक्षा को उसका समाज, राजनैतिक स्थिति, वैज्ञानिक स्थिति एवं प्रौद्योगिक प्रगति प्रभावित करती है । इसलिए पाठ्यक्रम में देश काल व परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन अपेक्षित है ।

9. व्यक्तिगत भिन्नता व लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of 'Individual Difference) पाठ्यक्रम का निर्माण व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर करना चाहिए । इसके अभाव में शिक्षा के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि सभी बालकों की योग्यता, क्षमता व मनोवृत्तियाँ एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। अत: समान पाठ्यक्रम की अवधारणा ठीक नहीं है, इसलिए पाठ्यक्रम में विविधता व लचीलापन होना चाहिए जिससे समयानुसार उसमें परिवर्तन किया जा सके ।

इस सन्दर्भ में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने ठीक कहा है -

There should be enough of variety and elasticity in the curriculum to allow for individual differences and adaptation to individual needs and interest.

1.3.2 व्यक्तित्व एवं पाठ्यक्रम का सम्बन्ध (Relation between Personality and Curriculum)

पाठ्यक्रम बालक के व्यक्तित्व को विकसित करने में सहायक होता है । इसके द्वारा बालक की वांछित दिशा में प्रगति संभव है तथा उसमें सामाजिक, व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक भाव उत्पन्न होते है । बालक के चहुँमुखी विकास में उसके परिवार, परम्पराएँ, शिक्षक तथा पाठ्यक्रम की मुख्य भूमिका होती है जो उसके व्यक्तित्व को विकसित करने में अपना सहयोग प्रदान करती है । पाठ्यक्रम द्वारा बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले मुख्य आधार निम्न हैं-

1. व्यक्तित्व विकास में पाठ्यक्रम का दार्शनिक आधार - पाठ्यक्रम के निर्माण में दर्शन एक मेरुदण्ड का कार्य करता है । दर्शन पाठ्यक्रम को पूर्ण सहारा प्रदान करता है तथा एक निश्चित दिशा में बालक के व्यक्तित्व का विकास करता है । किसी विषय की उपयोगिता व अनुपयोगिता व्यक्ति के दर्शन पर निर्भर होती है ।

इस सन्दर्भ में महान दार्शनिक बालकों को कहानी न पढ़ने पर बल देते से क्योंकि वे बालकों में सत्य की प्रवृत्ति का संचार करना चाहते थे । दर्शन के अभाव में पाठ्यक्रम निष्प्राण प्रतीत होता है । इस सन्दर्भ में रस्क महोदय का कथन उल्लेखनीय है कि,

"दर्शन पर पाठ्यक्रम का संगठन जितना आधारित है उतना शिक्षा का कोई अन्य पक्ष नहीं है ।" अत: बालक के आध्यात्मिक विकास के लिए पाठ्यक्रम में साहित्य कला, धर्म, दर्शन, संगीत आदि विषयों का समावेश अपेक्षित है तथा इसमें मूल्यों, आदर्शो, विश्वासों एवं परम्पराओं को मुख्य स्थान देना चाहिए ।

2. व्यक्तित्व विकास में पाठ्यक्रम का मनोवैज्ञानिक आधार - मनोविज्ञान बालक को पूर्णतया प्रभावित करता है । मनोविज्ञान के मतानुसार शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिए । आधुनिक शिक्षा में प्रचलित पाठ्यक्रम मनोविज्ञान से पूर्णतया प्रभावित है जो बालक के पूर्ण विकास में सहायक है । पाठ्यक्रम पर मनोविज्ञान का प्रभाव अनवरत पड़ रहा है । मनोवैज्ञानिक उद्देश्यों को मस्तिष्क में रखकर ही पाठ्यक्रम का निर्माण करना श्रेयस्कर है क्योंकि पाठ्यक्रम बालक के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक व सांस्कृतिक विकास में साधक व बाधक हो सकता है । अत: पाठ्यक्रम निर्माण मनोविज्ञान के विविध उद्देश्यों यथा-व्यक्तिगत भिन्नता, अभिरुचि, अभिप्रेरणा को ध्यान में रखकर होना चाहिए ।

3. व्यक्तिगत विकास में पाठ्यक्रम के सामाजिक आधार - "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है,`` अरस्तु का यह कथन मानव जीवन में समाज के महत्व को पूर्णतया स्पष्ट करता है ।

“समाज में रहकर ही बालक में सामाजिकता व व्यावहारिकता जैसे गुणों का विकास सम्भव है ।

सामाजिकता के अभाव में बालक स्वयं को समायोजित करने में असमर्थ होता है । बालक के लिए 'विद्यालय समाज का एक लघु रूप होता है ।" फ्राबेल का यह कथन युक्ति संगत है । इसके द्वारा ही शिक्षा में समाजशास्त्रीय अवधारणा का बीजारोपण हुआ ।

बालक की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को पूरा करने वाले विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए । पाठ्यक्रम का विस्तार बालक की सामाजिक व व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए ।

1.4 सारांश (Summary)

वर्तमान समय में मनोविज्ञान के विकास से शैक्षिक मनोविज्ञान की भी प्रगति हुई है । अभियोग्यता, अभिरुचि, अभिवृत्ति, निष्पत्ति, क्षमता आदि के क्षेत्र में हुये अध्ययनों का भी पाठ्यक्रम पर प्रभाव पड़ा है । पाठ्यक्रम निर्माण में अधिगम प्रक्रिया के सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा व्यावहारिक एवं शैक्षिक पक्ष का भी मुख्य योगदान है । अधिगम के क्षेत्र में निरन्तर अनुसंधान ही पाठ्यक्रम को उन्नत बनाने में सहायक है । पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण के साथ-साथ व्यक्तिगत भिन्नता की समस्या के समाधान हेतु शिक्षण विधियों में भी विविधता अपेक्षित है । इसके लिए विभिन्न शैक्षिक विधियों जैसे - अभिक्रमित अनुदेशन, संग्रन्थन उपागम तथा कम्प्यूटर पर आधारित पाठों को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए ।

मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. व्यक्तित्व व पाठ्यक्रम के सम्बन्ध को विश्लेषित कीजिए ।
2. पाठ्यक्रम निर्माण के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए ।
3. व्यक्तित्व के विकास में पाठ्यक्रम का दार्शनिक आधार क्यों महत्वपूर्ण है ? स्पष्ट कीजिए।

4. बालक के व्यक्तित्व के विकास में मनोवैज्ञानिक आधार की विवेचना कीजिए ।

1.5 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. यादव, सियाराम - 1998 "पाठ्यक्रम विकास" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
2. सुखिया, एस. पी. 1985 "विद्यालय प्रशासन एवं संगठन" विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ।
3. शर्मा, आर.ए. 1990 "शिक्षा तकनीकी" इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ ।
4. शुक्ला, सफाया एवं शैदा 2005 "उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक" धनपतराय पब्लिशिंग कंपनी प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली ।

इकाई 1

पाठ्यक्रम विकास-प्रक्रिया एवं सिद्धांत (Curriculum Development-Its Process and Principles)

इकाई की संरचना (Structure of Unit)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया (Process of Curriculum)

2.2.1 शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण (Assessment of Education Needs)

2.2.2 शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण (Formulation of Education Objectives)

2.2.3 विषयवस्तु के चयन के मापदण्ड (Criteria of Content Selection)

2.2.4 विषयवस्तु का गठन (Organising the Content)

2.2.5 अधिगम अनुभवों का चयन (Selection of Learning Experiences)

2.2.6 पाठ्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluating the Curriculum)

2.3 पाठ्यक्रम विकास के सिद्धांत (Principles of Curriculum Development)

2.4 सारांश (Summary)

2.5 संदर्भ ग्रन्थ (References)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई को पढ्ने के पश्चात् आप-

- पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया तथा इसके सोपानों का विवेचन कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न सिद्धांतों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- अपने विद्यालय पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उपर्युक्त सिद्धांतों के संदर्भ से कर सकेंगे ।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

पाठ्यक्रम विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है । विद्यालय में उपलब्ध सभी संसाधन जैसे विद्यालय भवन, उपकरण, पुस्तकालय की पुस्तकें तथा अन्य शिक्षण सामग्री का एकमात्र उद्देश्य है-पाठ्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन में सहयोग देना । कक्षा की समस्त क्रियाएँ, पाठ्य सहगामी क्रियाकलाप तथा मूल्यांकन की समस्त प्रक्रिया विद्यालयी पाठ्यक्रम के परिणामस्वरूप ही नियोजित की जाती है । पाठ्यक्रम शैक्षिक प्रक्रिया का वह अंग हैं जो शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को अध्ययन एवं अध्यापन की दिशा प्रदान करता है ।

2.2 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Curriculum)

पाठ्यक्रम समाज की परम्पराओं, आकांक्षाओं, आदर्शो एवं मूल्यों का अनुसरण करता है। पाठ्यक्रम के माध्यम से समाज अपनी युवा पीढ़ी को वह सब हस्तान्तरित करना चाहता है, जो उसने सांस्कृतिक निधि के रूप में संचित कर रखा हैं, तथा भावी विकास के लिए आवश्यक दक्षताएँ तथा उपकरण प्रदान करता है । इस प्रक्रिया को समाजीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है जिसमें पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

जेनकिन तथा शिपयैन के अनुसार "पाठ्यक्रम किसी शैक्षिक प्रस्ताव का रूपांकन तथा क्रियान्वयन हैं जिसका शिक्षण तथा अधिगम किसी विद्यालय या संस्था में किया जा सके तथा जिसके लिए वह संस्था तीन स्तरों तार्किकता, क्रियान्वयन एवं प्रभाव की दृष्टि से उत्तरदायी भी हो ।"

फ्रोबेल के अनुसार - "पाठ्यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभवों का सार समझना चाहिए ।"

पाल हिल्ट के अनुसार - "उन सभी क्रियाओं के प्रारूप को जिनके द्वारा छात्र शैक्षिक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को प्राप्त कर लेंगे पाठ्यक्रम की संज्ञा दी जाती है ।"

इस प्रकार इन परिभाषाओं के आधार पर पाठ्यक्रम के महत्वपूर्ण पक्षों को निम्न बिन्दुओं में विभाजित किया जा सकता है जो कि प्रत्यक्ष रूप से पाठयक्रम की प्रक्रिया के आधारभूत तत्व भी हैं-

- पाठ्यक्रम सदैव पूर्व नियोजित होता है, इसमें निहित क्रियाओं को तत्काल विकसित नहीं किया जा सकता ।
- पाठ्यक्रम के चार प्रमुख आधार होते हैं - सामाजिक शक्तियाँ, स्वीकृत सिद्धांतों द्वारा प्रदत्त मानव विकास का ज्ञान, अधिगम का स्वरूप और ज्ञान का स्वरूप ।
- पाठ्यक्रम के लक्ष्य उससे सम्बन्धित शैक्षिक उद्देश्यों से स्पष्ट होते हैं । ये उद्देश्य साध्य है तथा स्वीकृत पाठ्यक्रम इन्हें प्राप्त करने का साधन है ।
- पाठ्यक्रम अध्यापक के अनुदेशन को नियोजित करने में सहायक होते हैं । बाल विकास की विभिन्न स्थितियों की समझ तथा विद्यार्थियों द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की क्षमता की जानकारी से एक शिक्षक पाठ्यक्रम में सम्मिलित अधिगम अनुभवों का नियोजन कर सकता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. पाठ्यक्रम को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिये ।
2. पाठयक्रम के पक्ष कौन-कौन से हैं? स्पष्ट कीजिये ।

2.2 पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया (Process of Curriculum Development)

पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य एक विशिष्ट कार्य है । इसके लिए इसमें प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों तथा दिए जाने वाले अधिगम अनुभवों और पाठ्यक्रम के विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा बालकों में लाए जाने वाले परिवर्तनों के मूल्यांकन की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए । पाठ्यक्रम विकास की सुनियोजित प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए हमें निम्न सोपानों का अनुपालन करना चाहिए-

- शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण
- शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण
- विषयवस्तु के चयन के मापदण्ड
- विषयवस्तु का गठन
- अधिगम अनुभवों का चयन
- पाठ्यक्रम का मूल्यांकन

इन सोपानों को हम इस चित्र द्वारा भी स्पष्ट कर सकते है ।

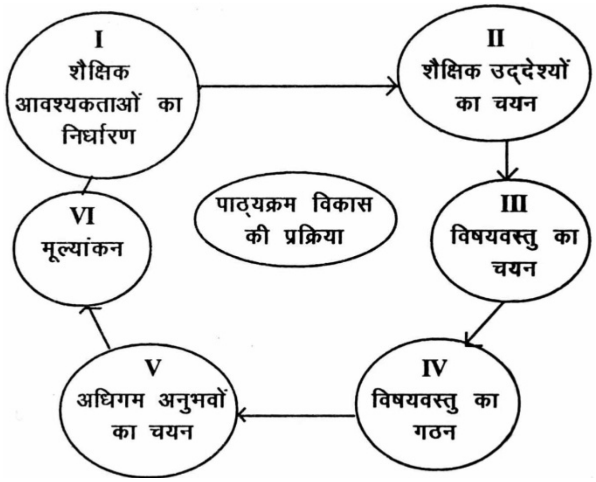

2.2.1 शैक्षिक का आवश्यकताओं का निर्धारण (Assesment of Educational Needs)

पाठ्यक्रम मूलरूप से एक नियोजित शैक्षिक कार्यक्रम हैं । इसे इसलिए तैयार किया जाता है कि हम समाज द्वारा स्वीकृत व्यवहार सीख सकें । इसे निश्चित करने से पहले यह तय करना अनिवार्य हैं कि समाज के सदस्यों की आवश्यकतायें क्या है । समाज शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर क्या पाना चाहता है । इस हेतु निम्न उपाय हैं-

- पाठ्यक्रम निर्माता विशेष सर्वेक्षण द्वारा क्षेत्रीय अध्ययन द्वारा शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण करें ।
- आवश्यकता निर्धारण, उपलब्ध आँकडों के यथा शिक्षा आयोगों की रिपोर्ट सरकारी नीतियाँ, आदि के विश्लेषण द्वारा किया जाये । पाठ्यक्रम निर्माण में विभिन्न प्रकार के आँकड़े उपयोगी मार्गदर्शन कर सकते है ।

उपरोक्त उपायों से पाठयक्रम निर्माता समाज की शैक्षिक आवश्यकताओं को जानकर शिक्षा व्यवस्था की सीमाओं और शक्तियों पर विचार करके प्राथमिकता क्षेत्रों की सूची तैयार कर सकते हैं, ताकि उपलब्ध साधनों का समुचित स्थान पर उपयोग किया जा सकें ।

2.2.2 शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण (Formulation of Educational Objectives)

समाज के यथार्थ शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाना है । उद्देश्य अपेक्षित उपलब्धियों को विशिष्टता व स्पष्टता प्रदान करते हैं । इन्हें निर्धारित करते समय निम्न तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए -

– उद्देश्यों का संबंध शिक्षा के विस्तृत लक्ष्यों से होना चाहिए जो उनका स्त्रोत है ।
– उद्देश्य विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार उपयोगी, अर्थपूर्ण और प्रासंगिक होने चाहिए ।
– उद्देश्य सुस्पष्ट होने चाहिए ।
– सभी उद्देश्य छात्रों की रूचि और आवश्यकताओं को पूरा करने वाले हो ।
– उद्देश्यों का वर्गीकरण सर्वमान्य विचार के अनुरूप व तार्किक होना चाहिये, जैसे डॉ० ब्लूम का वर्गीकरण, डॉ० मैगर का वर्गीकरण आदि ।
– उद्देश्यों का उपयुक्त वर्गीकरण विषयवस्तु और मूल्यांकन की दृष्टि से एक सार्थक पाठ्यक्रम के विकास में सहायक सिद्ध होता है ।
– उद्देश्यों पर समय-समय पर पुनर्विचार करना आवश्यक है । क्योंकि तीव्र गति से बदलते समाज में छात्रों की आवश्यकतायें, समाज की आकाक्षायें तीव्र गति से बदल रही हैं उसी के अनुरूप पाठ्यक्रम में बदलावों के प्रति समायोजन क्षमता होनी चाहिये ।

2.2.3 विषयवस्तु के चयन के मापदण्ड (Criteria for Content Selection)

पाठ्यक्रम विकास का प्रमुख कारक है विषयवस्तु का चयन । विषयवस्तु से हमारा अभिप्राय हैं - संकल्पनाओं, तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धांतों, सामान्यीकरण तथा अधिगम अनुभव। इस विषयवस्तु के चयन को यदि हम स्पष्ट करना चाहे, तो इसके कुछ मापदंड हमें दृष्टिगत रखने होंगें, जैसे -

– विषयवस्तु विद्यार्थियों को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनने में सहायक हो ।
– सीखी जाने वाली विषयवस्तु छात्रों के मूल विचारों, संकल्पनाओं और विशेषत: अधिगम योग्यताओं में महत्वपूर्ण योगदान देने वाली होनी चाहिए ।
– चयनित विषयवस्तु पाठ्यक्रम के उद्देश्यों और लक्ष्यों से संबंधित तथा दैनिक जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए ।
– अधिगम की विषयवस्तु छात्रों की व्यवसाय परिस्थितियों हेतु उपयोगी होनी चाहिए ।
– चयनित विषयवस्तु छात्रों, के व्यक्तित्व व बौद्धिक क्षमताओं (मानसिक स्तर और अभिरूचि) के अनुरूप हो ।
– विषयवस्तु ऐसी हों जिसे विद्यार्थी समझ सकें, अधिगम कर सकें, अनुभव कर सकें व उसका उपयोग कर सकें ।

- विषयवस्तु निर्धारकों को विषयवस्तु चयन करते समय तत्कालिक सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों को भी दृष्टिगत रखना होगा ।
- विषयवस्तु चयन हेतु उपलब्ध, साधन समाज और लागत को भी चयनकर्ता को ध्यान रखना आवश्यक है।

2.2.4 विषयवस्तु का गठन (Organising the Content)

पाठ्यक्रम के विषयवस्तु का चयन कर लेने के बाद उसका संगठन भी उचित प्रकार से करना आवश्यक है । क्योंकि पाठ्यक्रम मूल रूप से अधिगम की योजना है । उचित संगठन द्वारा ही शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है तथा विद्यार्थी अधिगम प्राप्ति की स्थिति प्राप्त कर सकता है । पाठ्यक्रम की विषयवस्तु का गठन करते समय निम्नलिखित पक्षों को ध्यान में रखना अनिवार्य हैं -

- **क्रमबद्धता (sequencing) -** पाठ्यक्रम में क्रमबद्धता का तात्पर्य चयनित विषयवस्तु को एक निश्चित क्रम में लिखना है । विषयवस्तु की क्रमबद्धता हेतु कुछ सिद्धांत शिक्षा के क्षेत्र में है । उनका पालन करना चाहिए जैसे - ज्ञात से अज्ञात की ओर, सरल से जटिल की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर आदि ।
- **निरन्तरता (Continuity) -** पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री में निरन्तरता हो, छात्र द्वारा पहले पढ़ी जाने वाली सामग्री सरल व उत्तरोतर जटिलता की ओर अग्रसर हो । अध्ययन सामग्री में निरन्तरता ही पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सकती है । ।
- **एकीकरण (Integration) -** विषयवस्तु के संगठन में यह तथ्य है कि विभिन्न चयनित विषयों की विषयवस्तु को एक दूसरे से कैसे सम्बद्ध किया गया है अर्थात एक क्षेत्र के तथ्यों, सिद्धांतों, अवधारणाओं को दूसरे क्षेत्र के तथ्यों से कैसे जोड़ा गया हैं, इस एकीकरण में विभिन्न विषयों की तर्क व मनोवैज्ञानिक विशेषता को भी ध्यान में रखना आवश्यक है ।

2.2.5 अधिगम अनुभवों का चयन (Selection of Learning Experience)

चयनित विषयवस्तु को प्रदान करने के लिए व शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए शिक्षण विधियों व क्रिया कलापों का आयोजन विद्यालय में किया जाता है । उनका पूर्व में चयन करना आवश्यक है । ताकि विद्यार्थी अधिकाधिक अधिगम अनुभव की स्थिति तक पहुँच सके, क्योंकि चयनित विषयवस्तु का प्रथम उद्देश्य उसका अधिगम विद्यार्थी को किस प्रकार हो सकेगा, इसी में निहित है । इसलिए इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता ।

- अधिगम अनुभव ही पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं ।
- अधिगम अनुभव ही विद्यार्थियों में तर्कशक्ति व चिंतन क्षमता का विकास करते है ।
- अधिगम अनुभव शिक्षक को विधियों के प्रयोग व शैक्षिक गतिविधियों के निर्धारण के निर्देश प्रदान करते हैं ।
- अधिगम अनुभव छात्रों को अपनी आवश्यकताओं व रूचियों को स्पष्ट करने के योग्य बनाते हैं ।

2.2.6 पाठ्यक्रम का मूल्यांकन (Evaluating the Curriculum)

मूल्यांकन का उद्देश्य यह मापना हैं कि पाठ्यक्रम क्रियान्वयन से उसके उद्देश्यों की किस सीमा तक प्राप्ति हुई है । मूल्यांकन व उद्देश्यों के मध्य सम्बन्ध इस चित्र से स्पष्ट होता हैं -

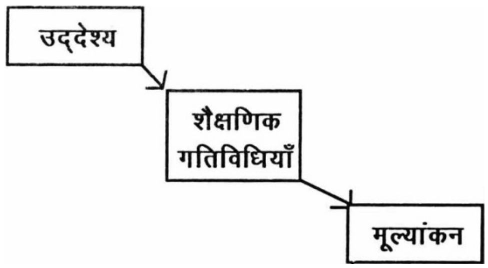

किसी भी स्तर के शैक्षणिक कार्यक्रम की प्रभावशीलता इस बात से आंकी जाती है कि उसके उद्देश्यों की प्राप्ति की कितनी संभावना है । उचित मूल्यांकन विधि द्वारा यह मापा जा सकता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुई है । यह मूल्यांकन गुणात्मक व मात्रात्मक दोनों प्रकार का होता है । यहाँ इस इकाई के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी स्पष्ट होना चाहिए कि मूल्यांकन के दो प्रकार होते हैं -

- छात्र मूल्यांकन ।
- पाठयक्रम मूल्यांकन ।

छात्र मूल्यांकन - (Student Evaluation) - छात्र मूल्यांकन का उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में आए परिवर्तनों की जाँच करना है जिसके लिए निम्न तरीकों को प्रयुक्त किया हैं -

- मौखिक, लिखित या प्रायोगिक परीक्षाओं द्वारा ।
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान प्रश्नोत्तर द्वारा ।
- गृहकार्य द्वारा, प्रयोजना कार्य द्वारा, आदि ।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन (Curriculum Evaluation) - पाठ्यक्रम मूल्यांकन का तात्पर्य पाठ्यक्रम के विभिन्न घटकों जैसे उद्देश्य, विषयवस्तु, विधियाँ, मूल्यांकन प्रविधियों के मूल्यांकन से है । इन घटकों की अलग-अलग समीक्षा नहीं की जा सकती है, क्योंकि घटक आपस में एक दूसरे से जुड़े हुये है । इनका मूल्यांकन भी एक दूसरे से जोड़ कर ही किया जाता है । यह बात इस चित्र से भी प्रकट होती है-

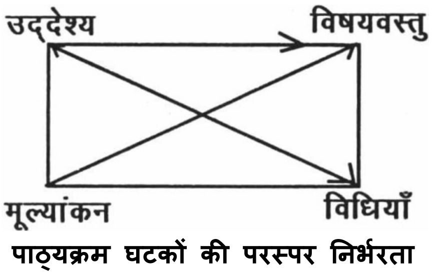

पाठ्यक्रम घटकों की परस्पर निर्भरता

पाठ्यक्रम मूल्यांकन का प्रमुख उद्देश्य पाठ्यक्रम की कमियों को जानकर उनमें सुधार लाना है । अत: इसके मुख्य प्रयोजन निम्न हैं -

- नये पाठ्यक्रम का विकास करना ।

- कार्यान्वयन के दौरान पाठ्यक्रम की समीक्षा करना ।
- निष्क्रिय पाठ्य सामग्री को बदलना ।
- नवीन ज्ञान व सूचनाओं का समावेश करना ।
- पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता ज्ञात करना ।

इस प्रकार पाठ्यक्रम मूल्यांकन पाठयक्रम विकास और क्रियान्वयन का महत्वपूर्ण घटक है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के उद्देश्य क्या हैं? संक्षेप में लिखिए।
2. पाठ्यक्रम हेतु विषय वस्तु के मापदंड स्पष्ट कीजिये।
3. पाठ्यक्रम मूल्यांकन व छात्र मूल्यांकन के अर्थ को स्पष्ट करें।

2.3 पाठ्यक्रम विकास के सिद्धांत (Principles of Curriculum Development)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अनुसार निर्मित राष्ट्रीय पाठयक्रम में पाठयक्रम विकास के सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि "देश की स्कूली शिक्षा के पाठ्यक्रम में उसके संविधान के गुण एवं चिंताएँ प्रतिबिम्बित होनी चाहिए । यानि हमारे संविधान में जिस प्रजातांत्रिक, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष समाज की ओर जिन मूल्यों की चर्चा की गई है उन्हें पाठयक्रम के माध्यम से भावी नागरिकों तक पहुँचाया जाना चाहिये ।"

मुदालिपर शिक्षा आयोग (1953) ने पाठ्यक्रम विकास के सिद्धान्तों को वर्णित किया है वे इस प्रकार है-

- **अनुभवों की समग्रता का सिद्धान्त ((Principle of Totality Experience) -** पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मानव जाति के अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में, पाठयक्रम के अन्तर्गत सैद्धान्तिक विषयों के साथ-साथ मानव जाति के उन सभी अनुभवों को उचित स्थान मिलना चाहिये, जिन्हें बालक विद्यालय में, खेल के मैदान में, कक्षा कक्ष में, पुस्तकालय में, प्रयोगशाला में तथा शिक्षकों के अनौपचारिक सम्पर्कों द्वारा सीखता रहता है ।
- **विविधता एवं लचीलेपन का सिद्धान्त ((Principles of Variety and Elasticity) -** पाठयक्रम में कठोर एकरूपता एवं स्थिरता नहीं होनी चाहिए । राष्ट्रीय आवश्यकताओं, स्थानीय आवश्यकताओं, विद्यालय के साधन सुविधाओं तथा बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुसार उसमें पर्याप्त विविधता एवं नम्यता होनी चाहिये ।
- **समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध होने का सिद्धान्त (Principle of Relation of Community life) -** पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन में व्यक्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये । पाठ्यक्रम निर्माण में व्यक्ति और समाज के हितों को समान महत्व दिया जाना अपेक्षित हैं, किंतु स्थानीय सामुदायिक जीवन एवं क्रियाकलापों का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये । प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जॉन

डीवी का मत हैं कि "किसी पाठयक्रम की योजना वर्तमान सामाजिक जीवन को आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए । वह सर्वसाधारण के जीवन का सुधार करने के उद्देश्य से अध्ययन सामग्री का चयन करे ताकि भविष्य अतीत की अपेक्षा अधिक उत्तम बन सके । अत: पाठयक्रम सामाजिक नैतिकता और संस्कृति के प्रति निष्ठा करे तथा जनतांत्रिक सामाजिक समस्याओं के समाधान की प्रेरणा दें ।

- **अवकाश के सदुपयोग का सिद्धांत (Principle of Training for Leisure) -** पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को केवल कार्य के लिए ही नहीं अपितु अपने अवकाश के समय के सदुपयोग के लिए भी उचित प्रशिक्षण दे । पाठ्यक्रम में इसके निमित्त विविध सामाजिक सौंदर्य 'बोधात्मक, खेलकूद आदि से सम्बन्धित क्रियाकलापों की व्यवस्था होनी चाहिये । उपयोगी रूचि कार्य (hobbies)एवं कार्यानुभवों (work Experience)का प्रावधान इस दिशा में प्रभावी हो सकता है ।
- **विषयों के अन्तःसम्बन्ध का सिद्धांत (Principle of interrelation between subjects) -** पाठ्यक्रम के विषयों का परस्पर अलगाव उनका शैक्षिक महत्व कम कर देता है । अत: विषयों को अन्त:सम्बन्धित किया जाये । सामाजिक विज्ञान एवं सामान्य विज्ञान की संकल्पना इसी उद्देश्य से की गई है । जिसमें विभिन्न विषयों को जीवन से सम्बन्धित प्रकरणों एवं समस्याओं के रूप में सम्बन्धित किया जाता है । इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयों के परस्पर लम्बवत (Vertical)अर्थात पूर्ववर्ती एवं वर्तमान कक्षा के विषयों में परस्पर समनवय द्वारा विषयों का परस्पर अलगाव दूर कर, उनकी शैक्षिक उपयोगिता में वृद्धि की जा सकती है ।
- **जनतांत्रिक मूल्यों के विकास का सिद्धान्त (Principle of Development of Democratic values) -** जनतंत्र को एक जीवन शैली मानते हुए पाठ्यक्रम में जनतांत्रिक समाज के उपयुक्त भावी नागरिकों को तैयार करने हेतु पाठ्यक्रम में विषयवस्तु एवं क्रियाकलापों का संयोजन किया जाना चाहिये । विद्यार्थियों में जनतंत्र के मूल आधारों-स्वतन्त्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के विकास हेतु विशेष प्रावधान किये जाने चाहिए ।
- **राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास का सिद्धान्त (Principle of Developing National and international Spirit) -** पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय भावना को विकसित करने सम्बन्धी प्रकरणों एवं क्रियाकलापों का ही प्रावधान न हो बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव एवं सहयोग विकसित करने का भी प्रयास किया जाये । राष्ट्रीय भावना के विकास हेतु संवैधानिक मूल्यों-जनतन्त्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, एवं लोक कल्याण के प्रति सक्रिय निष्ठा जाग्रत करना आवश्यक है
- इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ सिद्धांतों पर कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा बल दिया गया है । उनका उल्लेख करना भी अनिवार्य हैं -

- **आधुनिकीकरण का सिद्धांत (Principle of Modernization) -** कोठारी शिक्षा आयोग ने ज्ञान के विस्फोट, शीघ्र होने वाले सामाजिक परिवर्तन तथा नर्वन्त समाज के निर्माण की तत्काल आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के आधुनिकीकरण के समावेश पर बल दिया है । उनके अनुसार पाठ्यक्रम में परम्परागत समाज के स्थान पर आधुनिक समाज की स्थापना में सहायक अभिरुचियों, अभिवृत्तियों एवं कौशलों के विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिये । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी कहा गया है कि "आधुनिकीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जायेगी और पुरानापन हटाया जायेगा । आधुनिकीकरण को महज फैशन के तौर पर या प्रतिष्ठा चिह्न के रूप में नहीं, बल्कि कार्यात्मक दक्षता बढ़ाने के लिए अपनाया जायेगा ।"
- **राष्ट्रीय विकास से सम्बद्धता का सिद्धांत (Principle of Relationship with National Development) -** कोठारी शिक्षा आयोग ने राष्ट्रीय विकास व शिक्षा का सह सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए कहा कि "यदि हमें राष्ट्रीय विकास की गति तेज करनी है तो शिक्षा सम्बन्धी सुलझी हुई दृढ़ और कल्पनापूर्ण नीति तथा शिक्षा में प्राण डालने, उसमें सुधार करने तथा उसका विस्तार करने के लिए दृढ़ संकल्पपूर्वक एवं प्राणमय कार्यवाही करने की इस समय बड़ी आवश्यकता है । "इसके लिए आयोग ने पाठ्यक्रम में शिक्षा का उत्पादकता से सम्बन्ध स्थापित करने हेतु कार्यानुभव (Work experience)व्यवसायी (Vocationalisation) तथा वैज्ञानिक शिक्षा के समावेश पर बल दिया ।

  पाठ्यक्रम विकास के कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत और भी है । जिन्हें पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया में दृष्टिगत रखना आवश्यक है । उन्हें भी यहां वर्णित किया जा रहा है । जैसे
- **बाल केन्द्रीयता का सिद्धान्त (Principle of Child Centrism) -** इस सिद्धान्त में बालक की रुचियों, आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों, क्षमताओं तथा योग्यताओं को महत्व दिया जाता है । पाठ्यक्रम बालक की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व मानसिक शक्तियों को विकसित करने का माध्यम है । इस कारण ऐसी पाठ्यवस्तु का चयन करना चाहिये जिसमें विद्यार्थियों की रूचि हो । राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस लिहाज पर बल दिया गया है ।
- **रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त (Principle of use of Constructive and Creative Abilities) -** बालक, बालिकाओं में कुछ न कुछ रचनात्मक एवं सृजनात्मक शक्तियाँ विद्यमान हैं तथा वे अपनी इन शक्तियों को अभिव्यक्त करना भी चाहते है । यदि इन शक्तियों को प्रस्फुटित होने का अवसर नहीं मिलेगा तो उनका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पायेगा । अत: पाठ्यक्रम में उन क्रियाओं तथा विषयों को प्रमुख स्थान मिलना चाहिये जो विद्यार्थियों की रचनात्मक योग्यताओं को विकसित करने में सहायक हो । इसलिए पाठ्यक्रम में साहित्य, ललित कलाएँ, विज्ञान एवं शिल्पकलाओं को महत्वपूर्ण स्थान

दिया जाना चाहिये । व्यवसायिक विषय कला और उद्योग भी बालकों की सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के लिये पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने चाहिए ।

- **उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility) -** वर्तमान पाठ्यक्रमों का प्रमुख दोष यह माना जाता है कि उनमें दी जा रही शिक्षा का शिक्षार्थी के वास्तविक जीवन से कोई संबंध नहीं है तथा वह उन्हें भावी जीवन के लिए भी तैयार नहीं करती है । इसलिए पाठ्यक्रम निर्माण में ऐसी क्रियाओं व विषयों को स्थान मिलना चाहिये जिनसे विद्यार्थी आत्मनिर्भर बन सके तथा वे क्रियायें बालक के श्रमिक एवं भावी जीवन के लिए उपयोगी हो ।
- **खेल और कार्य की क्रियाओं के अंतर का सिद्धान्त (Principle of play work Activities) -** पाठ्यक्रम तैयार करते समय ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं को इतना रूचिकर बनाने का प्रयास करना चाहिये कि बालक ज्ञान को खेल समझकर प्रभावशाली ढंग से ग्रहण कर ले । क्रो एवं क्रो का कथन हैं-"जो लोग सीखने की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिये कि वे ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनायें, जिसमें खेल के दृष्टिकोण को स्थान प्राप्त हो ।"
- **संस्कृति तथा सभ्यता के ज्ञान का सिद्धान्त (Principle of the Knowledge of Culture and Civilization) -** भावी नवयुवक व नवयुवतियों को प्राचीन संस्कृति व सभ्यता तथा ज्ञान के विषय में पूर्ण जानकारी होनी चाहिए । प्राचीन सभ्यता एवं सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण, शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है । पाठ्यक्रम निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उसमें संस्कृति व सभ्यता का ज्ञान सम्मिलित है ।

इस प्रकार किसी भी स्तर के पाठ्यक्रम विकास में उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखना आवश्यक हैं तभी हम सफल व उद्देश्यपूर्ण पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकते हैं जो कि विद्यार्थियों में समाज के साथ अनुकूलन क्षमता विकसित कर सके तथा उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में सार्थक सिद्ध हो ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख चार सिद्धान्त बताइये।
2. अनुभवों की समग्रता से आपका क्या आशय है ।स्पष्ट करें।

2.4 सारांश (Summery)

इस इकाई में आपने पाठ्यक्रम के अर्थ व परिभाषा के साथ यह जाना कि शैक्षिक प्रक्रिया में पाठ्यक्रम का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है । तत्पश्चात् पाठ्यक्रम के चार प्रमुख आधार-सामाजिक, शक्तियाँ, मानव विकास अधिगम का स्वरूप तथा ज्ञान के स्वरूप के बारे में जाना ।

भाग 2.2 में पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया तथा इसकी पाँच अवस्थाओं का अध्ययन किया । ये अवस्थाएँ- 1. शैक्षिक आवश्यकताओं का निर्धारण, 2. शैक्षिक उद्देश्यों का चयन, 3.

विषयवस्तु का चयन, 4. विषयवस्तु का संगठन, 5. अधिगम अनुभवों का चयन तथा मूल्यांकन से संबंधित है ।

इसके बाद आपने पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न सिद्धान्तों के विषय में पढा, जिसमें मुदालियर शिक्षा आयोग तथा कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा वर्णित विभिन्न सिद्धान्तों को जाना जो पाठ्यक्रम के विकास में सहायक सिद्ध होते हैं । जिन्हें पाठ्यक्रम निर्धारक ध्यान में रखते हुए एक सफल, सार्थक व उद्देश्यपूर्ण पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकते हैं जैसे, अनुभवों की समग्रता का सिद्धान्त, समुदाय से घनिष्ठ सम्बन्ध का सिद्धान्त, आधुनिकीकरण का सिद्धान्त, उपयोगिता का सिद्धान्त आदि ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1 पाठ्यक्रम की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर इसकी संकल्पना को स्पष्ट कीजिये ।

2 पाठ्यक्रम प्रक्रिया के विभिन्न सोपानों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ।

3 विषयवस्तु चयन के विभिन्न मापदण्ड कौन-कौनसे हैं? उल्लेख कीजिए ।

4 पाठ्यक्रम के मूल्यांकन में किन-किन पक्षों पर बल दिया जाता है? स्पष्ट कीजिए ।

5 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया समझकर एक अध्यापक अपनी अध्यापन अधिगम की प्रक्रिया को कैसे विकसित कर सकता है ।

6 कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा वर्णित पाठ्यक्रम विकास के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौनसे हैं?

7 एक शिक्षक होने के नाते यदि आप पाठ्यक्रम का निर्धारण कर रहे होते तो पाठ्यक्रम विकास के किन-किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखते? संक्षेप में लिखिये ।

2.5 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. Burner, J. S.(1960/1977):The Process of Education,Harward University Press.
2. Cronback, J.Lee (1964) : evaluation for Course Improvement in new Curricula Harper and Raw, New York.
3. IGNOU (1992): Curriculum Instruction ES-331) 1 and 3, New Delhi.
4. J.Dewey (1966): The Child and the Curriculum, The School and Society, Phoenix, USA.
5. NCERT : The Curriculum for the Ten Year School-A Framework,p.1\
6. ओड, लक्ष्मीलाल.के. : शिक्षा के नूतन आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर।
7. सीताराम जायसवाल(1973):पाठ्यक्रम का भावी विकास,साहित्य परिचय पाठ्यक्रम विशेषांक पृ.47।
8. Wheeler D.K. (1967) : Curriculum Process,University of London Press.

इकाई 3

पाठ्यक्रम विकास का इतिहास

Curriculum Development-Its Process and Principles.

इकाई की संरचना (Structure of Unit)

3.0 उद्देश्य (Objectives)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 पाठ्यक्रम विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Background of Development)

3.3 भारत में पाठ्यक्रम विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
(Historical Background of Curriculum Development)

3.4 मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

3.5 सारांश (Summary)

3.6 संदर्भ ग्रन्थ (References)

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्यक्रम अर्थ का प्रत्यास्मरण कर सकेंगे
- पाठ्यक्रम की परिभाषा को समझ सकेंगे ।
- प्राचीन काल से वर्तमान काल तक पाठ्यक्रम के विकास के विविध पक्षों को समझ सकेंगे ।
- भारत में पाठ्यक्रम निर्माण के विविध पक्षों को समझ सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्‌वारा व्यक्ति के व्यवहार में निरन्तर परिवर्तन एवं परिमार्जन होता है । यह परिवर्तन दो रूपों में होता है-औपचारिक एवं अनौपचारिक । औपचारिक रूप के अन्तर्गत वे माध्यम आते हैं, जिनका नियोजन कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये व्यवस्थित ढंग से संस्थापित संस्थाओं में किया जाता है । ये संस्थायें विद्‌यालय होते हैं । परिवर्तन की यह प्रक्रिया विद्‌यालय जीवन में ही पूर्ण नहीं हो पाती, वरन् यह परिवर्तन विद्‌यालय के बाहर भी चलता रहता है और अनेक परिवर्तन विद्‌यालय की सीमा से बाहर की परिस्थितियों के परिणामस्वरूप होते हैं । लेकिन ये सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत नहीं हो पाती । अत: ये अनौपचारिक माध्यम के अन्तर्गत आती है । पाठ्यक्रम का संबंध शिक्षा के औपचारिक माध्यम से है ।

3.2 पाठ्यक्रम विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Development)

पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति का प्रमुख साधन है । चूंकि शैक्षिक उद्देश्य देश और काल की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं । अत: उन्हीं के अनुरूप पाठ्यक्रम में भी संशोधन- संवर्धन होता चलता है । परिणामस्वरूप शैक्षिक उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रमों में क्रांतिकारी परिवर्तन करना अनिवार्य हो जाता है ।

3.2.1 आदिकाल में पाठ्यक्रम

पृथ्वी पर मानव सभ्यता के उदय एवं विकास का जो अभिलेख किसी न किसी रूप में अभी तक उपलब्ध हो पाया है, वह कुछ हजार वर्षो से अधिक का नहीं है । इससे पूर्व के समय को प्रागेतिहासिक काल कहा जाता है । उस काल में मानव के जीवन, खान-पान, वेशभूषा, रीति-रिवाज, शिक्षा-दीक्षा आदि के बारे में काल के अवशेषों तथा भाषा विज्ञान एवं मानव-शास्त्र जैसे विषयों की सहायता से अनुमान लगाया जाता है ।

प्रागेतिहासिक काल की शिक्षा पर विचार करते हुए इतिहासकार एच.जी. गुड अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न एजुकेशन' में लिखते हैं कि सभ्यता एवं शिक्षा मानव की उन तीन विशिष्टताओं पर आधारित है जो उसे अन्य प्राणियों से पृथक करती है । ये विशिष्टतायें हैं- भाषा की शक्ति, विचार प्रकट करने की क्षमता और अपने लिये विभिन्न प्रकार के औजारों, हथियारों आदि का आविष्कार कर सकने तथा कपड़े और मकान की व्यवस्था कर सकने की शक्ति । अत: स्पष्ट है कि प्रागैतिहासिक काल में शिक्षा का स्वरूप पूर्णतया अनौपचारिक रहा । फिलिप कूक्स ने लिखा है- "अनौपचारिक शिक्षा प्राय: अव्यवस्थित एवं अक्रमबद्ध रहती है । इस काल में पुरानी पीढ़ी अपनी नई पीढ़ी को इसी रूप में शिक्षित करती रही होगी ।" इस युग की शिक्षा पूर्णरूपेण 'कार्यरत रहकर सीखने' पर आधारित थी । वाइल्ड और लोट्विच ने अपनी पुस्तक `द फाउण्डेशन ऑफ मॉडर्न एजुकेशन' में उस समय की पाठ्यवस्तु में तीन प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया है:-

- भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आवश्यक प्रशिक्षण ।
- विभिन्न दैवीय शक्तियों को प्रसन्न रखने के लिये आवश्यक पूजा-अर्चना की विधियों का प्रशिक्षण ।
- समाज में आवश्यक रीति-रिवाजों, वर्जनाओं एवं मर्यादाओं का प्रशिक्षण ।

3.2.2 यूनानी काल में पाठ्यक्रम

यूरोप के इतिहास का अध्ययन करें तो वहाँ के पाठ्यक्रम के सीमा क्षेत्र का आभास मिलता है । प्राचीन यूनान के नगर राज्य स्पार्टा को प्राय: युद्धरत रहना पड़ता था । अत: वहाँ पर बालकों के शारीरिक विकास एवं शस्त्र विद्या पर अधिक ध्यान दिया जाता रहा । इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य यह थे-बालकों में देशभक्ति, आज्ञापालन, अदम्य उत्साह, धैर्य, सहनशीलता,

कठोर श्रम, बड़ों के प्रति सम्मान, समय की पाबन्दी तथा समयानुकूल आचरण करने की क्षमता उत्पन्न करना । परिणामस्वरूप वहाँ का शिक्षाक्रम प्राय: शारीरिक विकास एवं सैनिक प्रशिक्षण तक सीमित होकर रह गया और उसमें बौद्धिक पक्ष, सौन्दर्य-बोध, कोमल भावनाओं के विकास सम्बन्धी विषयों को कोई स्थान नहीं मिला ।

एथेन्स नगर राज्य में शांति एवं स्थायित्व होने से वहाँ पर साहित्य, दर्शन एवं ललित कलाओं को अधिक महत्त्व दिया जाता था । प्रारम्भ में यूरोप और अमेरिका में भी शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को पढ़ने, लिखने एवं सामान्य गणना कर सकने के योग्य बना देना मात्र था । अत: उस समय पाठ्यक्रम भी 3 R's तक सीमित था । यह स्थिति एक लम्बी अवधि तक बनी भी रही । क्योंकि पाश्चात्य देशों में भी पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत उन्हीं प्रवृत्तियों का समावेश किया जाता रहा जो कक्षा के अन्दर पाठ पढ़ाते समय आयोजित की जाती थी । कालान्तर में भारत में भी अनेक राजनीतिक कारणों से पाठ्यक्रम का रूप पश्चिमी देशों जैसा ही हो गया तथा गुरूकुलों एवं आश्रमों के स्थान पर पाठशालाओं का उदय हुआ । जिनका कार्य केवल पाठ पढ़ने-पढ़ाने तक ही सीमित रह गया । इस प्रकार पठन-पाठन से इतर प्रवृत्तियों को पाठशाला के क्षेत्र से बाहर की चीज माना जाने लगा ।

3.2.3 मध्यकाल में पाठ्यक्रम

मध्यकाल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य धार्मिक एवं नैतिक ही रहा । पाठ्यक्रम में धार्मिक एवं नैतिक विषयों के अतिरिक्त 'सेवन लिबरल आर्ट्स' (व्याकरण, भाषणकला, तर्कशास्त्र, अंकगणित, रेखागणित, खगोलशास्त्र तथा संगीत विषय) का बोलबाला रहा और जैसाकि यूनेस्को द्वारा नियुक्त अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन 'लर्निंग टु बी' में टिप्पणी की है । उन 'सात उदार कलाओं' को ज्ञान के पुंज के रूप में इतना अधिक आदर मिला है कि उनमें अपने में ही सीमित हो जाने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई और उन्होंने नवविकसित समाजशास्त्र तथा विज्ञान की देन को अपने में समाविष्ट करने में प्राय: संकोच से काम लिया ।

3.2.4 पुनर्जागरण काल और पाठ्यक्रम

पन्द्रहवीं शताब्दी का पुनर्जागरण आंदोलन अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा में भी नवीन सम्भावनायें लेकर आया । अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने यह मत प्रकट किया है, इस आंदोलन का शिक्षा पर प्रभाव प्राय: धीमी गति से परिलक्षित हुआ । इसी आंदोलन ने ही वर्तमान पाठ्यक्रम की आधारशिला रखी । इस युग में अनेक विद्वानों के प्रभाव से अनेक दिशाओं में ज्ञान का विस्तार हुआ जिसे मुद्रणकला के आविष्कार ने पुस्तकों के रूप में सर्व-सुलभ एवं स्थायी बनाया । अनेक नवीन सामाजिक शक्तियों का उदय हुआ । मानवतावादी दर्शन नवीन अर्थ लेकर प्रस्तुत हुआ । शिक्षा को सर्वसाधारण को सुलभ कराने पर विचार किया जाने लगा ।

'मानव के अध्ययन' को पाठ्यक्रम का आधार बनाया गया । इनके शिक्षाक्रम में जिन अन्य विषयों का समावेश किया गया उनमें सामान्य शिष्टाचार, नैतिक-आचरण, भाषण-कला, निबन्ध-लेखन, खेलकूद तथा गणित विषय सम्मिलित थे । इस युग में एक ओर तो धार्मिक

ग्रन्थों को बिना सोचे-समझे रट लेने के स्थान पर जिज्ञासा और तर्क-वितर्क की प्रवृत्ति का तीव्रता से विकास हुआ और दूसरी ओर आर्थिक प्रगति के कारण व्यावसायिक कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता बढ़ी । इन दो बातों का विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम पर सीधा प्रभाव पड़ा और उनमें कला, कानून, चिकित्सालय एवं धर्मशास्त्र के संकाय विकसित हुए।

3.2.5 विज्ञान युग और पाठ्यक्रम

वैज्ञानिक युग का प्रारम्भ सत्रहवीं शताब्दी से ही माना जाता है । कॉपरनिकस, गैलीलियों आदि के वैज्ञानिक विचारों एवं खोजों के प्रभाव से लोगों में विवेक का विकास हुआ। वे धार्मिक अंधविश्वासों को छोड़कर वास्तविक सत्य की खोज में लग गये । इस दृष्टिकोण का प्रभाव शिक्षा और पाठ्यक्रम पर पड़ा । जीवन की वास्तविकताओं का ज्ञान प्राप्त करने पर अधिक बल दिया जाने लगा और पाठ्यक्रम में प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण, दैनिक जीवन से संबंधित आवश्यकताओं और समस्याओं के अध्ययन को प्रमुखता दी गई ।

3.2.6 प्रजातांत्रिक युग और पाठ्यक्रम

अठाहरवीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में अमेरिकी और फ्रांसीसी राज्य क्रान्तियों ने जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा दिया । वहीं दूसरी ओर शताब्दियों से चली आ रही राजतंत्र व्यवस्था की नींव भी हिला डाली और प्रजातांत्रिक व्यवस्था के प्रतिष्ठित होने का मार्ग प्रशस्त किया ।

इन दो क्रान्तियों का विश्वव्यापी और दूरगामी प्रभाव हुआ। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दियों में राष्ट्रीयता की भावना का बड़ी तीव्रता से विकास हुआ। विश्व के अनेक देश, विदेशी दासता से मुक्त हुए। शिक्षा पर इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ा । बालकों को प्रजातांत्रिक जीवन-पद्धति और नागरिकता की शिक्षा देना आवश्यक जान पड़ा और इस हेतु पाठ्यक्रम में नागरिकशास्त्र जैसे विषयों का समावेश किया गया ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. पाठ्यक्रम विकास पर एतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. प्रजातांत्रिक युग और पाठ्यक्रम को स्पष्ट कीजिये।

3.3 भारत में पाठ्यक्रम विकास (Curriculum Development in India)

विश्व के सभी प्राचीन देशों के समान ही भारत में भी शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था का प्रारम्भ धार्मिक उद्देश्यों को लेकर हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक ‘Ancient Indian Education’ में लिखा है कि 'भारत में शिक्षा की व्यवस्था शिक्षा के लिये नहीं बल्कि धर्म के एक अंग के रूप में की गई ।'

3.3.1 वैदिककालीन पाठ्यक्रम

वैदिक काल में भारतीय शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य ईश्वर भक्ति एवं धार्मिक भावना को दृढ़ करना, बालकों का चरित्र निर्माण एवं उनके व्यक्तित्व का विकास करना तथा सामाजिक कुशलता में वृद्धि करना था । इस दृष्टि से उस समय का पाठ्यक्रम भी अत्यन्त विस्तृत था । उसमें परा विद्या अर्थात धार्मिक साहित्य का अध्ययन तथा अपरा विद्या अर्थात् लौकिक एवं सामाजिक ज्ञान दोनों का ही समावेश था । उस समय शिक्षा कार्य गुरूकुलों में होता था तथा शिक्षार्थी पूरे शिक्षाकाल में गुरूकुल या गुरू परिवार के सदस्य के रूप में रहता था । वह गुरू से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ गुरू एवं गुरू पत्नी की सेवा, आश्रम की सफाई, पशुओं की देखभाल तथा भिक्षाटन के माध्यम से कर्त्तव्यपालन, सेवाभाव, विनयशीलता तथा अन्य चारित्रिक गुणों की शिक्षा भी प्राप्त करता था । कभी-कभी शिक्षा प्राप्त करने हेतु शिष्यों को देशाटन पर भी जाना पड़ता था ।

इस प्रकार वैदिक कालीन पाठ्यक्रम में पठन-पाठन के साथ-साथ विद्यार्थियों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के समुचित अवसर भी प्राप्त होते थे तथा उसका सम्पादन भी अध्ययन कक्षों और समय के घण्टों में सीमित नहीं था ।

3.3.2 बौद्धकालीन पाठ्यक्रम -

वैदिक व्यवस्था के रुढ़िग्रस्त होने के पश्चात बौद्ध धर्म का उदय हुआ । गौतम बुद्ध ने ब्राह्मणों द्वारा धर्म के नाम पर किये जा रहे अतिवाद की भर्त्सना की और मध्यम मार्ग अपनाने की शिक्षा दी ।

बौद्ध शिक्षा भी वैदिक शिक्षा के समान ही धर्म प्रधान रही ।डॉ.आर.के.मुकर्जी के अनुसार "यह प्राचीन हिन्दू या ब्राह्मण शिक्षा की ही एक रूप जान पड़ती है ।" दोनों की समरूपता की तुलना करते हुये डॉ. मुकर्जी लिखते हैं कि जिस प्रकार वैदिक युग में यज्ञ, संस्कृति के केन्द्र थे, उसी प्रकार बौद्ध युग में संघ शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र थे ।

बौद्धकालीन शिक्षा में मध्यम मार्गीय में दृष्टिकोण को अपनाने का प्रयास किया गया । पाठ्यक्रम दो भागों में विभक्त था-प्रारम्भिक स्तर पर स्थानीय भाषा में लिखने, पढ़ने एवं साधारण गणित का ज्ञान दिया जाता था । उच्च स्तर पर विनय, धर्म, दर्शन, साहित्य, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा आदि विषयों को स्थान दिया गया था । बौद्धकालीन पाठ्यक्रम में व्यावसायिक विषयों को भी स्थान दिया गया था ।

3.3.3 मध्यकालीन भारत में पाठ्यक्रम -

मुस्लिम लोगों ने भारत पर ईसा की आठवीं शताब्दी से आक्रमण करने प्रारम्भ किये और धीरे-धीरे यहाँ पर अपना शासन स्थापित कर लिया । इस काल में भी शिक्षा धर्म- प्रधान रही । अधिकांश मुस्लिम शासक, इस्लाम धर्म के प्रचार की भावना से प्रेरित थे । अत: उन्होंने भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था को समाप्त करके मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने के प्रयास किये ।

इस काल में निर्माण कला, चित्रकारी, संगीत, गायन, नृत्य आदि ललितकलाओं का विकास हुआ । हस्तकलाओं में वास्तुकला, हाथीदाँत का काम, पच्चीकारी, मीनाकारी, चित्रकारी, आभूषण-निर्माण प्रमुख थी । परन्तु इनका प्रशिक्षण मदरसों में न होकर अनौपचारिक रूप से घरों में ही परम्परागत विधि से होता था ।

3.3.4 आधुनिक भारत में पाठ्यक्रम -

3.3.4.1 मैकाले का प्रस्ताव -

सन् 1835 में लॉर्ड मैकाले द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव सरकार ने स्वीकार कर लिये । मैकाले द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-योजना का एक उद्देश्य राज्य-कार्यो के लिये सस्ते भारतीय क्लर्क प्राप्त करना भी था । अत: पाठ्यक्रम में अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य तथा अंकगणित जैसे साहित्यिक एवं बौद्धिक विषयों को प्रमुख स्थान दिया गया ।

3.3.4.2 वुड का घोषणा पत्र

सन् 1854 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शिक्षा संबंधी नया घोषणा पत्र प्रकाशित किया गया जो वुड के शिक्षा घोषणा पत्र के नाम से प्रसिद्ध है । इस घोषणा पत्र में शिक्षा के द्वारा सरकार का उद्देश्य भारतीय लोगों का बौद्धिक एवं नैतिक स्तर ऊँचा करने के साथ-साथ ऐसे व्यक्ति तैयार करना भी है जो ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति पूर्ण निष्ठावान रहे और जिन्हें विश्वास के साथ राजकीय पदों पर नियुक्त किया जा सके । वुड के शिक्षा संबंधी घोषणा पत्र ने व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता पर भी बल दिया ।

3.3.4.3 हण्टर शिक्षा आयोग -

सर विलियम हण्टर की अध्यक्षता में एक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की, जो हण्टर कमीशन के नाम से प्रसिद्ध है । इस कमीशन ने माध्यमिक स्तर पर दो प्रकार का पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने की अभिशंषा की-

1. विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के इच्छुक छात्रों के लिये बौद्धिक विषयों पर आधारित पाठ्यक्रम।
2. माध्यमिक शिक्षा पूर्ण करके जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करने के इच्छुक छात्रों के किये व्यावसायिक विषयों पर आधारित पाठ्यक्रम ।

पाठ्यक्रम के क्षेत्र में हण्टर आयोग की एक महत्त्वपूर्ण अभिशंषा धार्मिक शिक्षा के संबंध में थी । आयोग ने सरकार को शिक्षा के क्षेत्र में धार्मिक तटस्थता की नीति अपनाने का परामर्श दिया और इस विषय में निम्नलिखित अभिशंसायें की-

1. राजकीय विद्यालयों में किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा न दी जाये ।
2. गैर सरकारी विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा देना न देना उनके प्रबंधकों की स्वेच्छा पर छोड़ दिया जाये । इन संस्थाओं को अनुदान देते समय सरकार केवल उनके द्वारा दी जाने वाली लौकिक शिक्षा पर ही विचार करे ।

3.3.5 स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पाठ्यक्रम-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में विद्यालयी पाठ्यक्रम में सुधार हेतु अनेक प्रयास किये गये हैं । स्वतंत्र भारत में विश्वविद्यालय आयोग का प्रतिवेदन सन् 1949 में प्रस्तुत किया गया जिसमें विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम परिवर्तन के लिये सुझाव दिये गये । माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिये मूल्यवान सुझाव माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) द्वारा प्रस्तुत किये गये । इस आयोग का मुख्य सुझाव माध्यमिक स्तर पर विभिन्नीकृत (Diversified Courses) पाठ्यक्रम निर्माण का था, जिसमें विद्यालयी स्तर पर अनेक विषय प्रारम्भ किये गये और बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना की गई । यह प्रयास छात्रों की योग्यता, रुचि एवं अभिरुचि की पूर्ति का प्रयास था तथा इसका उद्देश्य शैक्षिक सत्रों में छात्रों को प्रोत्साहित करना था । इसमें मुख्य वर्ग, कला, विज्ञान, तकनीकी, वाणिज्य, कृषि, फाइन आर्ट्स तथा गृह -विज्ञान रखे गये ।

सन् 1966 में शिक्षा आयोग ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें पूर्व प्राथमिक शिक्षा से लेकर अनुसंधान तक विचार प्रस्तुत किये गये और शिक्षा के हर स्तर पर पाठ्यक्रम परिवर्तन के लिये बल दिया गया । यह आयोग राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नींव का पत्थर था, जो 1968 में सर्वप्रथम राष्ट्र के सामने प्रस्तुत की गई । यह आयोग राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को प्रारम्भ करने पर आवश्यक बल देने वाला था, जिसमें 10+2+3 प्रणाली की संरचना की गई । इस प्रतिवेदन में कक्षा 1 से 10 तक सामान्य शिक्षा और कक्षा 11 से 12 पाठ्यक्रम में विभिन्नीकरण प्रारम्भ होता है । इस आयोग ने समाजोपयोगी उत्पादन कार्यानुभव पर बल दिया और समस्त राष्ट्र में समान शिक्षा का प्रस्ताव रखा । सन् 1975 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा दस वर्षीय स्कूल के लिये पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई, जिसमें ऐसे पाठ्यक्रम की कल्पना की गई जो उद्देश्यों, वस्तु और विधि के माध्यम से भारतीय समाज और नागरिकों की वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके ।

3.3.6 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम -

कोठारी आयोग के अनुसार राजीव गांधी ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण किया । इस प्रकरण पर सम्पूर्ण राष्ट्र में चर्चा की गई कि नई शिक्षा नीति का क्या प्रारूप होना चाहिये, जो 21 वीं शताब्दी के लिये नागरिकों को तैयार कर सके, जो विश्व के साथ चल सके तथा उस समय के राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके । इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुये सन् 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप विकसित किया गया तथा शिक्षा के विभिन्न पक्षों एवं स्तरों के लिये सुझाव दिये गये तथा जिन्हें अविलम्ब लागू करने का प्रयास किया गया । सामान्यत: पाठ्यक्रम सामाजिक परम्पराओं, आदर्शो एवं मूल्यों का अनुसरण करता हैं तथा छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये उन्हें भावी जीवन के लिये तैयार करता है ।

सन् 1988 में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की एक रूपरेखा प्रस्तुत की गई जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1966 का प्रतिबिम्ब था । पाठ्यक्रम की रूपरेखा निम्नलिखित है-

- पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों का प्रतिनिधित्व करता है तथा इसका कार्यान्वयन उतना ही महत्त्वपूर्ण है।
- पाठ्यक्रम संवैधानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।
- पाठ्यक्रम सामाजिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।
- पाठ्यक्रम शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।
- समान शिक्षा उपलब्ध कराने के लिये कक्षा 1 से व 10 तथा आधारभूत पाठ्यक्रम (Core Curriculum) की संरचना की गई है, जिसमें स्थानीय एवं प्रान्तीय लचीलापन है ।
- राष्ट्रीय विकास संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये मानव संसाधनों का विकास आवश्यक है ।
- त्रिभाषायी सूत्र, बाल केन्द्रित शिक्षा तथा कार्यानुभव पर बल दिया जायेगा ।

उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिये राष्ट्रीय पाठ्यक्रम-एक रूपरेखा (1988) में प्रस्तुत किया गया है जिसमें विभिन्नीकरण के साथ-साथ व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया गया है । यहाँ पर +2 स्तर के लिये पाठ्यक्रम बनाया गया है, जिसमें भाषा, सामान्य-विषय, कार्यानुभव, शारीरिक शिक्षा तथा शैक्षिक चयनित विषयों को लिया गया है । इस अवसर पर उत्तमता पर अधिक बल देने का सुझाव है, जिससे जो छात्र शिक्षा पूरी करके संसार में प्रविष्ट हो रहे हैं । उनकी कार्यक्षमता उच्चकोटि की बन सके ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. भारत के स्कूली पाठ्यक्रम का संक्षिप्त इतिहास लिखिये ।
2. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के संबंध में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

3.5 सारांश (Summary)

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक आवश्यक अंग है । इसका शाब्दिक अर्थ "दौड़ का मैदान" या "छात्रों की शैक्षिक दौड़ का मैदान" है । इसमें विषय सामग्री, शिक्षण विधियाँ, शैक्षिक क्रियाकलाप आदि शामिल हैं । यह जीवन के समान विस्तृत भी हैं तथा स्पष्टता के लिये संकुचित भी । विश्व स्तर पर पाठ्यक्रम के विकास पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा भारत में पाठ्यक्रम के विकास पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विभिन्न रूपों की सिफारिश की है तथा इसमें आमूलचूल परिवर्तन आया है । परिवर्तन के मूल तत्त्व हैं- शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियाँ तथा मूल्यांकन आदि । सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक, वैज्ञानिक व तकनीकी विकास इसको प्रभावित करते हैं । पाठ्यक्रम वास्तव में एक विकासशील पहलू हैं जो समय तथा स्थान के अनुसार परिवर्तनशील है ।

3.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची (References)

1 Agrawal, J.C.(1990) :Curriculum Reforms in India,Daoba House, Delhi.

2 Burner, J.S.(1960/1977):The Process of Education,HarwardUnivercity Press.

3 Dewen, J (1966): The Child and the Curriculum The School & Society, Phoenix, USA.
4 IGNOU (1992) : Curriculum Development for Distance Education,(ES-316),Blocks 1 and, New Delhi.
5 Kelly, A.V (1989) : The Curriculum,Theory and Practice,Paul Chapman Publishing, London.
6 Orsntein, C & Hunkins P.(1988) : Curriculum Foundations,Principles and Issues, New Jersey,U.K.
7 Warwick, D. (1975) : Curriculum Structure of Design,University of London Press.

इकाई 4

पाठ्यक्रम के निर्धारक आधार
(Bases of Determinents of Curriculum)

इकाई की संरचना (Structure of the Unit)

4.0 उद्देश्य (Objectives)

4.1 पाठ्यक्रम निर्धारक आधारों का अर्थ एवं प्रकार
(Bases of Curriculum Determinents- Meaning Types)

4.2 दार्शनिक आधार (Philosophical Bases)

4.3 मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological Bases)

4.4 एतिहासिक आधार (Historical Bases)

4.5 सांस्कृतिक आधार (Cultural Bases)

4.6 सामाजिक आधार (Social Bases)

4.7 समन्वित पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ
(Co-Curriculum and Co-curricular Activities)

4.8 सारांश (Summary)

4.9 संदर्भ ग्रन्थ (References)

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्यक्रम निर्धारक के आधार का अर्थ एवं उसकी अवधारणा की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम के दार्शनिक आधार के अन्तर्गत विभिन्न दार्शनिक विचारधारा के विकास के आधारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक. आधारों, सिद्धान्तों, व परिणामों से अवगत हो सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के ऐतिहासिक आधार में इतिहास की भूमिका व योगदान की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के सांस्कृतिक आधार के अन्तर्गत शिक्षा व संस्कृति के संबंध, प्रभाव तथा उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम तथा समाज उसकी अपेक्षाएँ, प्रक्रिया तथा महत्त्व का परिचय प्राप्त कर सकेंगे ।
- समन्वित पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व समझ सकेंगे ।
- पाठ के सारांश द्वारा प्राप्त ज्ञान का प्रबलीकरण कर सकेंगे ।
- स्वमूल्यांकन द्वारा सीखे हुए ज्ञान की पुष्टि कर सकेंगे ।

4.1 पाठ्यक्रम निर्धारक आधारों का अर्थ एवं प्रकार (Bases of of Curriculum Determinents- Meaning Types)

पाठ्यक्रम के निर्धारक आधार-अर्थ एवं महत्त्व : विद्यालयों में सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए जो कुछ किया जाता है । वह पाठ्यक्रम की श्रेणी में आता है । इसलिए पाठ्यक्रम को What of Education भी कहा जाता है ।

पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाने वाले ज्ञान का स्वरूप एवं विस्तार अनिवार्य रूप में सम्बन्धित समाज द्वारा मान्य शैक्षिक मूल्यों (Values)एवं शैक्षिक उद्देश्यों (Objectives) पर निर्भर करता है । शिक्षा का इतिहास इस तथ्य का साक्षी हैं कि पाठ्यक्रम में समय के साथ न केवल परिवर्तन ही होते रहते है वरन् इनमें कभी व्यापकता और कभी संकीर्णता भी आती रहती है । पाठ्यक्रम वह अभिकल्प है । जिसे कोई समाज अपने बालकों के शैक्षिक अनुभवों के लिए तैयार करता है । इस अभिकल्प में पाठ्यवस्तु (Content) के अतिरिक्त वे शैक्षिक अनुभव भी समाहित रहते है । जिनका विस्तार पाठ्य विषयों एवं अध्ययन कौशलों की सीमाओं से बाहर उन अनेक प्रवृत्तियों तक होता है जिनका आयोजन विद्यालयों द्वारा बालकों के मार्गदर्शन के लिए किया जाता है । इन प्रवृत्तियों में सामाजिक कार्यो तथा सामूहिक मूल्यों को विकसित करने की समस्त क्रियाएं शामिल होती है । इन क्रियाओं के आयोजन की व्यवस्था विद्यालय पाठ्यक्रम के द्वारा करता हैं और पाठ्यक्रम किसी न किसी उद्देश्य पर आधारित होता है, पाठ्यक्रम किसी मूल्य (Value) लक्ष्य (Aim) अथवा उद्देश्य (Objective) की प्राप्ति के लिए बनाया जाता है । अर्थात पाठ्यक्रम का निर्माण करने के पूर्व उन मूल्यों व उद्देश्यों का तय करना होता है । जिनके लिए पाठ्यक्रम बनाया जाता है ।

पाठ्यक्रम निर्माता को समाज की प्रवृत्ति (Tendency) उसके स्थायी मूल्यों, उसके परिवर्तन के क्षेत्रों का बारीकी से निरीक्षण (Observation) करके उनके अर्थ को समझ कर उन दार्शनिक Philosophical) आधारों (Bases) तथा ऐतिहासिक घटनाओं (Historical Events) के संदर्भ References) में सूचनाएँ (Informations) प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि इन सूचनाओं में ही तात्कालिक पाठ्यक्रम (Present curriculum) और उनकी विशेषताओं का मूल आधार है ।

जिस प्रकार वर्तमान समाज अपने भूत (Past) तथा भविष्य (Future) से जुड़ा होता है । ठीक उसी प्रकार वर्तमान (Present) पाठ्यक्रम में किये जाने वाले परिवर्तन भी उन तथ्यों (Facts) के समान होंगे जो वर्तमान में विद्यमान हैं अथवा भूत में विद्यमान रह चुके है । ये तथ्य वर्तमान से प्रभावित होंगे और सर्वथा नवीन होने के स्थान पर भूत के विचारों का विकसित स्वरूप होंगे ।

शिक्षा समाज के लिए तथा समाज के द्वारा प्रभावित होती हैं । अत: पाठ्यक्रम भी समाज तथा व्यक्ति से सम्बन्धित होता है । साथ ही विद्यालयों के प्रति जबाब देही भी होती हैं और इस जवाबदेही के रूप में विद्यालय पाठ्यक्रम के माध्यम से संस्कृति (Culture)को पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी तक परिमार्जित (Refined) करके हस्तान्तरित करते है । इसका अर्थ

होता हैं कि विद्यालयों में विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन हेतु विषय वस्तु (Content)के साथ-साथ अधिगम अनुभवों की प्रकृति को भी ध्यान में रखना चाहिए, इन सम्बन्धों को इस चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैं -

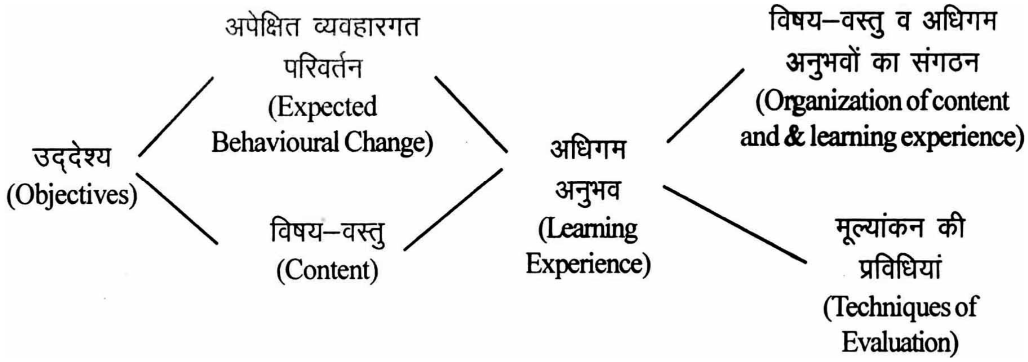

निष्कर्ष रूप में पाठ्यक्रम के विकास की प्रक्रिया (process) में तीन पक्षों पर ध्यान देना अनिवार्य होता है-

1. समाज (Society)
2. व्यक्ति (Person)
3. सांस्कृतिक विरासत (Cultural Heritage)

इन तीन पक्षों को ही पाठ्यक्रम के आधारों का निर्धारक माना जाता है । ये आधार परस्पर इतने गहरे रूप से जुड़े होते हैं कि इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता इनका परस्पर संबंध होता हैं, पाठ्यक्रम के निर्धारक आधार निम्न हैं

4.2 दार्शनिक आधार (Philosophical Basis)

(1) पाठ्यक्रम के दार्शनिक आधार (Philosophical Basis of Curriculum)- प्रत्येक व्यक्ति और समाज का अपना जीवन दर्शन होता हैं जो देश, काल व परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है । मूल्य यद्यपि शाश्वत, अपरिवर्तनीय तथा सार्वभौमिक (Universal) होते हैं । किन्तु उनकी व्याख्याएँ (Explanations) समय व परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तित होती रहती हैं । किसी समाज अथवा व्यक्ति को समझने तथा उसके प्रति कोई धारणा बनाने अथवा निर्णय लेने के लिए यह जरूरी होता है कि उसके जीवन दर्शन को अच्छी तरह समझा जाय । व्यक्ति व समाज के जीवन दर्शन की जानकारी प्राप्त करके ही उनके जीवन की आधारभूत (Fundamental) समस्याओं का समाधान किया जा सकता है । प्रसिद्ध विद्वान हेराल्ड टी० जॉनसन ने अपनी पुस्तक Foundation of Curriculumमें दर्शन शास्त्र को जीवन की आधारित समस्याओं के उत्तर प्राप्त करने और मानव जीवन को सार्थक बनाने के किए गए अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है । दूसरे शब्दों में इसे जीवन बोध (Understanding)तथा जीवन मूल्यों(Life values)के रूप में देखा जा सकता है ।

पाठ्यक्रम का प्रमुख आधार ही दर्शन होता है । दर्शन ही वह नजरिया है जो किसी विचार अथवा पदार्थ (Substance/matter)के प्रति एक सोच या दृष्टिकोण बनाता है । हमारी

सोच ही किसी मूल्य अथवा मान्यता के प्रति सकारात्मक अथवा नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करती है ।

प्रत्येक समाज की अपनी विशेष मान्यता, परंपरा, सिद्धान्त तथा तरीके होते हैं और ये सब उसकी विशेष पहचान बनाते हैं और इसी समाज में व्यक्ति रहता है । अत: वह इनसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है । शिक्षा के द्वारा वह अपने अनुकूल परिमार्जित एवं नियंत्रित व्यवहार द्वारा समाज से समायोजन करता हैं और पाठ्यक्रम विषय वस्तु तथा अधिगम अनुभवों के संगठन से विद्यार्थी का व्यवहार निर्धारित करती है । सार रूप में जैसा दर्शन होगा अर्थात् देखने का नजरिया या तरीका होगा वैसा ही समाज होगा और उस समाज के मूल्य भी उसी के अनुरूप होंगे और इन्हीं मूल्यों के आधार पर पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । रस्क ने कहा है कि-"दर्शन पर पाठ्यक्रम का संगठन (Organization)जितना आधारित है, उतना शिक्षा का कोई अन्य पक्ष नहीं, प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव पाठ्यक्रम पर अनिवार्य रूप से पड़ता है जितनी भी दार्शनिक विचारधारायें देश और काल के अन्तराल (Gap) से विकसित हुई है, उनमें निम्नलिखित प्रमुख विचारधाराएँ हैं -

1. आदर्शवाद (Idealism)
2. प्रकृतिवाद (Naturalism)
3. यथार्थवाद (Realism)
4. प्रयोजनवाद (Pragmatism)

1. आदर्शवाद और पाठ्यक्रम (Idealism and Curriculum)- आदर्शवादी दर्शन शाश्वत मूल्यों (Universal Values) में विश्वास करता है और व्यक्ति से यह अपेक्षा रखता है कि वह अपना जीवन इन शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति में समर्पित करे । हेराल्ड टी० जॉनसन के अनुसार, "विश्व किसी आदि भौतिक सत्ता (Super Natural Authority) अर्थात् भगवान के मस्तिष्क में विद्यमान विचार द्वारा संचालित होता है ।'' आदर्शवादी दर्शन धार्मिक विश्वासों पर आधारित हैं । इस विचारधारा में विश्वास रखने वाले व्यक्ति यह मानते हैं कि यह आदिभौतिक सत्ता किसी रूप में पृथ्वी पर अवतरित होकर अपने किसी माध्यम से व्यवस्था का कार्य करवाती है । विश्व के विभिन्न धर्म और धार्मिक पुस्तकें इसी विश्वास के परिणाम हैं, जिनके अनुयायी (Follower) पूर्व निर्धारित निर्देशों (Directions) के पालन तथा आचरण के द्वारा पूर्व निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति करने के प्रयास को ही जीवन की सार्थकता मानते हैं । हेराल्ड टी० जानसन के अनुसार- "आदर्शवादी दर्शन के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य उस सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाते रहना है, जो सम्बन्धित समाज द्वारा युग-युगान्तर में जाँच-परखे मूल्यों को परिलक्षित करती है ।" आदर्शवादी शिक्षा में यह विश्वास किया जाता है कि छात्रों के लिए अपने लक्ष्य की प्राप्ति की आदर्श विधि आचार-विचार में अपने शिक्षकों का अनुसरण (Follow-up) करना है ।

आदर्शवादी विचारधारा में शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य (Aim) व्यक्ति के जीवन को समझने और उसके द्वारा पूर्ण जीवन जीने का आदर्श प्राप्त करना हैं । पाश्चात्य आदर्शवादी विचारक प्लेटों ने इसी आदर्श को "The Truth' ‘The Good’ The Beautiful’ के रूप में व्यक्त

किया है । भारतीय आदर्शवाद में भी 'सत्य' 'शिव, 'सुन्दरम्' को अपनाया गया है । इन विचारकों के अनुसार आदर्शवादी शिक्षा विचार (Idea) को प्रमुख मानती हैं और इसी के अनुरूप विचार प्रधान विषयों को पाठ्यक्रम में विशेष महत्त्व दिया जाता है ।

इस प्रकार की शिक्षा में सभी मूल्यवान विचारों को छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है । हेराल्ड टी. जॉनसन द्वारा आदर्शवादी पाठ्यक्रम का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है- "इसमें सूचनाओं को ज्ञान के रूप में पुस्तकों को उपकरणों के रूप में एवं महान विचारों को आदर्शो के रूप में एवं महान विचारों को आदर्शो के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इतिहास और साहित्य विचारों के दोष माने जाते हैं । अत: इन दोनों विषयों को आदर्शवादी पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया जाता है । अन्य विषयों में धर्मशास्त्र, नीति शास्त्र, कलाकौशल, अर्थशास्त्र, भूगोल, अंकगणित, बीजगणित, रेखा-गणित, खगोल शास्त्र एवं विज्ञान की विभिन्न शाखाओं को विशेष स्थान दिया जाता है ।

आदर्शवादी पाठ्यक्रम में शारीरिक स्वास्थ्य के लिए खेल-कूद. व्यायाम आदि को विशेष स्थान दिया जाता है । उनका मानना है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है । शारीरिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त जीवन को चलाने के लिए विभिन्न व्यवसायों का ज्ञान प्रदान करने के लिए भी व्यावसायिक विषय यथा-उद्योग जैसे कार्यो को महत्त्व दिया जाता है ।

2. प्रकृतिवाद और पाठ्यक्रम (Naturalism and Curriculum)- प्रकृतिवादी विचारधारा के अनुसार बालक का स्वाभाविक विकास तभी हो सकता है । जब उसे विद्यालय में पाठ्यक्रम द्वारा ऐसे अधिगम अनुभव प्राप्त हो सके जो उसके व्यावहारिक जीवन की समस्याओं के समाधान में सहायता प्रदान करें । व्यावहारिक शिक्षा के लिए प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में खेल-कूद व्यायाम, पर्यटन, प्रकृति निरीक्षण, हस्तकला, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र विज्ञान आदि विषयों को प्रधानता दी जाती है ।

रूसो जो कि प्रकृतिवाद के प्रवर्तक हैं, उनका मानना है कि प्रकृतिवादियों की राय में सर्वोत्तम शिक्षा व्यवस्था वह है जो बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करे । बालक की स्वाभाविक क्रियाओं में किसी प्रकार का व्यवधान ना आ पाये और उसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके । प्रकृतिवादी विचारकों की

मान्यता है कि प्रकृति ही बालक का सर्वोत्तम शिक्षक है और उनकी दृष्टि से शिक्षा का लक्ष्य ज्ञानवर्धन ना होकर बालक का स्वाभाविक विकास है ।

3. यथार्थवाद और पाठ्यक्रम (Realism and Curriculum) - यथार्थवादी विचारधारा का जन्म आदर्शवादी विचारधारा की प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप हुआ । जिस प्रकार आदर्शवादी विचार को प्रमुख स्थान देते हैं, ठीक उसके विपरीत यथार्थवादी भौतिक तथा प्रत्यक्ष जगत को ही वास्तविक जगत का दर्जा प्रदान करते हैं । इनके अनुसार विचार का नहीं पदार्थ का महत्त्व होता है, पदार्थ से ही विचार का भाव उत्पन्न होता है और इसी पदार्थ द्वारा मानव का विकास होता है ।

यथार्थवादी पाठ्यक्रम में कारण व परिणाम के सम्बन्धों को महत्त्व दिया जाता है । अत: यथार्थवाद में आगमन विधि (Inductive Method) का प्रयोग अधिक किया जाता है ।

इन विचारकों के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी को उस भौतिक-व्यवस्था को समझने तथा उसके साथ समायोजन स्थापित करने में सहायता करना होता है, जिस पर उसका स्वयं का कोई नियंत्रण नही होता । समायोजन करने के लिए जो सामग्री अपेक्षित होती है उसका चयन करना तभी संभव होता है । जब विद्यार्थी को अच्छे जीवन के लिए अपेक्षित सामग्री का चयन करने का बोध (Comprehension) विकसित हो । अत: यथार्थवादी इस बोध भाव का बालक में विकसित करने पर बल देते हैं । यह बोध तथा इससे जुड़ा ज्ञान विद्यार्थी को विद्यालय में रहकर ही अधिगम अनुभवों से प्राप्त होता है, विद्यालय में छात्र विभिन्न परिस्थितियों के प्रति अपने व्यवहार को नियंत्रित करना सीखता है और शिक्षक इस सीखने में बालक को निर्देशन देकर उसकी सहायता करते हैं । तथ्यों को प्रस्तुत करने के लिए वस्तुनिष्ठता (Objectivity) को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है । इस प्रकार के अधिगम में ऐसे अनुभव प्रदान किये जाते हैं । जिसमें अधिक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग किया जा सके ।

यथार्थवादी पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों तथा प्रवृत्तियों पर बल दिया जाता है, जिनमें अधिक से अधिक ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय रह सके । साथ ही ऐसे विषय भी शामिल किये जाते हैं । जिनका सम्बन्ध इस भौतिक-जगत के अर्थ को स्पष्ट करने से हो । ऐसे विषयों में गणित एवं भौतिकी तथा सामाजिक विज्ञानों पर अधिक बल दिया जाता है, भाषा को कम महत्त्व देते हैं ।

ब्राउडे ने पाठ्यक्रम की संकल्पना स्पष्ट करने के लिए बताया कि पाठ्यक्रम का लक्ष्य सत्य को खोजने उसे प्रयुक्त करने तथा उससे सन्तोष एवं आनन्द प्राप्त करने की प्रवृत्ति को विकसित करना है । ऐसी आदतों का निर्माण व्यवस्थित विषय-वस्तु (Content) पर अधिकारिक (Mastery) ज्ञान के द्वारा ही हो सकता है।

4. प्रयोजनवाद और पाठ्यक्रम (Pragmatism and Curriculum) - प्रयोजनवादियों का तर्क है कि किसी भी विचार की सार्थकता ज्ञात करने के लिए उसका कार्य रूप में परीक्षण करना अनिवार्य होता है । कार्यक्षेत्र से प्राप्त अनुभव के आधार पर ही कोई निर्णय लिया जा सकता है । इन विचारकों का मानना हैं कि कोई नियम शाश्वत नहीं हो सकते । सत्यता अथवा यथार्थ की स्थिति सदैव परिवर्तनशील होती हैं, ऐसी स्थिति में कोई स्थायी नियम भी नहीं बनाये जा सकते । केवल प्रयोग अत्यन्त परीक्षण के द्वारा ही किसी कार्य के लिए निर्णय लिया जा सकता है । केवल नियम स्थापित कर उनको शाश्वत रूप में अपनाना सदैव उचित नहीं होता । प्रयोग ही प्रयोजनवादी विचारधारा का प्रमुख निर्णय अथवा कार्य विधि (Task) है ।

प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में करके सीखने (Learning by doing) अर्थात सीखने वाले के द्वारा स्वयं प्रयोग करके अनुभव प्राप्त करने की प्रक्रिया ही महत्वपूर्ण है, जान डी.वी. इसके प्रमुख विचारक माने जाते है।

अमरीकी दार्शनिक चार्ल्स एस० पीयर्स के अनुसार किसी भी बौद्धिक चिन्तन अथवा विचार की सत्यता उसे कार्यरूप में परिणित करने पर और सभी सम्भाव्य परिणामों का परीक्षण करके निश्चित की जा सकती है । प्रयोजनवादी दर्शन में शिक्षा किन्ही तथ्यों की जानकारी का संकलन करने के स्थान पर शिक्षार्थी द्वारा अनुभव प्राप्त करने की प्रक्रिया (Process) है । यह अनुभव को उत्पन्न करने नियन्त्रित करने तथा निर्देशित करने का एक माध्यम

(Medium) है । अपनी समस्याओं का हल खोजने में विद्यार्थी की सहायता करना ही शिक्षा का लक्ष्य है । ऐसी स्थिति में शिक्षक का कार्य शिक्षार्थी को अपनी समस्याओं को पहचानने तथा उनका समाधान खोजने में सहायक पर्यावरण तथा अनुभव उपलब्ध कराना है, बालक जैसे-जैसे समस्याएँ सुलझाता जाता हैं वैसे-वैसे वह भविष्य की समस्याओं को हल तथा अभिरुचियों (aptitudes) को संतोष प्रदान करने के योग्य बनता जाता है ।!

प्रयोजनवादी विचारकों के अनुसार पाठ्यक्रम में पाठ्यसामग्री (Content) का उपयोग छात्रों की आवश्यकताओं तथा अभिरुचियों में सम्बद्ध करके किया जाता है । इस पाठ्यसामग्री में विषय सीमाओं का पालन नहीं किया जाता और इस पाठ्यसामग्री को मात्र उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है । इसके लिए हस्तकला व उद्योग धन्धों पर विशेष बल दिया जाता है ।लिखने पढ़ने का ज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान तथा शारीरिक शिक्षण प्राय: सभी विद्यार्थियों के लिए आवश्यक समझे जाते हैं । छात्राओं के लिए गृह विज्ञान और ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों के लिए कृषि - विज्ञान को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने की सिफारिश की जाती है । इस पाठ्यक्रम में सामाजिक कार्यो को पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है, क्योंकि सामाजिक परिस्थितियों के कारण ही बालक क्रियाशील बन सकता है ।

प्राथमिक स्तर पर घरेलू व्यावसायिक कार्य के अन्तर्गत कपड़ा सिलना, भोजन बनाना, घर की सफाई करना तथा चित्रकला काष्ठकला, बागवानी, खिलौने बनाने सम्बन्धी कार्यो को भी पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जाता है ।

उपरोक्त दार्शनिक विचारधाराओं के अलावा मानववाद (Humanism) तथा अस्तित्ववाद (Existancism) जैसी विचारधाराओं ने पाठ्यक्रम को प्रभावित किया है ।

मानववाद में विषय वस्तु के रूप में भाषा, गणित जैसे विषयों को बुद्धि तथा आत्मा के विकास के लिए स्वीकार किया और इनके अधिगम अनुभवों हेतु औपचारिक अभ्यास (Formal drill), प्रश्नोत्तर (Questions/Quiz), पुनरावृत्ति (Recapitulation), व्याख्यान (Lecture) का प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार अस्तित्ववाद की प्रमुख विषय वस्तु में कला, संगीत, साहित्य, धर्म, नैतिक सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है । अस्तित्ववाद की शिक्षण विधियों में सम्पूर्ण पर विचार प्रतिबद्धता वैयक्तिक उत्तरदायित्व के लिए अधिगम अनुभव प्रदान किये जाते हैं ।

पाठ्यक्रम के लक्ष्यों को विकास, अभिरुचियों तथा आवश्यकताओं की संतुष्टि के रूप में भी अभिव्यक्त किया जा सकता है । परन्तु इनका उपयोग भी मान्य मानकों के संदर्भ में ही किया जा सकता है । व्यक्ति की आवश्यकताओं को समझ कर उनके अनुरूप उद्देश्यों का स्पष्ट निर्धारण किया जाता है । उद्देश्यों के निर्धारण के बाद उन्हें प्राप्त करने के साधनों को जुटाने का प्रयास महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । इन प्रयासों में जो क्रियाएं है । जो अधिगम के प्रत्यक्ष उद्देश्य को लेकर आयोजित की जाए । भिन्न-भिन्न प्रकार होता है ।खोज विधि (Discovery approach) सभी प्रकार के ज्ञान पर लागू नही की जा सकती क्योंकि कुछ सूचनाएं तो प्रारंभिक (First Hand Knowledge) होती है । उन्हें खोजा नही जा सकता, उन्हें प्रत्यक्ष रूप से छात्रों को बताना ही होगा - अर्थात् क्या पढ़ाने के लिए कौनसी विधि अपनाये यह अत्यन्त

महत्वपूर्ण है । कुछ विधियां ऐसी है । जिनका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए । चाहे उनसे अधिगम होता भी हो । मस्तिष्क उद्योलन (Brain Storming) मानसिक मंथन अथवा शिक्षा देना (Indoctrination) आदि । उच्च मानसिक क्रियाएं इस प्रकार के शिक्षक का उदाहरण है । इनके अधिगम के लिए अनेक तर्कपूर्ण प्रविधियां () अपनायी जाती है । किन्तु नैतिक कारणों (Moral Reasons) व शैक्षिक दृष्टि से इनकों नही अपनाया जा सकता । केवल उन शिक्षण विधियों को अपनाना चाहिए जो अपेक्षित व्यवसायगत परिवर्तन (Expected Behavioural Change) की पूर्ति कर सके । और इन उद्देश्यों (Objectives) को प्राप्त करने में सहायक हो सके ।

4.3 मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological basis)

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन करना है । बालक के व्यवहार में परिवर्तन कैसे हों? उसे क्या प्रदान किया जाये? उसे ज्ञान कैसे दिया जाये? उसकी प्रकृति, उसकी आवश्यकता, रूचि. क्षमता, योग्यता, आकांक्षा, तथा अनुभव आदि मनोवैज्ञानिक तथ्यों को पता लगाने के लिए तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की आवश्यकता को ध्यान में रखकर उसके अनुकूल अधिगम परिस्थिति के द्वारा विषय वस्तु को विद्यार्थी तक पहुंचाने के लिए अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी रूप से गतिमान करने का कार्य करता है ।

हेराल्ड टी. जॉनसन की मान्यता है कि पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार मनोविज्ञान के वे पक्ष (Domain) हैं जो अधिगम प्रक्रिया (Hearning Process) को प्रभावित करते हैं, ये पाठ्यक्रम निर्माता को शिक्षार्थी के व्यवहार के सम्बन्ध में बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने में सहायता करते हैं ।

अनौपचारिक माध्यम के रूप में सदैव ही मनोवैज्ञानिक आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता रहा हैं, हमारे वेद, पुराण से लेकर ऐतिहासिक कहानियां तथा वर्तमान में औपचारिक रूप से बालक के विकास के आधार पर मनोवैज्ञानिक अधिगम के द्वारा अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किया जाता है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बालक का मस्तिष्क रिक्त घड़ा नहीं है । जिसमें ज्ञान ठूस-ठूस कर भरा जाता है, वरन् उसका मस्तिष्क ज्ञान का वह भंडार है। जिसमें से सूचनाएं तथा अनुभव निकाल कर उनको भविष्योन्मुखी तथा जीवनोपयोगी बनाने में सहायता करता है । उनके अनुसार बालक संवेदनशील, जीवंत, जागृत, सृजनशील, विचारमान एवं विकासमान प्रणाली होता है । इन मनोवैज्ञानिकों में सूसन आइजेक्स, वेलेन्टाइन गेरिया, मान्टेसरी, फ्राबेल से लेकर पियाजे थॉर्नडाइक, कोलहर, बी. एफ स्किनर, ब्रूनर आदि है, जिन्होंने बाल मनोविज्ञान में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है ।

बालक के विकास के विभिन्न पक्ष (Aspects) है । जिनमें निरन्तर कारण, मनोविज्ञान की अनेक शाखाएँ विकसित हुई हैं, इन विभिन्न पक्षों के परिणाम स्वरूप बालक का विभिन्न दृष्टि से अध्ययन किया जाता है । जिससे उसकी प्रकृति व आवश्यकता को समझ कर उसके अनुकूल व्यवहार परिवर्तन करने में सहायक पाठ्य-सामग्री का समावेश किया जाता हैं । यही मनोवैज्ञानिक आधार तथा पाठ्यक्रम का आयोजित सम्बन्ध है ।

इन मनोवैज्ञानिक क्रियाओं, का प्रभाव पाठ्यक्रम पर निश्चित रूप से पड़ता है, इसके द्वारा यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि शिक्षक का व्यवहार छात्रों के साथ किस प्रकार का है तथा उनकी अधिगम तत्परता (Learning Readyness) को ध्यान में रखते हुए अन्र्तवस्तु (Content) को किस रूप में व्यवस्थित करते है । शिक्षक मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा ही विद्यार्थी की अधिगम तत्परता को जान सकता है और इन्हीं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षा विधियों को अपनाता है ।

पाठ्यक्रम के नवीन रूप विकास-आवश्यकता पाठ्यक्रम का जो स्वरूप जो विकसित अवधारणा बनी है । वह परम्परागत विषय आधारित पाठ्यक्रम (Subject Based Curriculum) हैं, इसमें शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण बालकों के सामान्य विकास और उसे बल देने वाली स्थितियों के लिए आवश्यक जैविक (Biological) तथा मनोवैज्ञानिक (Psychological) उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है । अनुभव आधारित पाठ्यक्रम (Experience Based Curriculum) भी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित हैं, इसमें उत्प्रेरणा (Motivation) समस्या-समाधान, चिन्तन, स्मरण, अवबोध आदि क्षेत्रों पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है ।

पाठ्यक्रम बनाने वाले विशेषज्ञों को इस बात पर विशेष ध्यान देना होता है कि शिक्षा के लक्ष्य तथा उद्देश्यों के अनुरूप बालकों की क्षमताओं तथा प्रतिभाओं का विकास उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप हो साथ ही इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त अनुभवों के चयन के आधार का ज्ञान भी शिक्षक को मनोविज्ञान के कारण ही होता है ।

पाठ्यक्रम व मनोविज्ञान के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने के लिए प्रसिद्ध विद्वान, **हैराल्ड टी. जॉनसन** ने निम्न प्रश्नों तथा उनका उत्तर प्राप्त करना उपयोगी बताया -

1. क्या शिक्षार्थी का शारीरिक विकास पाठ्यक्रम को प्रभावित करता है?

इस प्रश्न के उत्तर के लिप जॉनसन की मान्यता हैं कि अधिगम स्थितियों का चयन शिक्षार्थी के शारीरिक विकास की दृष्टि से किया जाना चाहिए । इसके लिए वे इस उदाहरण से स्पष्टीकरण करते है कि संगीत पाठ्यक्रम में ऐसे गीतों को समावेश नहीं करना चाहिए जो कम आयु के बालकों के लिए उच्च स्तरीय वाणी के उपयोग की आवश्यकता हो, इसी छोटे आकार के अक्षरों का मुद्रण भी उनके लिए अनुपयुक्त रहेगा ।

पाठ्यक्रम के निर्माण वर्तमान परिप्रेक्ष्य (Context) में इतना, महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता है, क्योंकि अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रस्तुतीकरण की विधा पर अधिक बल दिया है ।

2. क्या विद्यार्थी का मानसिक विकास पाठ्यक्रम को प्रभावित करता है?

मानसिक विकास का पता लगाने तथा उसके अनुकूल अधिगम अनुभवों को प्रदान करने के लिए भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का उपयोग किया जाता हैं जैसे - बालक सीखता है? कैसे सीखता है? क्यों सीखता है । इसके लिए प्रेरणा, अभ्यास व उपयोगिता आदि नियमों का प्रयोग करके ही - पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए ।

इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि पाठ्यक्रम के निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाती है, जिसके अन्तर्गत सीखने वाले (Learner) की शारीरिक परिपक्वता (Maturity), व्यक्तिगत भिन्नता (Individual Difference), अभिरूचि (Aptitude), उत्प्रेरणा (Learning Process) तथा अधिगम का अन्तरण (Transfer of Learning), तत्परता (Readiness), प्रभाव (Effectiveness) व अभ्यास (Practice) आदि प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारक (Factors) हैं, जो पाठ्यक्रम निर्माता को पाठ्यक्रम के गठन (Construction of Curriculum) करने के लिए प्रभावित करते हैं । पाठ्यक्रम में ऐसी अर्न्तवस्तु (Content) का समावेश विकास के अनुकूल हों ।

परिपक्वता एवम् पाठ्यक्रम (Maturity and Curriculum)-बालक अथवा मानव के विकास में शारीरिक वृद्धि के साथ होने वाले परिवर्तन, मनोविज्ञान में परिपक्वता (Maturity) के इस अवस्था में अनेक शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं, किन्तु इनमें जो परिवर्तन किसी विशेष उत्प्रेरणा (Motivation) से सम्बद्ध हो जाते हैं । उन्हें उपलब्धि (Achievement) कहा जाता है । परिपक्वता एवं उपलब्धि में इतना गहरा सम्बन्ध होता है कि इन दोनों में भेद करना कठिन होता है । उदाहरणार्थ - प्रत्येक बालक बोलता है । यह परिपक्वता का परिणाम माना जाता है । परन्तु उसके द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली भाषा उसके आस-पास के पर्यावरण का परिणाम होती है ।

परिपक्वता तथा उपलब्धि में यह प्रमुख होता है कि परिपक्वता के समय किए गए प्रयास उपलब्धि में बहुत सहायक सिद्ध होते हैं, अत: पाठ्यक्रम आयोजन में अधिगम अनुभवों को परिपक्वता के स्तर से जोड़ा जाता है । मनोविज्ञान में होने वाले नित नवीन प्रयोगों ने पुरानी मान्यताओं में भी परिवर्तन कर दिया है । पहले यह माना जाता था कि बालक जब छोटा होता है, तो वह मानसिक रूप से परिपक्व नहीं होता । अत: उसे तार्किक तथ्य नहीं दिये जा सकते । वह उन्हें ना तो समझ पाता है और ना ही उन्हें स्मरण कर पाता है । किन्तु अब मनौवैज्ञानिक प्रयोगों ने यह स्थापित कर दिया हैं कि विद्यार्थी में तार्किक विश्लेषण करने तथा समस्याओं का समाधान करने की क्षमता काफी छोटी आयु में ही विकसित होने लगती है । अत: प्राथमिक स्तर पर ऐसी विषय वस्तु अध्ययन के लिए सम्मिलित की जा सकती है । जिनमें समस्याओं का विश्लेषण किया जा सकें ।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से यह नवीन सम्प्रत्यय विकसित हुआ है । कि 2 से 5 वर्ष की आयु प्रतिभा (Talent) के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । रूसी मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है । कि इस आयु में ना केवल प्रतिभाओं का विकास किया जा सकता है । बल्कि आयु में प्रतिभाएँ उत्पन्न भी की जा सकती है । इसके परिणाम स्वरूप इस आयु के बालकों की शिक्षा अर्थात् प्राथमिक शिक्षा का महत्त्व अधिक बढ़ गया है । अब कहानी, संगीत, नृत्य के सृजनात्मक व ज्ञानवर्धक अर्न्तवस्तु इनके पाठ्यक्रम में शामिल की जाती है । प्रत्येक आयु वर्ग के बालक के लिए शारीरिक क्षमता व परिपक्वता का विशेष स्थान होता है । सभी के लिए समान विषय-वस्तु होती है । किन्तु व्यक्तिगत भिन्नता के कारण विशेष शिक्षण विधियां तथा

अभिक्रमित अनुदेशन, दल शिक्षण, शिक्षण प्रतिमान पर आधारित शिक्षण अन्त: क्रिया साधिकारवाद अधिगम (Mastery Learning) पर आधारित पाठ्यक्रम की सिफारिश करती है ।

वैयक्तिक भिन्नता और पाठ्यक्रम (Individual differences & Curriculum) -उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है । कि व्यक्ति की मानसिक योग्यताएँ, शारीरिक क्षमता (Physical Ability) भावात्मक संगठन (Emotional Organization) और व्यक्तित्व (Personality) की विशिष्टताओं/विशेषताओं में अन्तर पाया जाता है । एक ही व्यक्ति कई प्रकार के आयु स्तर के व्यवहार करता है । और कोई एक सूचक अंक (Reliable Base) उसकी समस्त क्षमताओं को व्यक्त नहीं करता अत: अधिगमकर्ता की शारीरिक आयु किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम के आयोजन का विश्वसनीय आधार (Reliable Base)नहीं बन सकती । इस प्रकार सामान्य योग्यता के आधार पर किया गया वर्गीकरण उचित नहीं होता ।

पाठ्यक्रम और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नवाचार (Innovation Based on Psychological Principles and Curriculum)-वैयक्तिक विभिन्नताओं ने यह सिद्ध कर दिया है । कि एक प्रकार की शिक्षण प्रक्रिया प्रत्येक छात्र के लिए तथा प्रत्येक छात्र के लिए तथा प्रत्येक अन्र्तवस्तु के लिए उपयोगी नहीं व पाठ्यक्रम (Curriculum) में ऐसी अन्र्तवस्तु का समावेश किया जाय-जो वैयक्तिक भिन्नता पर नियंत्रण रखता हो यथा-प्रायोजना पर नियंत्रण रखता हो यथा - प्रायोजना कार्य (Project work),समस्या समाधान (Problem Solving),अभिक्रमित अनुदेशन (Programme Instructions),दल शिक्षण (Team teaching)तथा शिक्षण (Teaching)तथा शिक्षण प्रतिमानों (Teaching Models) पर आधारित शिक्षण अन्त: क्रिया से वैयक्तिक भिन्नता के आधार पर भी अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किया जा सकता है ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य (Context)में साधिकारवाद अधिगम (Mastery Learning),ज्ञान रचनावाद (Knowledge Constructism),सहयोगात्मक अधिगम (Cooperative Learning)तथा संप्रत्यात्मक ज्ञानात्मक चित्रण (Cognitive map of Conceptual)जैसे उच्च स्तरीय अधिगम का प्रयास किया जाता है । यदि हम अधिगम के सिद्धान्तों तथा शिक्षण व्यूह रचना (Teaching Strategy) में संबंध स्थापित करके अधिगम अनुभव प्रदान करते है । तो अधिगमकर्ता की ग्रहण क्षमता में ना केवल वृद्धि होती है । अपितु उसके ज्ञान का स्तर (Level of Knowledge) भी उच्च होता है । अनेक मानसिक क्रियाओं यथा-स्मरण शक्ति, चिन्तन शक्ति कल्पना शक्ति, तर्क शक्ति, अभिव्यंजना शक्ति तर्क, शक्ति, अभिव्यंजना शक्ति आदि का विकास छात्रों की मानसिक अवस्था (Mental Stage)जिसमें रूचि (Interest),अभिरूचि (Aptitude),उत्प्रेरणा (Motivation)तथा अभिवृति (Attitude) की आवश्यकता होती है । उनके लिए पाठ्यक्रम में अन्र्तवस्तु का चयन, अन्र्तवस्तु तथा अधिगम अनुभवों का संगठन करने का कार्य भी पाठ्यक्रम आयोजकों को करना चाहिए । जिससे शिक्षण में निरन्तरता बनी रह सके

छात्रों के मानसिक विकास के लिए जो कार्य किये जाने चाहिए उनका संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित स्वरूप निम्नवत हैं -

अधिगम के लिए छात्र की शारीरिक, मानसिक, भावात्मक एवं क्रियात्मक दृष्टि से परिपक्वता (Maturity) भी होनी चाहिए जिसके लिए उत्प्रेरणा जरूरी है ।

- बालक जिस पर्यावरण में रहता है । उसका सीधा प्रभाव उसके अधिगम से होता है । अत: पर्याप्त एवं प्रभावी अनुभव दिये जाने चाहिए ।
- अधिगम के सिद्धान्तों को प्रेरणा, रूचि, तत्परता, अभ्यास व परिणाम के नियमों का पालन करके ही शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाना चाहिए ।
- अधिगमकर्ता के व्यक्तित्व अभिक्षमता अवधान, एकाग्रता, आत्मविश्वास का ध्यान रखकर ही पाठ्यवस्तु को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए ।
- शिक्षण व्यवस्था की सम्पूर्ण प्रक्रिया अर्थात् उद्देश्य से लेकर मूल्यांकन की प्रविधियों को भी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप व्यवस्था होनी चाहिए ।

पाठ्यक्रम के निर्माण में मनोविज्ञान को महन्ती आवश्यकता व उपयोगिता है । अत: मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का पालन करते हुए पाठ्यक्रम के आयोजकों को ध्यान रखना चाहिए ।

4.4 ऐतिहासिक आधार (Historical Basis)

प्रत्येक विषय किसी न किसी इतिहास से जुड़ा होता है । क्योंकि भूतकालीन अनुभवों एवं क्रियाओं पर ही वर्तमान टिका होता है । भूत वर्तमान तथा भविष्य को एक साथ जोड़कर उनका सहज सम्बन्ध स्थापित करके ही भूत के अनुभवों के रूप में पाठ्यक्रम की विषय वस्तु तथा उसके लिए अपेक्षित अधिगम अनुभवों का निर्धारण करके पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है । इस सम्बन्ध में कैथल चार्ल्टन की मान्यता है । कि इतिहास की चर्चा दो रूपों में की जा सकती हैं-इतिहास की अर्न्तवस्तु एवं विधियाँ । अर्न्तवस्तु के रूप में इतिहास भूतकालीन तथ्यों का उल्लेख होने के कारण पाठ्यक्रम निर्माण करने वालों को ऐसी विषय सामग्री करने वालों को ऐसी-विषय सामग्री उपलब्ध कराता है । जिसकी सहायता से ना केवल वर्तमान वरन् भविष्य को भी अच्छी प्रकार से जिया जा सकता है । साथ ही अतीत में हुई गलतियों से भी बचा जा सकता है । इससे समय, साधन और शक्ति का अपव्यय भी रोका जा सकता है । दूसरे रूप में इतिहास की विधि के सम्बन्ध में प्रो० चार्ल्टन की राय में पाठ्यक्रम निर्माण (Curriculum Construction) के सम्बन्ध में चार बातें विशेष रूप से विचार करने योग्य है । ये चार जाते हैं :- प्रतिमान (Model), सामान्यीकरण (Generalization), वस्तुनिष्ठता (Objectivity) तथा परम्परा (Traditions)

प्रतिमान के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है । जो लोग इतिहास में प्रतिमान के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं उनका मानना हैं कि कोई भी इतिहासकार जो तथ्य इतिहास की सामग्री के रूप में संकलित (Collection) करता है । वह उसे उसी रूप में (As it is) प्रस्तुत ना करके उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करता है । वह किसी तथ्य विचार या घटना को सुनियोजित व क्रमबद्ध रूप में अर्थात् कालक्रम या अन्य विषय सामग्री के प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ उसके पूर्व संबंध तथा वैधता (Validity) को भी स्पष्ट करने का प्रयास भी करता है ।

और वह स्पष्टीकरण वह किसी न किसी प्रकार अथवा मानदण्ड (Criteria) के द्वारा करता है। और-इसी प्रक्रिया में वह प्रत्यक्ष अथवा सम्प्रत्यक्ष रूप में किसी न किसी प्रतिमान का उपयोग कर रहा होता है । इस प्रकार इतिहास में तथ्यों के स्पष्टीकरण के रूप में प्रतिमानों का उपयोग पाठ्यक्रम के निर्माण में इतिहास के साथ स्वत: जुड़ जाता है ।

सामान्यीकरण (Generalization) का पाठ्यक्रम निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान है । माइकल आर्कशाट के अनुसार इतिहास का कार्य घटनाओं का वर्णन करना है । उन घटनाओं के वर्णन करने में उठाकर संकलित करके सामान्य नियमों से उस इतिहासकार का कोई संबंध नहीं होता क्योंकि जैसे ही ऐतिहासिक तथ्यों को सामान्य नियमों के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना प्रारंभ किया जाता है । वह इतिहास से दूर होता जाता है । किन्तु आर्कशाट का की यह मान्यता पूर्णतया सही नहीं लगती-क्योंकि इसमें सहमति व्यक्त करने का अर्थ होता हैं - वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित खोज विधि को अस्वीकार करना, जबकि यह खोज विधि-इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है । वास्तव में इस खोज विधि को इतिहास में अपनाने में व्यावहारिक कठिनाई होती है । मोरिस पोविक ने इसके संदर्भ में स्पष्ट किया है । कि कोई भी घटना तभी घटित होती है । जब विचारशील व्यक्ति उसे घटित करते है । क्योंकि ऐतिहासिक घटनाओं का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है । यद्यपि इतिहास सामान्य नियमों की विधिवत खोज तो नहीं करता परन्तु वह घटनाओं के वर्णन तक ही सीमित नहीं हैं उन घटनाओं का स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जाता है । और इस प्रयास के लिए इतिहास सहज रूप से स्वत: सामान्यीकरण का रूप अपना लेता है ।

वस्तुनिष्ठता (Objectivity) से आशय है किसी व्यवहार परिवर्तन को समय अथवा व्यक्ति की दृष्टि से निष्पक्षता रखी जाय । इस रूप में इतिहास एक वस्तुनिष्ठ विषय है । चार्ल्टन के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इतिहास को पर्याप्त रूप में वस्तुनिष्ठ विषय माना जा सकता है । इतिहास के सम्बन्ध में आर्कशाट का मानना है । कि इतिहास केवल इतिहासकार का अनुभव होता हैं, फिर भी इतिहास लेखन के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टि का पर्याप्त मात्रा में विकास हुआ है । इसमें विज्ञान के समान सामान्य सिद्धान्तों के तथ्यानुसार उपलब्धि नहीं हो सकी किन्तु विज्ञान की भांति इतिहासकार भी अनुशासनबद्ध होता हैं, इतिहासकार के समान ही पाठ्यक्रम निर्माता के निष्कर्ष भी स्वयं सिद्ध प्रमाणों पर आधारित नहीं होते, अत: पाठ्यक्रम निर्माण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इतिहास को पर्याप्त अंशों में वस्तुनिष्ठ माना जाता है ।

परम्पराएँ (Traditions) व्यक्ति की अपनी विशेष पहचान होती है । और व्यक्ति किसी न किसी समाज का सदस्य होता है । प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्टताएँ होती है । उसकी अपनी मान्यताएँ, रीति-रिवाज मूल्य तथा कार्य होते हैं, जिससे उसे पहचाना जाता है, समाज के लोग इन परम्पराओं का पालन पीढ़ी दर पीढ़ी बिना किसी तर्क के करते जाते हैं इसके विपरीत समाज के कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो इन परम्पराओं को एक बन्धन समझते हैं और इनसे मुक्ति पाना चाहते हैं, इन दोनों मान्यताओं में किसी एक पक्ष को आधार मान कर पाठ्यक्रम का निर्माण नहीं किया जा सकता किन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य हैं कि पाठ्यक्रम के निर्माण में इन परम्पराओं का बहुत बड़ा योगदान होता है । पाठ्यक्रम निर्माता

विषय वस्तु तथा छात्रों की आवश्यकता के अनुरूप इन परम्पराओं में संशोधन. परिमार्जन करके पाठ्यक्रम का निर्माण करते है ।

4.5 सांस्कृतिक आधार (Cultural Basis)

समाज विशेष संस्कृति भी उस समाज के जीवन जीने के तरीके से सम्बन्धित होती है। समाज के रीति रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा लोकाचार, लोकगीत, लोकनृत्य, पर्व विश्वास, आदतें, मान्यताएं एवं समस्त क्रिया-कलाप संस्कृति की ही आधार होते हैं ।

संस्कृति के इस व्यापक क्षेत्र तथा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध विद्वान एफ, क्लोक ने कहा कि "सत्य तो यह है कि संस्कृति मूल रूप से मानव के किसी विशेष तरीके से रहने की अभिव्यक्ति से अधिक कुछ भी नहीं है । एक समाज की संस्कृति का प्रभाव दूसरें समाज की संस्कृति पर भी पड़ता है ।

संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार, आचरण तथा विचार है । जो शिक्षा से प्रभावित होता है। व्यक्ति के जीवन जीने के तरीके में शिक्षा के कारण परिवर्तन आना सहज क्रिया है । संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक केवल हस्तान्तरित ही नहीं होती वरन् उसमें देश, काल व परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन भी होता है । इस प्रकार संस्कृति का विकास भी होता है । संस्कृति को हस्तान्तरित करने में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान होता है । शिक्षा ही वह सशक्त माध्यम है । जो संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित करती है ।

पाठ्यक्रम निर्माण में वह समस्त अन्तर्वस्तु शामिल होती है । जो संस्कृति को हस्तान्तरित करने में सहायक होती है, क्योंकि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति पाठ्यक्रम के द्वारा होती हैं, पाठ्यक्रम में संस्कृति से जुड़े तथ्यों का उल्लेख रहता हैं, मान्यताएँ, परम्परा व मूल्यों आदि विशेषताओं को पाठ्यवस्तु (Content) के द्वारा प्रदान किये जाते हैं ।

इस प्रकार शिक्षा व संस्कृति का गहरा नाता होता है । जिसके अन्तर्गत समाज से जुड़े रहने के तरीकों का ज्ञान कराया जाता है । पाठ्यक्रम में ना केवल विषय वस्तु वरन् उन अधिगम परिस्थितियों का भी समावेश होता है, जिनके द्वारा संस्कृति का हस्तान्तरण होता है ।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य (Context) में सांस्कृतिक विभिन्नता पायी जाती है और इस भिन्नता का कारण इसमें होने वाले नित नये परिवर्तन तथा नवीन अनुसंधान हैं अत: पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षा भावी सन्तति को ना केवल संस्कृति प्रदान करता है । वरन् उसमें उचित व अनुचित का भेद करके उचित का निर्णय लेने की क्षमता भी उत्पन्न करती है । पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इसके लिए ऐसी अन्तर्वस्तु का चयन किया जाना चाहिए जो सामाजिक मान्यताओं व नैतिक मानदण्डों के अनुरूप हो जिससे एक स्वस्थ्य समाज का विकास हो सके । परम्परा व वर्तमान के बीच संतुलन बनाते हुए परिवर्तन को स्थान देना चाहिए ।

4.6 सामाजिक आधार (Social Basis)

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी के व्यवहार में परिवर्तन करना हैं और यह व्यवहार में होने वाला परिवर्तन वांछित व उचित दिशा में होने पर ही समाज की स्वीकृति प्राप्त करेगा आज का युग जवाबदेही का युग हैं और शिक्षा के केन्द्र विद्यालय समाज के अभिकरण

(Agency) के रूप में कार्य करते हैं और, समाज की विशेषताओं के अनुरूप ही उस समाज की आवश्यकताएँ होती हैं, ऐसी स्थिति में पाठ्यक्रम का आकलन व विवेचन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता है । फ्रेन्क मसग्रुव के अनुसार - "पाठ्यक्रम एक सामाजिक प्रणाली है । जिसे समाजशास्त्र की सहायता से ही समझा जा सकता हैं ।

समाजशास्त्री पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन की जाँच-परख करके उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को समझने में सहायता करता है । इस प्रकार वह हमें इस तथ्य (Fact) का बोध (Comprehersion) कराता है कि पाठ्यक्रम वह उपकरण (Tool) है जिसके द्वारा विद्यालय सामाजिक लक्ष्यों (Aim) व उद्देश्यों (Objectives) की प्राप्ति का प्रयास करते हैं अत: पाठ्यक्रम का केवल शैक्षिक ही नहीं वरन् सामाजिक महत्त्व भी है । जे. एन. पुरोहित के शब्दों में उद्देश्य वे अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन हैं जो एक शिक्षक अपने शिक्षार्थी में देखना चाहता है। वांछित दिशा में व्यवहार परिवर्तन लाने की प्रक्रिया के द्वारा पाठ्यक्रम समाज व उसके व्यक्त से सम्बन्धित होती है । जिसे-पाठ्यक्रम का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पक्ष कहा जाता है ।

मानव व्यवहार जिसका अध्ययन मनोविज्ञान करता है, वास्तव में सामाजिक अन्त: क्रिया (Social Interaction) का परिणाम होता है । मानव व्यवहार की जितनी भी क्रियाएँ होती हैं जैसे - प्रेम, घृणा, सहयोग, दया, सहानुभूति, नेतृत्व, अनुसरण आदि सामाजिक सन्दर्भ में ही सम्पादित होती हैं । हम जो कुछ भी सीखते है अथवा व्यवहार करते हैं वे समस्त क्रियाएँ सामाजिक अन्त: क्रिया का परिणाम होती है । सम्पूर्ण शिक्षा सामाजिक प्रवृत्तियों के द्वारा ही सम्पन्न की जाती है । विद्यालय में इस व्यवहार परिवर्तन के लिए क्या पढ़ाया जाय? क्यों पढ़ाया जाय? कैसे पढ़ाया जाय ? इन सबका निर्धारण समाज द्वारा स्वीकृत मान्यताओं के अनुरूप होता हैं, इसीलिए कहा भी जाता है । कि "शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है । (Education is a social process)

पाठ्यक्रम की पाठ्यवस्तु का निर्धारण करने के लिए पाठ्यक्रम आयोजकों को समाज को पहचानना व समझना होता है और उसकी विशेषताओं तथा निर्धारित मूल्यों को अपने पाठ्यक्रम (Syllabus) में शामिल करके बालक का समाजीकरण करना होता है । इस प्रकार विद्यालय के कार्यक्रम पर सामाजिक संस्थाओं तथा शक्तियों के प्रभाव ही पाठ्यक्रम के सामाजिक आधार माने जाते हैं । समाज की मान्यता व आवश्यकता के सन्दर्भ में समाज की स्थिति से उसका उचित समायोजन (Adjustment) करना ही शैक्षिक उद्देश्यों का प्रमुख आधार होता है । केवल शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण में ही सामाजिक समायोजन नहीं है । वरन् पाठ्यक्रम निर्माण व संगठन में अधिगम अनुभवों तथा अर्न्तवस्तु के चयन और मूल्यांकन से भी महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध होता है । विद्यार्थी जिस सामाजिक स्थिति (Status) का होगा उसे उस स्थिति के अनुरूप ही अधिगम अनुभव (Learning Experience) प्रदान करने होंगे अर्थात् वैयक्तिक भिन्नता (Individual difference) जिसमें आर्थिक स्थिति लिंग, आयु वातावरण आदि समाविष्ट होते है । उनके लिए पाठ्यक्रम में ऐसी अन्तर्वस्तु तथा अधिगम

परिस्थिति (Learning Situation) होगी । जीवन कौशल (Life Skill) का पाठ्यक्रम में समावेश किया जाना इसका एक नमूना है ।

राजनीतिक दवाब समूह (Political Pressure Groups) की भांति सामाजिक दबाव समूह (Social Pressure Groups) होते है । अर्थात् पाठ्यक्रम निर्माताओं पर समाज का दबाव बना रहता है । किसी, सामाजिक मान्यता के विपरित क्रियाएँ विद्यालयों के' समक्ष चुनौती होती हैं उनका पालन करना होता है । ये दबाव परिवर्तन लाने तथा उन्हें रोकने दोनों ही उद्देश्यों के लिए कार्य करते हैं । परिवर्तन को रोकने वाली शक्तियों में सामाजिक, परम्पराएँ, धार्मिक विश्वास, नैतिक मान्यताएँ सामाजिक व्यवस्था तथा पुरानी पीढ़ी हैं तो परिवर्तन लाने वाली शक्तियों में प्रमुख हैं-नई पीढ़ी, नवीन विचार धाराएँ, वैज्ञानिक खोज एवं दृष्टि कोण ।

समाज की संस्थाओं व अभिकरणों के रूप में परिवार, जाति, रीति-रिवाज, लोकाचार के रूप में शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर अधिक हावी होते है । धीरे-धीरे विद्यालय की शैक्षिक क्रियाएँ उनमें ढील लाने का कार्य करती है । पुरानी व नई विचारधाराओं में एक टकराव होने जो समायोजन में मदद करता है । विद्यालयों की बढ़ती जिम्मेदारियां, परिवार का सिकुड़ता क्षेत्र अर्थात् संयुक्त परिवार से एकल परिवार और वर्तमान । में विघटित परिवार तथा पुरूष के अलावा महिला का कामकाजी होना बालकों पर विद्यालय के प्रभाव को अधिक आकर्षित करता है । विद्यालय में शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक की सामाजिक स्थिति भी विद्यार्थी को प्रभावित करती है । साथ ही शिक्षक भी अपनी सामाजिक स्थिति का महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ते है।

इसी प्रकार पाठ्यक्रम निर्धारकों को छात्रों की जनसंख्या उसकी स्थिति, समाज की प्रकृति भी प्रभावित करती है । समाज में होने वाले परिवर्तन पाठ्यक्रम में संशोधन, परिमार्जन करते हैं और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों, शिक्षा की अधिक मांग ने देश व परिस्थिति की सीमाओं को भी पार कर लिया है । ई-लर्निग जैसी शिक्षण प्रक्रिया इसका ज्वलंत उदाहरण है ।

सार रूप में पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाली सामाजिक स्थितियों में बदलनी मान्यताएं तथा नवीन वैज्ञानिक अनुसंधान महत्त्वपूर्ण आधार है । पाठ्यक्रम के दार्शनिक मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सामाजिक आधारों में ना केवल शिक्षा के उद्देश्यों को दिशा, प्रदान की हैं वरन् इनकी प्राप्ति के लिए, प्रभावपूर्ण अधिगम परिस्थिति व विषय वस्तु के चयन तथा इस विषय वस्तु का अधिगम अनुभवों के संगठन से लेकर मूल्यांकन की प्रविधियों (Techniques) व उपकरणों (Tools) को दिशा एवं गति प्रदान की है ।

जैसा दर्शन होगा वैसे ही उद्देश्य होंगे और उद्देश्यों का निर्धारण करने में मनोवैज्ञानिक, सिद्धान्तों का पालन करके ही इतिहास की घटनाओं से सूचनाएँ प्राप्त करके संस्कृति का हस्तान्तरण कर भावी सन्तति को सामाजिक मान्यताओं के साथ समायोजन करके शिक्षा को अपना दायित्व निर्वहन करना होगा तभी समाज व शिक्षण के बीच प्रभावी एवं महत्त्वपूर्ण संबंध के साथ समयोचित उपलब्धि होगी ।

4.7 समन्वित पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ (Co-Curriculum and Co-curricular Activities)

वैज्ञानिक व तकनीकी विकास तथा उनसे उत्पन्न जटिलताओं व आवश्यकताओं ने पाठ्यक्रम के स्वरूप में बाकी परिवर्तन एवं विकास किया है । आज के भौतिकवादी तथा तकनीकी युग में व्यक्ति एक नहीं अनेक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर अधिक से अधिक योग्यताएँ हासिल करना चाहता हैं, यह व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकता भी बनती जा रही है । नित-नये होने वाले आविष्कार व वैज्ञानिक प्रयोगों ने एक विषय को दूसरे विषय से स्वत: संबंध स्थापित करने की परिस्थिति उत्पन्न कर दी व्यक्ति की जिम्मेदारियों में भी वृद्धि हो रही हैं और उसके सामाजिक जीवन में अनेक जटिलताएँ उत्पन्न हो रही है । इस प्रकार व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति विविध प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति उसके समन्वय (Co-ordination) द्वारा ही हो सकती है, इसी कारण समन्वित अर्थात केन्द्रीभूत (Core) पाठ्यक्रम के विकास की संकल्पना सामने आयी इस प्रकार के पाठ्यक्रम की संकल्पना के सम्बन्ध में विभिन्न मत है ।

प्रसिद्ध पाठ्यक्रम विशेषज्ञ हिल्ड्रा टाबा के अनुसार समन्वित पाठ्यचर्या में समूहित विषय वस्तु जीवन के कार्यो समसामयिक समस्याओं और विद्यार्थियों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं से सम्बन्धित है । साथ ही इस समन्वयता के कार्यक्रमों में जीवन की समस्याओं तथा छात्रों की अभिरुचियों से भी सम्बद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है ।

इस प्रकार समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न विषयों के संगठन (Organization) द्वारा समन्वित पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है । पाठ्यक्रम के संगठन का आधार शिक्षार्थियों की अभिरुचियों, आवश्यकताओं व अनुभवों को मानते है और कुछ विद्वान विषयों के आधार पर संगठन की सिफारिश करते हैं

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ हैरिक ने पाठ्यक्रम संगठन को चार भागों में बाँटा हैं -

1. विषय आधारित संगठन
2. व्यापक, क्षेत्रीय संगठन
3. समस्या आधारित संगठन
4. आवश्यकता आधारित संगठन

प्रत्येक प्रकार के पाठ्यक्रम संगठन, के आधार की अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ हैं, इन्हें संक्षिप्त रूप में निम्नवत बताया गया हैं

विषय आधारित पाठ्यक्रम की विशेषताएँ -

1. इस पाठ्यक्रम में परिवर्तन. संशोधन की सुविधा होती हैं
2. यह नवीन ज्ञान व तथ्यों को उपयोगी रूप में व्यवस्थित कर सकता है ।
3. इससे प्राप्त ज्ञान का दृढ़ीकरण होता है ।
4. यह शिक्षा से जुड़े सभी लोगों के लिए परिचित एवं संगठन में उपयोगी है ।
5. इससे मूल्यांकन में सुविधा रहती है ।

सीमाएँ (Limitations) -

1. इसके द्वारा सीखने की गति धीमी होती है ।
2. यह उद्देश्यों को सीमित रखता है ।
3. अधिगम का स्थानान्तरण तथा एकीकरण करना कठिन होता है ।
4. यह शिक्षा से जुड़े सभी लोगों के लिए परिचित एवं संगठन में उपयोगी है । इससे मूल्यांकन में सुविधा रहती है ।

समन्वित/केन्द्रीभूत (Core) पाठ्यक्रम की विशेषताएँ -

1. सभी छात्रों की आवश्यकता की पूर्ति में सहायक
2. इसमें परामर्श भी अध्ययन के साथ-साथ चलता है ।
3. इसमें विषय वस्तु के परम्परागत विभाग एवं खण्ड नहीं होतें ।
4. कालांश पर्याप्त एवं समय विभाग, चक्र (Time table) लचीला होता है ।
5. शिक्षण समस्या केन्द्रित -
6. शिक्षण विविध अधिगम अनुभवों को शामिल किया जाता है ।

सीमाएं (Limitations) -

1. शिक्षक की आवश्यकताओं का भार बढ़ाना
2. सहयोगी शिक्षकों की सहायता कठिन -
3. विषय वस्तु का अधिक भार
4. क्रियान्वयन में कठिनाई ।

समन्वित पाठ्यक्रम तथा पाठयक्रम सहगामी क्रियाएँ (Co-Curriculum and Co-curricular Activities) -जिस प्रकार व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों ने पाठ्यक्रम के स्वरूप में परिवर्तन संशोधन एवं विकास में योगदान दिया है । उसी प्रकार पाठ्यक्रम से जुड़े सभी तथ्यों में पाठ्यक्रम से जुड़े सभी तथ्यों में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को भी एक नई दिशा व गति प्रदान की है और समन्वित पाठ्यचर्या (Co-Curriculum) के सन्दर्भ में तो ये पाठ्येतर क्रियाएँ और अधिक विस्तृत रूप में समावेशित हो रही है । पहले विषय वस्तु का सीमित स्वरूप था पाठ्यक्रम (Syllabus) किन्तु इस पाठ्यक्रम के बढ़ते स्वरूप एवं क्षेत्र के कारण विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन के लिए किये गये प्रयासों ने विषय वस्तु के अन्तर्गत पाठ्य सामग्री के साथ पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के समावेश के कारण पाठ्यचर्या में समन्वित पाठ्यक्रम की सहभागिता में वृद्धि हो रही है ।

यदि विद्यार्थी के व्यवहार परिवर्तन के तीनों पक्षों - ज्ञानात्मक (Cognitive), भावात्मक (Affective) तथा क्रियात्मक (Conative/Psychomoter) के विकास के लिए शिक्षण क्रियाएँ अथवा अधिगम अनुभव प्रदान किये जाये तो वे समस्त पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ समन्वित पाठ्यक्रम में समाहित होंगी जिनके द्वारा विभिन्न विषयों के अधिगम अनुभव भी सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन करने में सहायक होते है ।

समन्वित पाठ्यचर्या में विषय अथवा जीवन प्रवृत्तियों पर आधारित अधिगम अनुभव प्रदान करने पर उपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकेगी एक विषय का दूसरे विषय के साथ सम्बन्ध स्थापित करने अथवा समवाय करने के लिए विविध प्रकार के अधिगम अनुभवों को

पाठ्यचर्या में स्थान देना होगा । इसके लिए पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में शारीरिक क्रियाएँ जिसमें संतुलन बनाना, आंगिक गति का संचालन करना आदि होते हैं तो मानसिक क्रियाओं में बौद्धिक क्षमता का विकास करने हेतु स्मरण तर्क, अभिव्यंजना, चिन्तन, कल्पना आदि मानसिक शक्तियों का विकास करने वाली क्रियाओं के रूप में प्रश्नोत्तरी कूट प्रश्न, पहचान, गणना करना आदि का प्रयोग करके सीखने वाले के ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है । सांस्कृतिक क्रियाओं का भी अपना विशेष स्थान है । इसका प्रमुख उद्देश्य किसी तथ्य अथवा घटना को रोचकपूर्ण तरीके से प्रस्तुत करना जिसमें शारीरिक व मानसिक दोनों ही प्रकार की क्रियाएँ शामिल की जा सकती है ।

इस प्रकार समन्वित पाठ्यक्रम एवं पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का परस्पर सहज सम्बन्ध है । अर्थात् दोनों एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करके ही विद्यार्थी के लिए अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन के लिए खरे उत्तर सकेंगे इन पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के अभाव में विषयों का केवल, सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त होगा जो सभी प्रकार के व्यवहार परिवर्तन में असफल होगा । पाठ्यक्रम में इन पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का समावेश करना आवश्यकता बनता जा रहा है ।

4.8 सारांश (Summary)

विद्यालयों में सीखने वाले के व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए जो कुछ किया जाता है । वह पाठ्यक्रम कहलाता है ।

पाठ्यक्रम वह अभिकल्प है । जिसे कोई समाज अपने बालकों के शैक्षिक अनुभवों के लिए तैयार करता है । इस अभिकल्प में पाठ्यवस्तु के अतिरिक्त वे शैक्षिक अनुभव भी समाहित रहते हैं । जिनका विस्तार पाठ्य विषयों एवं उनके कौशलों की प्रवृत्तियों का आयोजन विद्यालयों द्वारा पाठ्यक्रम के द्वारा किया जाता है ।

जिन मूल्यों को लेकर पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता हैं । उन्हें पाठ्यक्रम के आधार माना जाता है ।

पाठ्यक्रम के आधारों को विद्यालयों द्वारा अपने विद्यार्थियों के लिए प्रस्तुत अधिगम अनुभवों की प्रकृति, प्रकार, मात्रा तथा गुणात्मकता को प्रभावित करने वाले मूल्यों, परंपराओं घटकों तथा शक्तियों के रूप में भी परिभाषित - किया जा सकता है ।

पाठ्यक्रम निर्माता समाज की प्रवृत्ति व मूल्यों का बारीकी से निरीक्षण करके उन दार्शनिक आधार तथा ऐतिहासिक घटनाओं के संदर्भ में सूचनाएं प्राप्त करते हैं । और वे प्राप्त सूचनाएँ प्राप्त करते हैं और वे प्राप्त सूचनाएँ ही पाठ्यक्रम का मूल आधार होती हैं ।

शिक्षा तथा समाज का आपस में गहरा सम्बन्ध होता हैं । इन संबंधों को स्पष्ट करनें के लिए पाठ्यक्रम के विकास की प्रक्रिया की तीन पक्ष होतें हैं :-

(1) समाज (2) व्यक्ति (3) सांस्कृतिक विरासत

इन तीनों पक्षों को ही पाठ्यक्रम के आधारों का निर्धारक माना जाता है । इन आधारों को निम्न पाँच भागों में बाँटा गया हैं -

1. दार्शनिक आधार

2. मनोवैज्ञानिक आधार

3. ऐतिहासिक आधार

4. सांस्कृतिक आधार

5. सामाजिक आधार

दार्शनिक आधार के अनुसार प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव पाठ्यक्रम पर पडता हैं, दार्शनिक विचारधाराओं में प्रमुख हैं :-

1. आदर्शवाद

2. प्रकृतिवाद

3. यथार्थवाद

4. प्रयोजनवाद

5. मानवतावाद

6. अस्तित्ववाद

आदर्शवादी दर्शन शाश्वत मूल्यों में विश्वास करता है इसमें शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य आदर्शो का पालन करता हैं यह शिक्षा विचार को महत्त्व देती हैं और इसके अनुरुप विचार प्रधान विषयों को पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों को दिये जाते हैं ।

प्रकृतिवादी विचारधारा बालक को पूर्ण स्वतंत्रता देकर प्रकृति की तरह स्वाभाविक विकास पर बल देती है । इसमें भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र विज्ञान आदि विषयों को स्थान दिया जाता है ।

यथार्थवादी विचारक, भौतिक तथा प्रत्यक्ष जगत को तथा पदार्थ को महत्त्व देते हुए यथार्थवादी पाठ्यक्रम में कारण व परिणाम को आधार मानकर आगमन निगमन पर बल देते हैं। इसमें गणित, भौतिक तथा सामाजिक विज्ञान आदि विषयों को स्थान दिया जाता है ।

प्रयोजनवाद का प्रमुख बल कार्य करने पर है । ये करके सीखने पर बल देते है । समस्याओं का हल खोजने के लिए पर्यावरण तथा अनुभव प्रदान किये जाते है । इसमें गृह विज्ञान, कृषि विज्ञान की सिफारिश की जाती है ।

पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार-शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करना है । बालक की प्रकृति, उसकी आवश्यकता, रूचि, क्षमता, योग्यता का पता लगाकर उनके अनुरूप पाठ्यक्रम की अन्तर्वस्तु का चयन व प्रस्तुतीकरण किया जाता है । सीखने वाले की शारीरिक परिपक्वता, व्यक्तिगत भिन्नता, अभिरूचि, अभिप्रेरणा, आदि मनोवैज्ञानिक कारक पाठ्यक्रम के निर्माण में अधिगम अनुभवों को स्थान देने में सहायता प्रदान करते है ।

पाठ्यक्रम के ऐतिहासिक आधार-भूतकालीन अनुभवों एवं क्रियाओं पर वर्तमान टिका होता है । इतिहास की विधि में प्रतिमान, सामान्यीकरण, वस्तु निष्ठता तथा परम्परा प्रमुख तत्व है । इतिहास के इन तथ्यों में ही पाठ्यक्रम की विषय वस्तु टिकी होती है । इतिहासकार विज्ञान की भांति अनुशासनवद्ध होती है । और इसके समान ही पाठ्यक्रम के निर्माता के निष्कर्ष

भी स्वंय सिद्ध प्रमाणों पर आधारित नही होते अत: पाठ्यक्रम इतिहास से विषय वस्तु प्राप्त करता है ।

पाठ्यक्रम के सांस्कृतिक आधार-संस्कृति का सम्बन्ध समाज के रीति, रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, लोक गीत, लोकाचार, लोकनृत्य पर्व आदि जीवन जीने के तरीकों से होता है । पाठ्यक्रम निर्माण में वह समस्त अर्न्तवस्तु शामिल होती हैं जो संस्कृति के हस्तान्तरण करने में सहायक होती है । पाठ्यक्रम में संस्कृति से जुड़े तथ्यों का उल्लेख रहता है और संस्कृति का परिचय पाठ्यक्रम द्वारा दिया जाता है । संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन होते है ।

पाठ्यक्रम के सामाजिक आधार-समाज के अभिकरण के रूप में विद्यालय कार्य करते है। और सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप शिक्षा प्रदान करने पर ही विद्यालयों को समाज की स्वीकृति प्राप्त होती है । पाठ्यक्रम का आकलन भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही किया जाता है । पाठ्यक्रम वह सामाजिक प्रणाली है । जिसमें समाज शास्त्र की सहायता से ही समझा जा सकता है ।

समाजशास्त्री पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन की जाँच-परख करके उन समस्याओं का समाधान करने में सामाजिक अन्त: क्रिया करवाता है । मानव, व्यवहार की जितनी भी क्रियाएं होती है । वे सब सामाजिक सन्दर्भ में सम्पादित होती है ।

पाठ्यक्रम की पाठ्यवस्तु का निर्धारण करने के लिए समाज को समझना होता है और समाज की विशेषताओं तथा, उनके निर्धारित मूल्यों, को शामिल करके बालक का सामाजीकरण करके उसको सामाजिक समायोजन के अनुकूल बनाता है ।

समन्वित पाठ्यक्रम का अर्थ होता है विभिन्न विषयों का समवाय करके अधिगम अनुभव प्रदान करना जिससे छात्र अधिक से अधिक ज्ञान, प्राप्त कर जीवन की जटिल समस्याओं का हल खोजने की योग्यता अर्जित कर सकें ।

पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में वे समस्त प्रकार के शारीरिक, मानसिक तथा सांस्कृतिक व अन्य सभी प्रकार के अधिगम अनुभव शामिल किये जाते है । जिससे पाठ्यचर्या की अन्तर्वस्तु का संतुलित, वास्तविक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हों सकें और छात्र वह सब सीख सकें जो उसके लिए आवश्यक है ।

पाठयक्रम सहगामी क्रियाओं के आयोजन से ही पाठ्यचर्या के विविध विषयों के लिए विभिन्न अधिगम अनुभव प्राप्त किये जा सकते है । यह समन्वित पाठ्यक्रम की विशिष्टता है।

मूल्यांकन (Evalution Question)

1. पाठ्यक्रम किसे कहते है ।
   What is the Meaning of Curriculum?
2. पाठ्यचर्या के निर्धारकों का क्या अर्थ है?
   What is the Meaning of Curriculum?
3. पाठ्यचर्या/पाठ्यक्रम के निर्धारक आधार कौन-कौन से हैं?
   What are the Bases of Determinents of Curriculum?

4. पाठ्यचर्या के जिस आधार को आप सर्वाधिक पसन्द करते हैं उसका तर्क सहित वर्णन कीजिए ।

   Explain with logic the base of Curriculum which you like most?

5. समन्वित पाठ्यचर्या से आप क्या समझते हैं?

   What do you mean by core Curriculum?

6. समन्वित पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का आपस में क्या सम्बन्ध हैं?

   What is the relationship between core Curriculum and co-curricular Activities?

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Edger Wesely-Advance Methodology of Teaching Social Science.
2. श्याम लाल कौशिक-पाठ्यक्रम विकास ।
3. **Clifford T.Morgan,Richard A King,John R.Weisz John Schopter-** Introduction to Psychology,Tata Mc Graw-Hill Publishing Company,New Delhi.
4. **Kusum,Smt.R.K.Sharma,Dr.A.A.Agarwal,Pawal Pandit -**Essentials of Education Technology and Management.
5. **A.R.Sharma-** Education Technology.

इकाई 5

पाठ्यक्रम में विचारणीय दार्शनिक विचार:दर्शन एक पाठ्यक्रम बल के रूप में, प्रगतिवादी, पुनर्निर्माणवादी, आधारभूतवाद एवं प्रगतिवाद के अनुसार पाठयक्रम मूल्यों एवं पाठयक्रम के बीच समबन्ध

(Philosophical Consideration: Philosophy as a Curriculum Force, Curriculum as advocated in Progressivism,Essentialism and Reconstructivism.Relationship between values and Curriculum)

इकाई की संरचना (Structure of the Unit)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

5.1 पाठ्यक्रम बल (Curriculum Force)

5.2 पाठ्यक्रम पक्षपोषण (Curriculum Advocated)

– प्रगतिवाद(Progressivism)

– तत्ववाद (Essentialism)

– पुनर्निर्माणवाद (Reconstructivism)

5.3 पाठ्यक्रम और मूल्य के बीच सम्बन्ध
(Relationship between values and Curriculum)

5.4 सारांष (Summary)

5.5 संदर्भ ग्रन्थ(References)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पध्वात आप -

- पाठ्यक्रम निर्धारण में दार्षनिक बल को समझ पायेंगे ।
- प्रगतिवादी दर्षन और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध को समझ पायेंगे ।
- तत्त्ववादी दर्षन और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध को समझ पायेंगे ।
- पुनर्निर्माणवादी दर्शन और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध को समझ पायेंगे ।
- मूल्य और पाठ्यक्रम के बीच सम्बन्ध को समझ पायेंगे ।

5.1 पाठ्यक्रम में दार्शनिक विचार(Philosophical Consideration)

हम जानते हैं कि दर्शन एक मानसिक प्रक्रिया के साथ-साथ सैद्धान्तिक प्रक्रिया भी है जिसका उद्देश्य सत्य का अन्वेशण करना है । इस सत्य के अन्वेशण के लिए दर्शन अपने विभिन्न शाखाओं, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा, नीतिशास्त्र एवं तर्कशास्त्र आदि का मदद लेता है। कह सकते है कि दर्शन एक प्रकार से चिन्तन करने वाला विषय वस्तु है और यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित चिन्तन करता है तथा ज्ञान को उद्घाटित करता है । ऐसे में दर्शन शिक्षा की मदद करता है । क्योंकि हम जानते है कि शिक्षा ज्ञान तक पहुँचने का एक साधन है, प्रक्रिया है जो अपने आप में लचीली एवं फैलाव लिए हुए है । शिक्षा में ज्ञान तक पहुँचने के लिए विभिन्न प्रकार के विषयवस्तुओं की व्यवस्था की जाती है । जो अलग-अलग प्रकृति रखते हैं । ये सभी विषय मानव के ज्ञान के लिए अपना-अपना योगदान देते हैं ।

चूंकि ज्ञान का फैलाव अनन्त तक है इसलिए एक समस्या सामने आती है कि कितना ज्ञान दिया जाये? किस स्तर के अधिगमकर्ता को किस प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता है? इन प्रश्नों के सन्दर्भ में दर्शन, मानव के जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए कुछ उद्देश्यो की ओर संकेत करता है जिससे कि उन उद्देश्यो के आधार पर ज्ञान की व्यवस्था की जा सके । ये उद्देश्य ही ज्ञान की सीमा तय करते हैं जिसके लिए शिक्षा अपने संगठनात्मक ढाँचे के अन्तर्गत उसे पूरा करने का प्रयास करती है । इसके लिए शिक्षा भी अपना उद्देश्य निर्धारित करती है । यहाँ पर उद्देश्य (Aim) से मिलते जुलते कुछ अन्य समानार्थी शब्द है जो हमेशा एक प्रकार से संशय उत्पन्न करते हैं । अत: यहाँ पर उद्देश्य (Aim)लक्ष्य (Goal), प्राप्य उद्देश्य (Objective) तथा अनुदेशनात्मक उद्देश्य को समझने व अन्तर करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है ।

जब हम उद्देश्य (Aim) के विषय में चर्चा करते है तब इसका संबंध दर्शन से होता है । उद्देश्य (Aim) एक दार्शनिक प्रत्यय है जिसका संबंध शिक्षा की चेतनाशीलता से है अर्थात् मानव जो कुछ भी प्राप्त करना चाहता है उसकी आदर्श स्थिति से है । इस आदर्श की स्थिति को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है । उद्देश्य शब्द के यदि शाब्दिक अर्थ को देखे तब भी यही अर्थ सामने आता है कि इसका संबंध जीवन के उच्च आदर्शों है । उद्देश्य (Aim) शब्द 'उत' और 'दिष' शब्दों से मिलकर बना है । जिसका अर्थ है, उत=ऊपर की ओर तथा दिष=दिषा दिखाना, अर्थात् उच्च दिषा की ओर संकेत करना । मनुष्य अपने जीवन काल में जो कुछ भी प्राप्त करना चाहता है उसकी आदर्ष स्थिति की ओर संकेत करता है । उद्देश्य को व्यक्ति प्राप्त नहीं कर पाता किन्तु उसकी ओर अग्रसर अवष्य रहता है ।

लक्ष्य (Goal) को कई बार एवं कई स्थान पर उद्देश्य ही कह दिया जाता है किन्तु ऐसा नहीं है । लक्ष्य उद्देश्य का एक छोटा भाग होता है । जिसे देर से प्राप्त किया जाता है । अर्थात् लक्ष्य को एक छोटे उद्देश्य के रूप में देख सकते हैं जब कई लक्ष्य मिलते तब तक एक उद्देश्य तैयार होता है । लक्ष्य को व्यक्ति जीवन में प्राप्त करता है उसे सीमा में बाँध सकता है। लक्ष्य की प्राप्ति हो जाने पर व्यक्ति दूसरे लक्ष्य को निर्धारित करता है अर्थात् यह व्यक्ति के पूरे जीवन में लगातार चलती रहती है एवं निर्धारित होती रहती है ।

प्राप्य उद्देश्य, लक्ष्य के एक छोटे से भाग के रूप में व्यक्त किया जाता है अर्थात् यह बहुत अल्प समय में प्राप्त कर लिया जाता है । प्राप्तिक उद्देश्य बहुत निश्चित होते हैं, क्योंकि इन्हें एक निश्चित अवधि में प्राप्त कर लिया जाता है । जब भी प्राप्तिक उद्देश्य का सम्प्रत्यय सामने आता है, तब तुरन्त निश्चित यह हो जाता है कि इसमें प्राप्त होने वाला गुण विद्‌यमान है ।

जहाँ तक अनुदेशनात्मक उद्देश्य की बात है तब यह कह सकते हैं कि प्राप्तिक उद्देश्य की सबसे छोटी इकाई का प्रदर्शित रूप अर्थात् क्रिया (Action) के रूप में होता है जो कि कक्षा में शिक्षण के दौरान प्राप्त किया जाता है, जिससे कि मानव में व्यवहार परिवर्तन करने की प्रक्रिया आरम्भ की जाती है । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि औपचारिक शिक्षा के संगठन के अन्तर्गत कक्षा शिक्षण के दौरान प्राप्त होने वाला उद्देश्य जो क्रिया के द्‌वारा व्यवहार परिवर्तन करने में सक्षम होता है । उसे अनुदेशनात्मक उद्देश्य कहते हैं।

इन उपरोक्त चारों पदों को इस प्रकार समझ सकते हैं-

उद्देश्य (Aim) = आदर्श (Ideal)

लक्ष्य (Goal) = निर्धारित बिन्दु और उसकी तरफ बढ़ने की **प्रक्रिया**

(Set point and process of toward march)

प्राप्तिक उद्देश्य (Objective) = प्राप्य (Achievable)

अनुदेशनात्मक उद्देश्य = व्यवहार परिवर्तन (Behaviour Change)

(Instruction Objective)

अर्थात् उद्देश्य > लक्ष्य > प्राप्तिक उद्देश्य > अनुदेषनात्मक उद्देश्य

यहाँ देख सकते हैं कि दर्षन जीवन के उद्देश्य की ओर इंगित करता है और शिक्षा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अलग-अलग प्रकार के ज्ञान के स्त्रोत के रूप में विषयों को सामने उपस्थित करता है, जिससे कि ज्ञान को ग्रहण किया जा सके क्योंकि प्रत्येक विषय वस्तु अपने-अपने प्रकृति के अनुसार ज्ञान की व्यवस्था करते हैं । चूंकि हम जानते हैं कि किसी भी क्षेत्र के ज्ञान की कोई निश्चित सीमा नहीं है । अब ऐसे में समस्या उत्पन्न होती है कि कितना ज्ञान उस विषयवस्तु का देना जिसे हम देना चाहते हैं । इस समस्या के समाधान के लिंए शिक्षा अलग-अलग विषयों के ज्ञान से संबंधित पाठ्‌यक्रम को प्रस्तुत करता है । इस पाठ्‌यक्रम के द्‌वारा कितना ज्ञान देना है और यह ज्ञान किस उद्देश्य की पूर्ति करेगा, यह निश्चित हो जाता है। यहाँ बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि दर्शन द्‌वारा निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा पाठ्‌यक्रम निर्मित करती है अर्थात् पाठ्‌यक्रम के ऊपर दर्शन का प्रभाव अवश्य होता है । यद्‌यपि पाठ्‌यक्रम के निर्माण के लिए कई अलग-अलग पक्ष जैसे समाज, मनोविज्ञान भी सामने आते हैं, किन्तु दर्शन, शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार होने के कारण यह पाठ्‌यक्रम के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । चूंकि किसी भी पाठ्‌यक्रम के मूल तत्वों में उद्देश्य सर्वोपरि होता है और उद्देश्य के निर्धारण का एक आधार दर्शन है । इसलिए पाठ्‌यक्रमों पर दर्शन का बल देखा जा सकता है । इसे इस चित्र के माध्यम से समझ सकते है-

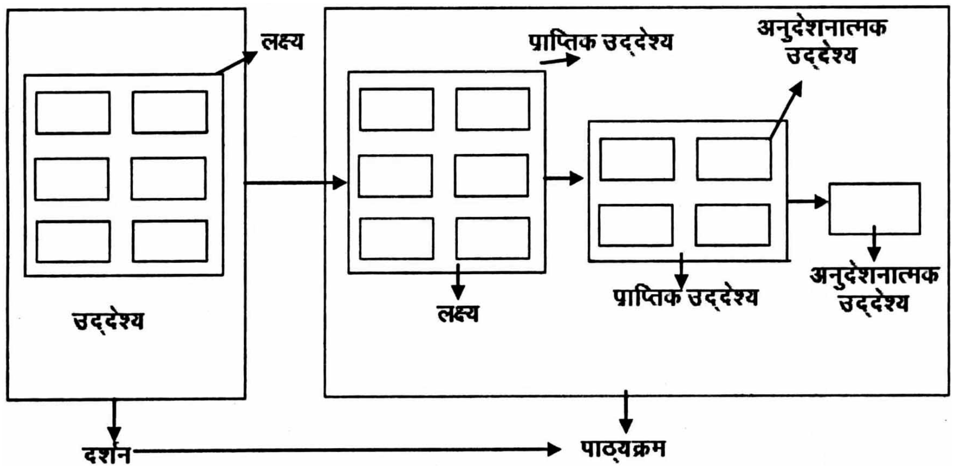

चित्र संख्या 5.3

यहाँ हम देख सकते है कि शिक्षा के लक्ष्य, उद्देश्य (प्राप्तिक) एवं शिक्षण व्यूह रचना (अनुदेशनात्मक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए) के लिए दर्शन, पाठ्यक्रम के निर्माण के लिए आधार प्रस्तुत कर रहा है अर्थात् शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण के पश्चात शिक्षक उन लक्ष्यों को पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करता है ।

पाठ्यक्रम के संबंध में दर्शन का एक महत्वपूर्ण योगदान होता है कि दर्शन ही हमें यह संकेत करता है कि अब तक हमने जिस ज्ञान को प्राप्त किया है, उसका कितना अंश आगे के लिए महत्वपूर्ण है । दर्शन अनुभवों के मूल्य का निर्धारण करता है, इस हेतु पाठ्यक्रम को निश्चय करने में दर्शन यह बताता है कि ज्ञान का कौन सा अंश या अनुभव या भाग मानवीय जीवन के लिए ज्यादा मूल्यवान है । दूसरे रूप में कह सकते हैं कि दर्शन जहाँ एक ओर शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण में सहायता करता है, वहीं दूसरी ओर यह भी परामर्श देता है कि किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किस प्रकार का पाठ्यक्रम निर्मित करना चाहिए । इस बात का प्रमाण पाठ्यक्रम के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखने से मिल जाता है । यह इसलिए भी दिख जाता है कि पाठ्यक्रम ही शैक्षिक आवष्यकताओं का दर्पण होता है । एक समय था जब स्पार्टा के निवासियों को सैनिक बनाने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम में शारीरिक विकास पर बल दिया जाता था । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उनके पाठ्यक्रम में कुश्ती, व्यायाम, खेलकूद एवं कृत्रिम युद्ध को रखा जाता था, क्योंकि उनका देश छोटा था और दुष्मनों से घिरा था । इसी के विपरीत एथेंस का उसी समय का पाठ्यक्रम भिन्न था । वहाँ कलाओं की शिक्षा पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण थी, क्योंकि उनका उद्देश्य व्यक्ति का पूर्ण विकास था । भारत में भी अलग-अलग समयों में अलग-अलग पाठ्यक्रम थे । गुरूकुलों में धार्मिक शिक्षा को महत्व दिया जाता था, कमोबेश यही स्थिति बौद्ध, जैन, मुस्लिम तथा कुछ समय तक तो ब्रिटिश काल में बनी रही । इसका अर्थ है कि पाठ्यक्रम को निर्धारित करने में उस समय का उद्देश्य क्या था अर्थात् उनका जीवन दर्शन किस प्रकार का था उसी पर निर्भर करता था । इस प्रकार भी हम देख सकते हैं कि दर्शन का पाठ्यक्रम पर व्यापक असर होता है ।

जिस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यो के संबंध में दर्शनिकों के विभिन्न दृष्टिकोंण, दर्शनों की विभिन्न राय है, उसी प्रकार पाठ्यक्रम के निर्माण, सिद्धान्तों एवं संगठनों के संबंध में भी दर्शन के विभिन्न विचार एवं दृष्टिकोण सामने आते हैं । यद्यपि यह सत्य है कि विभिन्न विचारधाराओं ने अपने-अपने मत के अनुसार पाठ्यक्रम के निर्माण के संबंध में भिन्न भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये, परन्तु इन पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी विचारधारा ज्ञान को विकसित करके शिक्षा के लिए नये-नये पाठ्यक्रम सिद्धान्त विकसित किये हैं।

प्रगतिवादी पाठ्यक्रम (Progressivist Curriculum)

प्रगतिवादी विचारधारा को आधुनिक शिक्षा जगत का सर्वाधिक प्रभावशाली और क्रान्तिकारी विचारधारा माना जाता है । मुख्यत: प्रगतिवादी विचारधारा का उद्भव मार्क्स द्वारा स्थापित साम्यवाद से हुआ है । यद्यपि इस विचार के उद्भव में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां तो सहायक हुई ही, साथ ही आदर्शवाद का जीवन पर कमजोर होती पकड़ भी उसमें निहित है । प्रगतिवादी विचारधारा कोई नयी विचारधारा नहीं है । इसे अलग अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना गया है । हिन्दी के क्षेत्र में सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित हुए प्रयास का प्रगतिवादी विचारधारा कहा गया, राजनीति. समाज एवं शिक्षा के क्षेत्र में इसे मार्क्सवादी या साम्यवादी विचारधारा का नाम दिया गया क्योंकि वस्तुत: मार्क्स ने साम्यवाद की धारणा को एक वैज्ञानिक रूप प्रदान किया । यही कारण है कि मार्क्स को प्रथम वैज्ञानिक समाजवादी और उनके द्वारा प्रतिपादित दर्शन साम्यवाद को वैज्ञानिक समाजवाद (Seintific Socialism) कहा जाता है । प्रो. सी.ई.एम. जोड (Prof.C.E.M. Joad) ने साम्यवाद को एक पद्धति का सिद्धान्त कहा है, क्योंकि यह उन सिद्धांतों को प्रतिपादित करता है जिनके आधार पर समाज की पूँजीवादी व्यवस्था का परिवर्तन (change) समाजवादी व्यवस्था के रूप में होता है।

मार्क्स के दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक मूलाधार तीन प्रकार के माने गये हैं । प्रथम-इतिहास की भौतिकवादी या आर्थिक व्याख्या (Materialistic or Economic Interpretation of History)जिसके लिए उसने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialistic) का प्रयोग किया, द्वितीय वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त जो

मानव इतिहास का एक मात्र शाश्वत नियम तथा अनिवार्य परिणाम है, एवं तृतीय अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Surplus value) जो पूँजीवाद की कटुतम आलोचना करते हुए श्रमिकों को उनके वास्तविक अधिकारों से परिचित कराता है ।

मार्क्स की इन तीनों सिद्धान्तों में शिक्षा के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialistic) ही मुख्य रूप से प्रयुक्त होता है । इसी कारण से यहाँ भी प्रगतिवादी विचार जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा है । मार्क्स का यह सिद्धान्त मुख्यत: हीगल (Hegel) के 'पक्ष', 'प्रतिपक्ष' एवं 'संपक्ष' के संप्रत्ययों पर आधारित है । इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम वाद या पक्ष (Thesis) होता है, फिर इसका विरोध प्रतिवाद या प्रतिपक्ष होता है तथा

अन्त में इन दिनों में संवाद या संपक्ष होता है और यह प्रक्रिया लगातार चलती रहती है । इसे चित्र से समझ सकते हैं ।

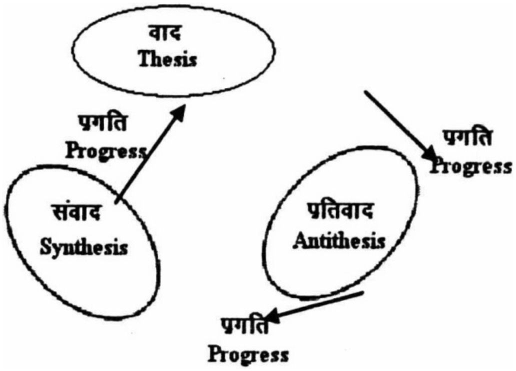

चित्र संख्या 5.2

प्रगतिवाद इसी मूल सिद्धान्त को शिक्षा में प्रयोग करता है और उसके आधार पर पाठ्यक्रम निर्मित करता है । प्रगतिवादी विचारधारा (यह मार्क्स की विचारधारा है किन्तु हम यहाँ पर प्रगतिवादी शब्द ही प्रयोग करेंगे) के अनुसार विद्यालय प्रचलित सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए स्थापित किये जाते हैं तथा उनका आधार भी वे ही भौतिक मूल्य होते हैं जो तत्कालीन समाज में व्याप्त होते हैं । प्रगतिवादी विचारधारा चूँकि यह मानता है कि शिक्षा में हमेशा दोहरी शिक्षा प्रणाली देखने को मिली है, क्योंकि जिस वर्ग के हाथ में सत्ता रही, शिक्षा उसी वर्ग के बालकों के लिए बौद्धिक आयोजन रही तथा सामान्य जनता के लिए दक्षतापरक शिक्षा की व्यवस्था की गयी । इस विचारधारा के अनुसार शिक्षा के सभी साधनों पर राज्य का पूरा अधिकार होना चाहिये जिससे शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का साधन बन सके । इसलिए शैक्षिक संरचना सारे देष में एक समान होनी चाहिये । न्यूनतम शिक्षा का पाठ्यक्रम सभी बालकों के लिए एक जैसा होना चाहिये ।

प्रगतिवादी पाठ्यक्रम में मुख्यत: देश की आर्थिक तरक्की, तकनीकी समृद्धि तथा अन्धविश्वास के निवारण के लिए विज्ञान की शिक्षा देने की वकालत की है, क्योंकि इस विचारधारा में धर्म को अफीम की संज्ञा दी है और कहा है कि इसे खाकर सामान्य जनता सोती रहती है । इसलिए इनके पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा का पूर्णत: विरोध रहता है और इसे प्रारम्म से ही सभी बालकों से दूर रखने की बात कही गयी है ।

प्रगतिवादी पाठ्यक्रम में दूसरी विशेषता यह है कि बालकों को कमाजोपयोगी उत्पादक श्रम तथा उसकी समस्याओं को केन्द्र बनाकर शिक्षा दी जाये । इसके लिए पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक पक्षों पर जोर न देकर उसके अनुभवों को देने के लिए विषय वस्तुओं का गठन किया जाता है । इसलिए पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया जाता है ।

प्रगतिवादी पाठ्यक्रम में इतिहास अध्ययन पर बल दिया जाता है क्योंकि इतिहास एवं उससे जुड़ी अन्य सामाजिक विषयों को महत्व दिया जाता है । इसलिए इनके पाठ्यक्रम में इतिहास, राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषय समाहित किये जाते है ।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कह सकते है कि प्रगतिवादी विचारधारा के पाठ्यक्रम में विज्ञान, व्यावसायिक- शिक्षा, सामाजिक-विज्ञान के विषयों, इतिहास, राजनीतिशास्त्र नीतिशास्त्र समाजशास्त्र आदि विषय सम्मिलित हैं ।

दूसरी तरफ पाठ्यक्रम निर्मित करते समय प्रगतिवादी विचार के सिद्धान्तों का समावेश किया जाना चाहिये, जिसे पढ्ने के पश्चात् समाज में समानता लायी जा सके । अत: पाठ्यक्रम में सामाजिक मूल्यों, समानताओं, आर्थिक लाभ, तकनीकी विकास के लिए विषय वस्तुओं का गठन होना चाहिये ।

आधारभूतवादी पाठ्यक्रम (Essentialistic Curriculum)

आधारभूतवादी विचारधारा शिक्षा की एक बहुत पुरानी विचारधारा है । जो मानव के विचार से जुडी हुई है अर्थात् जब से मानव ने विचार करना शुरू किया, चिन्तन करना शुरू किया तब से ही इस विचारधारा की नींव पड़ी । इसका ऐतिहासिक विकास पाश्चात्य देशों में सुकरात तथा उनके शिष्य प्लेटों से माना जाता है । यद्यपि इस विचारधारा को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है । जैसे आदर्शवाद (Idealism), मनवादी (Mentalism) या आध्यात्मवादी (Spritualis) आदि । यद्यपि यह प्रचलित अर्थों में एक प्रकार से आदर्शवाद का ही प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु इसके आधारभूतवादी होने के पीछे का तर्क बहुत शक्तिशाली है । इस वाद का विकास प्लेटो के इस सिद्धान्त से हुई है कि अन्तिम वास्तविकता विचारों में है (Ultimate reality consists in Ideas) अर्थात् वास्तविकता का आधार विचार है । प्लेटो कहते हैं कि संसार भौतिकता में नहीं बल्कि उसकी वास्तविकता विचारों में है । मनुष्य का मन (Mind) प्रत्ययों (Ideas) का निर्माण करता है । इसलिए प्लेटो ने मन एवं तर्क को प्रमुख माना है । जिसे उन्होंने सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् (Truth, Good and Beauty) कहा है । इन तीनों आधारभूत विचारों के आधार पर ही इन्द्रिगम्य वस्तुओं का विचार होता है । इसे इस चित्र के आधार पर समझ सकते है-

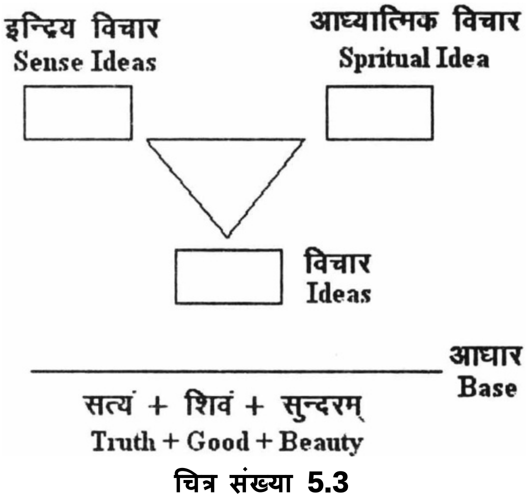

चित्र संख्या 5.3

आधारभूतवादी इस प्रकार से शिक्षा के पाठ्यक्रम को रखने की वकालत करते हैं कि तीनों आधारभूत विचार, जिन्हें कई दफे इन विचारकों ने मूल्य कहा है, (यद्यपि यह मूल्य ही होते हैं)

सत्यं शिवं सुन्दरम् का विकास एक बालक के अन्दर हो । इस दूसरे शब्दों में इसे आत्मा का विकास भी कह सकते हैं । इसे ही शिक्षा कार्य कहते हैं । (Education is self development)) आधारभूतवादी पाठ्यक्रम की यह विशेषता होती है कि एक अधिगमकर्ता या बालक की आत्मा तीनों मूल्यों या विचारों की इच्छा रखती है कि क्या उचित है? क्या सत्य है? और क्या सुन्दर है? अर्थात् पाठ्यक्रम में इन तीनों इच्छाओं की पूर्ति करने वाला तथा जिज्ञासा उत्पन्न करने वाले विषयवस्तु रखे जाने चाहिये जिससे कि अधिगमकर्ता को उन आधारभूत विषयवस्तुओं का पता लग जाये जो उनके जीवन को उन्नत बनाती हे । इस हेतु आधारभूतवादियों ने आध्यात्मिक विकास के साथ-साथ शारीरिक विकास पर भी बल दिया । वास्तव में पाठ्यक्रम में सभी प्रकार के अनुभव, क्रियाएं, जीवन की समस्याएं, उन्नत बनाने वाले साधन आदि निहित होनी चाहिये । हार्न (Horn) भी ऐसी ही विचार व्यक्त करते हैं - “कुछ विज्ञान, कुछ कला और कुछ व्यावसायिक शिक्षा हरेक विद्यार्थी के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर देनी चाहिये।"

आधारभूतवादी पाठ्यक्रम में साहित्य, संगीत, कला, धर्म, नीति आदि विषय होने चाहिये। स्वास्थ्य शिक्षा, सामाजिक विकास की शिक्षा के लिए इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, वास्तविकता की खोज की प्रवृति के लिए गणित एवं विज्ञान की शिक्षा भी शामिल रहती है । कह सकते हैं कि आधारभूतवादी पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत है, इसके साथ ही इसमें गतिशीलता रहती है । यद्यपि ये विचारक बहुत रूढ़िवादी हैं फिर भी वे गतिशीलता के पक्ष में रहते हैं । यह आवश्यक भी है कि पाठ्यक्रम में समय तथा माँग के अनुसार परिवर्तन होता रहे। हम आज के अपने वर्तमान पाठ्यक्रम को देख सकते हैं कि इसमें आधारभूतवादी पाठ्यक्रम की झलक दिखती है । मानविकी, वैज्ञानिक, सामाजिक विषयों, वाणिज्य, कला आदि की शिक्षा जीवन के आधारभूत पहलुओं से जुड़े हुए हैं जो जीवन को जीने का एक मार्ग प्रशस्त करते हैं ।

पुनर्निर्माणवादी पाठ्यक्रम (Reconstructivistic Curriculum)

पुनर्निर्माणवादी का उदभव मानवतावाद (Humanism) से हुआ है । मानवतावाद का इस्तेमाल कई अर्थों में किया गया है और इतिहास में इसके अनेक रूप मिलते हैं । भारत में लोकायत या चार्वाक दर्शन में, चीन में कन्फ्यूषियन दर्शन में और प्राचीन ग्रीस में प्रोटोगोरस एवं अन्य दार्शनिकों के विचारों में इसकी पूर्व छाया देखी जा सकती है । मानवतावाद को 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इटली के नवजागरण काल के साहित्य आन्दोलन एवं शिक्षा के आन्दोलन से भी जोड़ा गया है । सम्भवत: शिक्षा में इसी कारण मानवतावाद के साथ-साथ पुनर्निर्माणवाद शब्द प्रचलन में आने लगा है । पुनर्निर्माणवाद को प्रचलन में लाने वाले दो प्रमुख तर्को पर ध्यान अवश्य देना होगा । प्रथम मानवतावादियों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, इन्टरनेशनल ह्यूमैनिस्टिक एण्ड एथिकल यूनियन ने 1996 में मानवतावाद की न्यूनतम परिभाषा प्रस्तुत की जिसमें पुनर्निर्माण की झलक दिखती है । “मानवतावाद एक लोकतान्त्रिक एवं नैतिक जीवन मुद्रा है जो दृढ़तापूर्वक यह कहता है कि मानव को अपने जीवन को अर्थ और आकार प्रदान करने का अधिकार एवं उत्तरदायित्व है । यह मानवीय क्षमताओं द्वारा बुद्धि और मुक्त अन्वेषण की मनोवृत्ति से मानवीय एवं अन्य प्राकृतिक मूल्यों पर आधारित नैतिकता द्वारा एक अधिक

मानवोचित समाज के बनाये जाने का समर्थन करता है । द्वितीय डॉ. वेदप्रकाश शर्मा ने 'धर्मदर्शन की मूल समस्याएं' में मानवतावाद के संबंध में लिखा है- "मूलत: मानव केन्द्रित दर्शन है जो अलौकिक या अति प्राकृतिक शक्तियों के स्थान पर स्वयं मनुष्य के अनुभव एवं उसकी तर्क बुद्धि को ही सर्वाधिक महत्व देता है और मानव जाति के भाग्य के निर्माण के लिए केवल मनुष्य को ही उत्तरदायी मानता है ।

उपरोक्त सन्दर्भ में देख सकते है कि इनमें दो विषयवस्तु स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं । प्रथम मानव एवं द्वितीय उसके कार्य एवं परिणाम । यहाँ पर जब प्रथम शब्द विषयवस्तु पर फोकस करके देखने का प्रयास किया जाता है तब वह मानवतावादी हो जाता है और जब उसके कार्यो एवं परिणामों पर फोकस करके देखने का प्रयास किया जाता है तब वह पुनर्निर्माणवाद बन जाता है । इस विषय पर आगे चलकर बहुत जोर दिया जाने लगा । इस जार्ज ए. केली (George A. Kelly) ने अपने निर्मित वैकल्पिकवाद का सिद्धान्त (Doctrine of Constructive Alternativism) में यह स्पष्ट किया है कि प्रत्येक मानव अपने पूरे जीवन में विचारों को तरह तरह से निर्माण (Construct) करता रहता है । वह सदैव अपने द्वारा निर्मित परिकल्पनाओं का परीक्षण करता रहता है तथा पहले से निर्मित विषयवस्तुओं में परिवर्तन करता रहता है या उसकी समीक्षा करता रहता है । इस तरह वह हमेशा वैकल्पिक निर्माण (Alternative Construct) को पुराने निर्माण की जगह प्रयोग के लिए तैयार रखता है । इस प्रकार देखते हैं कि मानव पूरे जीवन में विचारों का निर्माण एवं पुनर्निर्माण करता रहता है तथा जीवन को व्यावहारिक कसौटियों पर कसता हुआ आगे बढता है ।

शिक्षा व्यक्ति के इस पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में सहयोग करता है । इसलिए पुनर्निर्माणवादी पाठ्यक्रम में इस प्रकार से विषयवस्तुओं को रखने की अपेक्षा की जाती है जो मानव को उसके विचारों को पुनर्निर्मित करने में मदद कर सके । ब्रूबेकर ने पाठ्यक्रम को इस प्रकार निर्मित करने पर बल दिया जिससे कि मानवीय स्वभाव व मानवीय दृष्टिकोण बदल सके । इसीलिए इनके पाठ्यक्रम में विषयवस्तुओं को इस प्रकार रखने और उसे क्रमबद्ध करने की बात की जाती है जिससे तर्क बुद्धि की गहराई एवं विवेक पर बल मिल सके । इस हेतु वे विषयवस्तुओं को बहुत ही गहराई एवं विस्तृत रूप से रखने के पक्षधर होते हैं । डार्विन ने भी इसी प्रकार के पाठ्यक्रम की बात की है । इन्होंने पाठ्यक्रम में उसी सामग्री को रखने की वकालत की जिसे मानव के लिए अनिवार्य समझा जाये और यह सामग्री सम्पूर्ण मानव जाति में समान रूप से विद्यमान है । इस अनिवार्य विषय सामग्री में से जो अधिक महत्वपूर्ण है उसे प्राथमिकता देते हुए विषयवस्तु के क्रम को तैयार किया जावे ।

इस प्रकार वर्तमान पाठ्यक्रम के निर्माण के सिद्धान्त को विश्लेषित करें तो पायेंगे कि पुनर्निर्माण कहीं न कहीं एक दिशा निर्देश अवश्य देता है क्योंकि आज के समय में विषय वस्तुओं में बहुत विशिष्टता आती जा रही है ऐसे में विषयों का मानव की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना होता है और उसे पुनर्निर्माण करता होता है । ऐसे में ही नये-नये शिक्षा के कार्यक्रम सामने आ रहे हैं, जैसे-एम.बी.ए., बी.बी.ए., कम्प्यूटर विज्ञान, पर्यावरण, पारिस्थितिकीय विज्ञान, जैव तकनीकी, औषधीय रसायन इत्यादि । इतना ही नहीं बल्कि एक ही

विषय वस्तु के अन्दर के पाठ्यवस्तु की समीक्षा के बाद पाठ्यक्रम बदलते जा रहे हैं । इस प्रकार कह सकते हैं कि पुनर्निर्माण का पाठ्यक्रम पर व्यापक असर दिखाई देता है ।

5.3 पाठ्यक्रम और मूल्य का सम्बन्ध (Relation between Values and Curriculum)

हम जानते है कि मूल्य (Value) व्यक्ति के वे आदर्श (Ideal), विश्वास (Belief) या मानक है जो उसके जीवन चक्र (Life Cycle) को निर्देशित करते हैं । इस मूल्य के कारण ही व्यक्ति, क्या करना पसंद करता है? अथवा विभिन्न बातों को क्या प्राथमिकताएं प्रदान करता है? का विषयवस्तु तय करता है । इस कारण से शिक्षा और उसकी प्रक्रिया में मूल्य को पर्याप्त महत्व दिया जाता है । दूसरी तरफ शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम का अपना एक महत्व है क्योंकि पाठ्यक्रम अध्ययन का एक क्रम होता है जिसके अनुसार चलकर विद्यार्थी ज्ञान एवं जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करता है अर्थात् पाठ्यक्रम ही वह महत्वपूर्ण स्त्रोत है जो प्रत्येक विषय के कुछ विशिष्ट मूल्यों के पद में अमूर्तिकरण एवं भावनाएं भी है तथा उनके संज्ञानात्मक, अनुभावात्मक भावात्मक व क्रियात्मक पक्ष भी है । इन पक्षों को विद्यार्थी पाठ्यक्रम को पढ़ने के पश्चात उसका प्रतिबिम्ब देखता है । दूसरे शब्दों में उसके व्यवहार में परिवर्तन अवश्य दिखाई पड़ता है । पाठ्यक्रम के विषयवस्तुओं में मूल्य किस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है, इस विषय पर प्रो. टी.के.एस. लक्ष्मी एवं उनके साथियों द्वारा 1998 में पाठ्यक्रम में मूल्य प्रतिबिम्ब पर किये गये शोध से प्रमाण मिलते हैं कि पाठ्यवस्तुओं में मूल्य अन्तर्निहित होते हैं । उदाहरण के लिए C.B.S.E. बोर्ड की कक्षा 6 की हिन्दी की पाठ्यक्रम किशोर भारती भाग 1 के विभिन्न अध्यायों को देख सकते हैं- "खूनी हस्ताक्षर" नामक अध्याय में स्वतन्त्रता, देशभक्ति विषम परिस्थितियों में धैर्यपूर्वक सामना आदि मूल्य प्रतिबिम्बित हुए । इसी प्रकार डबली बाबू नामक अध्याय में कर्तव्यनिष्ठा, मानवता, पर्यावरण के प्रति जागरूकता आदि मूल्य प्रतिबिम्बित हुए हैं ।

यह मूल्य प्रतिबिम्बन केवल हिन्दी विषय के लिए ही हो ऐसा नहीं था । यह प्रतिबिम्बन प्रत्येक विषय जैसे-संस्कृत, गणित, अंग्रेजी, विज्ञान आदि में भी देखी गयी । उदाहरण के लिए C.B.S.E. बोर्ड की कक्षा 6 की गणित की पाठ्यपुस्तक देखते हैं, न्यूमेरिकल नम्बर एण्ड होल नम्बर नामक अध्याय में व्यवस्थित, क्रमबद्धता, संगठन में शान्ति आदि मूल्यों का प्रतिबिम्बन देखा गया है । इसी तरह इन्टीजर्स नामक अध्याय में वस्तुनिष्ठ तार्किकता, विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति आदि मूल्यों का प्रतिबिम्बन देखा गया है अर्थात् मूल्य प्रत्येक पाठ एवं प्रत्येक विषय में अन्तर्निहित है ।

उपरोक्त कुछ उदाहरणों को जानने के पश्चात कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम एवं मूल्यों का संबंध बहुत घनिष्ठ है और इन्हें एक दूसरे से किसी भी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता। मूल्य सभी प्रकार के पाठ्यक्रम, सभी स्तर के पाठ्यक्रम एवं सभी विषय के पाठ्यक्रमों में देखे जा सकते हैं ।

5.4 सारांश (Summary)

दर्शन एक मानसिक प्रक्रिया के साथ-साथ सैद्धान्तिक प्रक्रिया भी है जिसका उद्देश्य सत्य का अन्वेषण करना है । इस सत्य के अन्वेषण के लिए दर्शन अपने विभिन्न शाखाओं, ज्ञानमीमांसा, मूल्यमीमांसा, नीतिशास्त्र एवं तर्कशास्त्र आदि का मदद लेता है । उद्देश्य (Aim) एक दार्शनिक प्रत्यय है जिसका संबंध शिक्षा की चेतनाशीलता से है अर्थात् मानव जो कुछ भी प्राप्त करना चाहता है उसकी आदर्श स्थिति से है । लक्ष्य उद्देश्य का एक छोटा भाग होता है । जिसे देर से प्राप्त किया जाता है अर्थात् लक्ष्य को एक छोटे उद्देश्य के रूप में देख सकते हैं जब कई लक्ष्य मिलते तब तक एक उद्देश्य तैयार होता है । प्राप्तिक उद्देश्य, लक्ष्य के एक छोटे से भाग के रूप में व्यक्त किया जाता है अर्थात् यह बहुत अल्प समय में प्राप्त कर लिया जाता है । औपचारिक शिक्षा के संगठन के अन्तर्गत कक्षा शिक्षण के दौरान प्राप्त होने वाला उद्देश्य जो क्रिया के द्वारा व्यवहार परिवर्तन करने में सक्षम होता है उसे अनुदेशनात्मक उद्देश्य कहते हैं।

प्रगतिवादी विचारधारा को आधुनिक शिक्षा जगत का सर्वाधिक प्रभावशाली और क्रान्तिकारी विचारधारा माना जाता है । मुख्यत: प्रगतिवादी विचारधारा का उद्भव मार्क्स द्वारा स्थापित साम्यवाद से हुआ है।

आधारभूतवादी विचारधारा शिक्षा की एक बहुत पुरानी विचारधारा है । जो मानव के विचार से जुडी हुई है अर्थात जब से मानव ने विचार करना शुरू किया, चिन्तन करना शुरू किया तब से ही इस विचारधारा की नींव पड़ी ।

पुनर्निर्माणवादी का उद्भव मानवतावाद (Humanism) से हुआ है । मानवतावाद का इस्तेमाल कई अर्थों में किया गया है और इतिहास में इसके अनेक रूप मिलते हैं । भारत में लोकायत या चार्वाक दर्शन में, चीन में कन्फ्यूषियन दर्शन में और प्राचीन ग्रीस में प्रोटोगोरस एवं अन्य दार्शनिकों के विचारों में इसकी पूर्व छाया देखी जा सकती है ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम निर्धारण में दर्शन की भूमिका की व्याख्या कीजिए ।
   Explain the role of Philosophy in determining the Curriculum.
2. प्रगतिवाद का पाठ्यक्रम विज्ञान की शिक्षा पर बल देता है । क्यों? व्याख्या करें ।
   Progressivistic Curriculum emphasises on Science Education. Why? Explain.
3. वर्तमान परिदृश्य में आवश्यकतावादी पाठ्यक्रम की क्या सार्थकता है? व्याख्या करें ।
   What is the relevance of essentialistic Curriculum in present scenario? Explain.
4. मानव जीवन के विशिष्ट माँग की पूर्ति के लिए पुनर्निर्माणवादी पाठ्यक्रम आवश्यक है। कैसे?

Reconstructivistic Curriculum is necessary for supply the specific demand of human life.how?

5. पाठ्यक्रम एवं मूल्य मानव जीवन को निर्देशित करने में सहायता करते हैं । कैसे? Curriculum and Value are help to direct Human Life.how?

5.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची(Reference)

1. Chaubey,S.P.and Chaubey A. (2006) Philosophical and Sociological Principles of Modern education,Sharda Pustak Bhawan Allahabad.
2. Gupta,L.N.(1986), 'Shiksha Darshan',Kailash Prakashan Allahabad.
3. Kumar,Sujeet(2007),Origine of Morality through reflection of value their education,Seminar Paper,JNTT College,Kota.
4. Lakshmi,T.K.S.(1988) 'Values Reflected Project' sponsored by N.C.E.R.T.,faculty of Education Banasthali University Project.
5. Nagendra,(Ed.)(2007),Hindi Sahitya ka Itihas,Mayur Paper Backs,Noida.
6. Odd, L.K.(2008),Shiksha ki Darshnik Pristhabhoomi,Rajsthan Hindi Granth Academy,Jaipur.
7. Pandey, R.S.(2001),Shiksha Darshan,Vinod Pustak Mandir,Agra.
8. Ramendra (2002), Social and Political Philosophy and Religion,Motilal Banarasi Das,Patna.
9. Singh, A.K. and Singh.A.K.(2000),The Psychology of Personality, Motilal Banarasi Das,Patna.
10. Singh, Shiv Bhanu (1994), Introduction to Social Philosophy, Sharda Pustak Bhawan, Allahabad.
11. Srivastava, J.S. (2002), Philosophical Tendencies of Western Philosophy, Abhivyakti Prakshan, Allahabad.

इकाई 8

पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार : मनोविज्ञान एक पाठ्यक्रम बल के रूप में,साहचर्यवाद एवं क्षेत्र सिद्धान्त के सन्दर्भ में अधिगम के अधिनियमों की उपयोगिता

(Psychology as a Curriculum Force Implications of the Principles of Learning With reference to Associative and field theories)

इकाई की रूपरेखा (Structure of the Unit)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 मनोविज्ञान और पाठ्यक्रम - (Psychology and Curriculum)

6.3 पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक निर्धारक (Psychology determinants of Curriculum)

- 6.3.1 अभिवृद्धि, परिपक्वता, विकास एवं पाठयक्रम (Growth, Maturity, Development and Curriculum)
- 6.3.2 व्यक्तिगत भिन्नता एवं पाठ्यक्रम (Individual difference and Interest and Curriculum)
- 6.3.3 अभिरूचि एवं पाठ्यक्रम (Interest and Curriculum)
- 6.3.4 अभिप्रेरणा एवं पाठ्यक्रम (Motivation and Curriculum)
- 6.3.5 अधिगम प्रक्रिया एवं अधिगम का स्थानान्तरण (Learning Process and transfer of training)
- 6.3.6 मानव प्रकृति एवं उसमें परिवर्तन (Human nature and change)

6.4 अभिप्रेरणा की प्रविधियां (Techiques motivation)

6.5 अभिप्रेरणा की समुचित प्रविधियां (Selection of appropriate strategies of motivation)

6.6 पाठ्यक्रम नियोजकों हेतु अभिप्रेरणा का व्यवहारिक महत्व (Functional importance of motivation for Curriculum Planners

6.7 अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम (Learning Process and Curriculum)

6.8 अधिगम के प्रमुख अंग (Main factors of learning)

6.9 अधिगम सिद्धान्त (learning Theories)

6.9.1 मानसिक अनुशासन एवं संकाय सिद्धान्त
(Mental discipline and faculty theory)
6.9.2 साहचर्य सिद्धान्त (Associative theories)
6.9.3 क्षेत्र सिद्धान्त (Field theory)
6.9.4 तलरूप सिद्धान्त (Topological theory)
6.9.5 कार्यात्मक सिद्धान्त (Functional theory)
6.10 अधिगम स्थानान्तरण एवं पाठ्यक्रम
(Transfer of Learning and Curriculum)
6.11 सारांश (Summary)
6.12 संदर्भ ग्रन्थ (References)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- शिक्षा में पाठ्यक्रम निर्माण के मनोवैज्ञानिक आधार को परिभाषित कर सकेंगे ।
- मनोविज्ञान एवं पाठ्यक्रम का संबंध समझ सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक निर्धारक तत्वों का महत्व समझकर उसके प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे ।
- अभिप्रेरणा की विभिन्न प्रविधियों में अन्तर कर उपयुक्त विधि का चयन व्यावहारिक जीवन में कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम निर्धारण करते समय अभिप्रेरणा के व्यावहारिक महत्व को समझ कर व्याख्या कर सकेंगे ।
- अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम में संबंधों को जानकर अधिगम के प्रमुख अंगों को समझ सकेंगे ।
- अधिगम के सिद्धान्त साहचर्य सिद्धान्त एंव क्षेत्र सिद्धान्त की पाठ्यक्रम निर्माण में भूमिका को समझ सकेंगे ।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक की अर्न्तनिहित शक्तियों का विकास कर उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाना है । इस हेतु शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं व पाठ्यक्रम निर्माताओं को बालक की प्रकृति उसकी अभिवृद्धि, विकासक्रम, आवश्यकता, क्षमता, अभियोग्यता मानसिक एवं बौद्धिक योग्यता, आकांक्षा स्तर, अभिप्रेरणा स्तर, चिन्तन, ध्यान, स्मृति स्तर, अनुभवों जैसे मनोवैज्ञानिक क्षेत्र की विभिन्न प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना तथा उसके अनुरूप पाठयक्रम को निर्मित एवं संगठित करना अनिवार्य है । पाठयक्रम को संगठित एवं निर्मित कर अधिगम प्रक्रिया को सरल, स्पष्ट एवं रोचक बनाने का प्रयास करना, जिससे अधिगम प्रभावी, स्थायी एवं गतिमान ढंग से संचालित किया जा सके ।

"पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार, मनोविज्ञान के वे पक्ष है जो अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करते है तथा पाठ्यक्रम निर्माता को विद्यार्थी के व्यवहार के सम्बन्ध में बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने में सहायता करते है ।"

-हेराल्ड टी जॉनसन

शिक्षा में नवाचार के फलस्वरूप शिक्षण प्रक्रिया में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए जिसके अन्तर्गत शिक्षक केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था का स्थान बाल केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था ने लिया जिसके परिणामस्वरूप परम्परागत शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाली समस्याओं जैसे शिक्षक का व्यवहार, सैद्धान्तिक पुस्तकीय ज्ञान, बोझिल पाठ्यक्रम, तथा दमनात्मक अनुशासन जैसी व्यवस्थाओं का स्थान व्यवहारिक जीवन से सम्बद्ध ज्ञान, रूचि के सिद्धान्त, क्रियाशीलता के सिद्धान्त व बालक की रूचि, इच्छा, भावना, आवश्यकता एवं आकांक्षा स्तर को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यक्रम निर्माण जैसी संकल्पनाओं ने ले लिया । वर्तमान शिक्षा का स्वरूप प्रकृतिवादी विचारकों के अनुरूप बालक का स्वविकास कर बालकेन्द्रित शिक्षा व्यवस्था के लागू करना रहा । यद्यपि परम्परागत शिक्षण व्यवस्था में भी शिक्षाविद्, मनीषी, नीति निर्माता, पाठ्यक्रम निर्माता मनोवैज्ञानिक तत्वों का किसी न किसी रूप में प्रयोग करते थे । किन्तु बाल मनोविज्ञान एवं अधिगम मनोविज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक काल में ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा है । यह मनोविज्ञान का ही परिणाम है कि आज बालक को कोरा कागज या सूचना संकलन करने का साधन मात्र नहीं समझा जाता है बल्कि वर्तमान समय में बालक सक्रिय, संवेदनशील सृजनशील, रचनात्मक गुणों से परिपूर्ण अधिगमकर्ता के रूप में शिक्षक के समक्ष उपस्थित होता है ।

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृति से तात्पर्य शिक्षा को मनोविज्ञान पर आधारित होने से है। जिसमें बालक के मनोवैज्ञानिक तत्वों अर्थात् मूल प्रवृत्तियों, इच्छाओं, रूचियों, अभिरुचियों, अभिवृत्तियों, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं बालक के बौद्धिक मानसिक स्तर, शारीरिक क्षमता, अवधान, अध्यापन सम्बन्धी आदतों, अधिगम अंतरण प्रक्रिया के आधार पर शिक्षा का स्वरूप निर्धारित किया जाता है । इस दिशा में सूसन आइजेम्स, वेलेन्टाइन, मेरिया मान्टेसरी, फ्रोबेल आदि से लेकर पियाजे, थार्नडाइक, कोहलर, स्किनर,ब्रूनर आदि मनोवैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण कार्य किए है किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में इसे क्रियात्मक रूप से देने का श्रेय महान् शिक्षाविद् पेस्टालॉजी को है । पेस्टालॉजी द्वारा प्रतिपादित शैक्षणिक सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा का कार्य बाल की अर्न्तनिहित शक्तियों का विकास करना है । अत: अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करने हेतु बालक के विकास करने हेतु बालक के व्यवहार का अध्ययन कर उसकी मूल प्रवृत्तियों के अनुसार शिक्षा दिया जाना श्रेयस्कर है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. शिक्षा मे मनोविज्ञान प्रवृत्ति किस प्रकार कार्य करती है ?
   How do Psychological trends in Education work?

6.2 मनोविज्ञान और पाठ्यक्रम (Psychology and Curriculum)

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण पद्धति, शिक्षा के संगठन, अनुशासन की अवधारणा, शिक्षक की भूमिका, शिक्षक का व्यवहार, आदि सभी पक्षों को नया आयाम प्रदान किया है । मनोविज्ञान का उद्देश्य है बालक के व्यवहार का अध्ययन कर शिक्षा के द्वारा उसके व्यवहार को परिमार्जित करना । अर्थात् बालक के व्यवहार में सकारात्मक एवं वांछनीय परिवर्तन लाने का प्रयास करना । मनोविज्ञान मानव विकास के विभिन्न पक्षों की खोज कर निरन्तर उनके सुधार में लगा हुआ है । व्यवहार सुधार या परिवर्तन लाने के लिये जो विधि या तरीके मनोविज्ञान द्वारा कार्य में लिये जाते हैं उनमें पाठ्यक्रम की भी महत्ती भूमिका है । मनोविज्ञान की सहायता से शिक्षाविद् पाठ्यक्रम का संगठन करते समय बालक की रूचि, आयु, अभियोग्यता, मानसिक बौद्धिक स्तर आदि सभी पक्षों का दृष्टिगत रखते हैं । पाठ्यक्रम का गठन करते समय मनोविज्ञान की सहायता से यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि शिक्षक बालक के साथ कैसा व्यवहार करें? बालक में अधिगम अभिप्रेरणा विकसित करने हेतु कौनसी विधि प्रयुक्त की जायें । विभिन्न नवीन शिक्षण विधियों के माध्यम से बालकों में अधिगम रूचि जिज्ञासा योग्यता विकसित करना । मनोविज्ञान ने पाठयक्रम निर्माण करनें में बालक की आवश्यकता, रूचि, जिज्ञासा स्तर अधिगम स्तर, अभिप्रेरणा स्तर जैसे महत्वपूर्ण आयामों को विशेष महत्व दिया है ।

बाल केन्द्रित शिक्षा के स्वरूप के अन्तर्गत पाठयक्रम निर्माण की महत्वपूर्ण धुरी बालक है । पाठ्यक्रम निर्माण में बालक के महत्व को एडवर्ड ए० क्रग ने अपनी पुस्तक 'करीक्यूलम प्लानिंग' में उल्लेख किया है । प्रजातान्त्रिक संगठन व्यवस्था में शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करने हेतु उसे अधिकतम अवसर उपलब्ध कराना होता है ।

शिक्षा के माध्यम से बालक की विशिष्ट क्षमताओं, योग्यताओं को पूर्णत: विकसित करना ही शिक्षा का मूल उद्देश्य है ।

किसी भी समाज एवं राष्ट्र का विकास एवं समृद्धि मानवीय शक्ति के सही दोहन एवं विकास पर निर्भर है ।

किसी शैक्षिक कार्यक्रम के लिए उपयुक्त अधिगम अनुभवों के चयन का आधार बालक की आवश्यकताऐं, आकांक्षाएं एवं दृष्टिकोण ही होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1 पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार क्या हैं?
What is the Psychological basis of curriculum?

6.3 पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक निर्धारक (Psychological and determinants of curriculum)

शिक्षा के क्षेत्र में मनोविज्ञान के पर्यावरण ने एक नये युग की शुरूआत की है शिक्षा का स्वरूप शिक्षक केन्द्रित के स्थान पर बाल केन्द्रित हो गया है । इस कारण बाल केन्द्रित शिक्षा के सही क्रियान्वयन हेतु शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण पक्ष पाठयक्रम है । क्योंकि शिक्षण अधिगम

की प्रक्रिया की सम्पूर्ण प्रक्रिया पाठयक्रम के इर्द-गिर्द ही घूमती है । शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं व पाठयक्रम निर्माताओं के लिए मनोविज्ञान के उन सभी तत्वों को जानकर एवं उसके अनुरूप पाठयक्रम निर्माण करना अनिवार्य हो जाता है जो कि बालक के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें ।

पाठयक्रम में मनोविज्ञान के निर्धारक तत्वों को जानने हेतु हैराल्ड टी जॉनसन ने कुछ प्रश्नों को उपयोगी माना है । ये प्रश्न निम्न प्रकार हैं -

1. क्या विद्यार्थी का शारीरिक विकास पाठयक्रम को प्रभावित करता है?
2. क्या विद्यार्थी का बौद्धिक मानसिक विकास पाठयक्रम को प्रभावित करता है?
3. क्या विद्यार्थी की व्यक्तिगत समस्याएँ पाठयक्रम को प्रभावित करती है?
4. क्या विद्यार्थी की अभिरुचियों जिज्ञासा पाठयक्रम को प्रभावित करती है?
5. क्या पाठयक्रम नियोजन में अभिप्रेरणा स्तर को भी पर्याप्त ध्यान में रखा जाता है?
6. क्या विद्यार्थियों की वैयक्तिक भिन्नता पाठ्यक्रम पर प्रभाव डालती है?
7. क्या प्रविष्टियों पर आधारित पाठ्यक्रम पर प्रभाव पड़ता है?
8. क्या प्रभावी शिक्षण विधि प्रविष्टियों पर आधारित पाठ्यक्रम का बालक की अधिगम क्षमता पर प्रभाव पड़ता है?

इन सभी ज्वलन्त प्रश्नों का उत्तर पाठयक्रम के मनोवैज्ञानिक निर्धारक तत्वों से स्वत: स्पष्ट हो जाता है । पाठयक्रम की पृष्ठभूमि व सम्पूर्ण पाठयक्रम वैसे तो मनोविज्ञान के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं किन्तु फिर भी निम्नांकित तत्वों का प्रभाव मुख्य रूप से पाया जाता है :-

1. अभिवृद्धि, परिपक्वता एवं विकास (Growth, maturity and development)
2. व्यक्तिगत भिन्नता (Individual difference)
3. अभिरूचि (Interest)
4. अभिप्रेरणा स्तर (Level of motivation)
5. अधिगम प्रक्रिया एवं अधिगम का स्थानान्तरण (Learning process and transfer of learning)
6. मानव प्रकृति एवं परिवर्तन (Human nature and change)
7. क्या शिक्षण विधि प्रविधियों का पाठ्यक्रम पर प्रभाव पड़ता है ।
8. क्या प्रभावी शिक्षण विधि एवं प्रविधियों पर आधारित पाठ्यक्रम का बालक की अधिगम क्षमता पर प्रभाव पडता है ।

इन सभी ज्वलन्त प्रश्नों का उत्तर पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक निर्धारक तत्वों से स्वत: स्पष्ट हो जाता है । पाठ्यक्रम की पृष्ठभूमि व सम्पूर्ण पाठ्यक्रम वैसे तो मनोविज्ञान के इर्द-गिर्द ही घूमते है । किन्तु फिर भी निम्नांकित तत्वों का प्रभाव मुख्य रूप से पाया जाता है:-

6.3.1 अभिवृद्धि, परिपक्वता, विकास एवं पाठ्यक्रम (Growth,Maturity,Development and Curriculum)

पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय मनोविज्ञान के इस पक्ष का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि सीखना बालक की शरीर की स्थिति तथा उसके नाड़ी संस्थान की स्थिति पर निर्भर करता है । कम उम्र के बालक के लिए शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऊँचाई आधारित क्रियाओं को सम्मिलित करने से अधिगम में अवरोध उत्पन्न होना स्वाभाविक है । अधिगम परिस्थितियों का चयन बालक के शारीरिक विकास की दृष्टि से किया जाना चाहिए अर्थात् पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय शारीरिक अवस्था को दृष्टिगत रखा जाना चाहिए ।

परिपक्वता से आशय बालक की आयु में वृद्धि के साथ समुचित ढंग से होने वाले शारीरिक मानसिक परिवर्तनों से होता हैं । बालक के शारीरिक विकास के दौरान आने वाले परिवर्तन कुछ विशिष्ट अभिप्रेरणा का परिणाम होते हे । परिपक्वता की स्थिति में किए गए प्रयास उपलब्धि का परिणाम या उपलब्धि में सहायक होते है । पाठयक्रम नियोजन में अधिगम अनुभवों को बालक के परिपक्वता स्तर से सम्बद्ध किया जाना आवश्यक है ।

बालक का शारीरिक-मानसिक विकास आयु के अनुसार होता है । किन्तु उस विकास कम में आयु वंशानुक्रम के साथ-साथ पर्यावरण (वातावरण) की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है । वातावरण या पर्यावरण पाठ्यक्रम का ही एक रूप है । अत: पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय बालक की शारीरिक बौद्धिक, मानसिक क्षमता, दक्षता को दृष्टिगत रखा जाना अनिवार्य है । इसके लिए परिपक्वता एवं 'विकास क्रम की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है । पेस्टालॉजी ने विकास क्रम को पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख आधार माना है ।

6.3.2 व्यक्तिगत भिन्नता एवं पाठ्यक्रम (Individual difference and Curriculum)

अनुसंधान से यह सिद्ध हो चुका है कि कोई भी दो व्यक्ति समान नहीं हो सकते यहाँ तक कि जुड़वां बच्चों में भी बहुत भिन्नता पायी जाती है अर्थात् व्यक्तियों में पायी जाने वाले शारीरिक मानसिक, भावात्मक संवेगात्मक विभिन्नताओं का प्रभाव उनके अधिगम व्यवहार एवं स्तर पर पड़ता है ।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के निष्कर्ष से यह भी पता चलता है कि अन्तर केवल दो व्यक्तियों में ही नहीं पाया जाता वरन् एक ही व्यक्ति के अन्दर विभिन्न प्रकार की क्षमताओं के विभिन्न स्तर भी होते है । इस प्रकार शारीरिक आयु एवं समान योग्यता को सदैव शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन का आधार नहीं बनाया जा सकता है । इसलिए बालकों का वर्गीकरण इस आधार पर करने के स्थान पर उद्देश्यों के आधार पर किया जाना उचित है ।

1940-45 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वप्रथम व्यक्तिगत भिन्नताओं के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण करने का प्रयास किया गया था । इस प्रकार के पाठ्यक्रम नियोजन में व्यवहारिक समस्याएँ एवं कठिनाइयों का सामना करने के बाद शिक्षाविदों ने यह अनुभव किया कि वैसे तो प्रत्येक बालक अन्य बालक से भिन्न है । किन्तु एक आयु वर्ग के एक समान परिवेश वाले बालकों में बहुत कुछ समानता दिखायी देती हैं । जिस आधार पर विद्यालयों में छात्रों का वर्गीकरण प्रतिभावान, सामान्य, धीमी गति से सीखने वाले, पिछड़े,

मन्दबुद्धि, समस्यात्मक आदि के आधार पर किया जाता है । व्यक्तिगत भिन्नता के विभिन्न आधारों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का नियोजन किए जाने का प्रयास किया जाता है । प्रतिभाशाली बालकों के लिए पाठ्यक्रम में रचनात्मक, सृजनात्मक कार्यो को समाहित किया जाता है व पिछड़े बालकों को सामान्य बालकों के साथ आगे बढ़ाने के लिए अतिरिक्त कक्षाएं एवं अभ्यास आदि का आयोजन किया जाता है ।

अत: पाठ्यक्रम का निर्धारण व्यैक्तिक भिन्नता को ध्यान में रखकर किया जाता है । व्यैक्तिक भिन्नताओं को दृष्टिगत रखते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका में विद्यार्थियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार का पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है ।

1. आयु अनुसार :- केवल 9 वर्ष की अवस्था तक
2. रूचियों के अनुसार :- 9 से 13 वर्ष की अवस्था
3. मानसिक योग्यता के अनुसार:- 13 वर्ष की अवस्था के पश्चात्

इस आधार पर पाठ्यक्रम का नियोजन करने से सुविधा रहती है क्योंकि बालकों की योग्यता. आवश्यकता, एवं निष्पत्ति स्तर एक आयु स्तर तक लगभग समान होते है । व्यैक्तिक भिन्नता के आधार पर रूचि भेद के अन्तर्गत बालक-बालिकाओं की रूचि में अन्तर पाया जाता है । जिसके आधार पर किशोरावस्था तक के बालकों के लिए पाठ्यक्रम में विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का संचालन किया जाता है । व्यैक्तिक भिन्नता के आधार पर समान वर्ग होने से शिक्षण व्यवस्थित प्रभावशाली बोधगम्य होता है । जिससे बालकों को उत्पेरित करने में सुविधा रहती है । वैयक्तिक विभिन्नताओं के आधार पर पाठ्यक्रम संगठन का सही उदाहरण अभिक्रमित अनुदेशन है जिसमें बालक स्वगति से सीखने के लिए उत्पेरित होता है ।

6.3.3 अभिरूचि एवं पाठ्यक्रम (Interest and Curriculum)

"अभिरूचि वह अभिप्रेरक शक्ति है जो हमें किसी व्यक्ति या क्रिया की और ध्यान देने के लिए बाध्य करती है । यह एक प्रभावात्मक अनुभूति है जो स्वयं क्रिया द्वारा उद्दीपत होती है । "

--क्रो एवं क्रो ;बतव् दक बतवृद्ध

दूसरे शब्दों में रूचि किसी क्रिया का कारण भी हो सकती है और उस क्रिया में भाग लेने का परिणाम भी ''व्यक्ति द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया उसके अभिरूचि का ही परिणाम होती है । अभिरूचि जन्मजात एवं अर्जित दो प्रकार की होती है । जन्मजात अभिरूचि मूल प्रवृति पर आधारित होती है, अर्जित अभिरूचि स्वरूपों एवं वातावरण पर आधारित होती है।

बालकों में पायी जाने वाली अभिरुचियों के सन्दर्भ में मनोविज्ञान में अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया गया है कि बालकों में जन्मजात अभिवृत्ति कम एवं अर्जित अभिरुचियों की मात्रा अधिक होती है । इस कारण बालक में स्वस्थ अभिरुचियों का विकास करने के लिए उसके समक्ष परिस्थिति एवं वातावरण उत्पन्न करना होता है जो कि पाठ्यक्रम के द्वारा ही समय है। इसके लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं को विविध अधिगम अनुभवों के साथ ही साथ उचित पुनर्बलन, निर्देशन, अभिप्रेरणा की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है । इसलिए पाठयक्रम का निर्माण रूचि के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए ।

पाठयक्रम का संगठन व्यवहार के क्रिया कलापों पर आधारित होना चाहिए जिससे उसके क्रियान्वयन सें बालक में स्वत: ही रूचि का विकास हो सके । पाठयक्रम वही सार्थक है जो बालक की रूचि को विकसित कर पाने में समर्थ है

6.3.4 अभिप्रेरणा एवं पाठ्यक्रम (Motivation and Curriculum)

"छात्र की मानसिक क्रिया के बिना विद्यालय में अधिगम बहुत कम होता है । सबसे प्रभावशाली अधिगम उस समय होता है जब मानसिक क्रिया सर्वाधिक होती है । अधिकतम मानसिक क्रिया प्रबन्ध अभिप्रेरणा के फलस्वरूप होती है।"

- मेहरान के रामसन

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि विद्यालय में जो भी पाठ्यगामी क्रिया या सहपाठ्यगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है । उनका विकास अभिप्रेरणा पर निर्भर होता है । किसी भी क्रिया या व्यवहार को करने के लिए जो उत्साह उत्पन्न किया जाता है, वह और अभिप्रेरणा दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध है । "कुशल अधिगम अभिप्रेरणा पर ही निर्भर करता है ।"

-फ्रेन्डसन

किसी भी कार्य को कोई भी व्यक्ति द्वारा क्यों किया जाता है, इस क्यों का उत्तर ही अभिप्रेरणा है । कार्य की समाप्ति पर मिलने वाले संतोष के आधार एवं संतुष्टि के आधार पर कर्त्ता अगली क्रिया करने के लिए प्रेरित होता है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अभिप्रेरणा आंतरिक शक्ति है, जो प्राणी में क्रियाशीलता उत्पन्न करती है और लक्ष्य प्राप्ति तक चलती है । ऐवनील के अनुसार "अभिप्रेरणा का अर्थ है सजीव प्रयास" यह कल्पना को क्रियाशील बनाता है । मानसिक शक्ति के गुप्त अज्ञात स्रोतों को जाग्रत एवं प्रयुक्त करती है । यह हृदय को स्वादित करती है । यह निश्चय अभिलाषा एवं अभिप्राय को पूर्णतया मुक्त करती है । यह बालक में कार्य करने, सफल होने तथा विजय पाने की इच्छा को प्रोत्साहित करती है । इस आधार पर यह माना जा सकता है कि अधिगम की प्रथम आवश्यकता अभिप्रेरणा होती है । अभिप्रेरणा मनोवैज्ञानिक गत्यात्मक प्रक्रिया है । जो क्रियाओं को प्रारम्भ करती है, गति प्रदान करती हैं व स्थायी रखती है । अभिप्रेरणा के चार प्रमुख कारक या स्रोत है ।

(1) आवश्यकता (Need)

(2) चालक (Driver)

(3) प्रोत्साहन या उद्दीपन(Incentives)

6.3.5 अधिगम प्रक्रिया एवं अधिगम का स्थानान्तरण (Learning Process and Transfer of Training)

अभिप्रेरणा के अभाव में अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति संभव नहीं होती । अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ सीखने के अनुभवों को प्रभावकारी बनाती है । अभिप्रेरणा प्रविधियों के चयन में अधिगम उद्देश्य मानदण्ड के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं ।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में चार प्रमुख उद्देश्य हैं । ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग, कौशल। ज्ञान उद्देश्य के अन्तर्गत प्रत्याविज्ञान एवं प्रत्यास्मरण की दक्षताओं का विकास किया जाता है । यह दक्षता विकसित करने के लिए वातावरण एवं परिस्थितियों का निर्माण किया जाता है । अर्थात् बाह्य अभिप्रेरणा इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति हेतु प्रशंसक, निन्दा, पुरस्कार एवं दण्ड जैसी प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है । अवबोधात्मक उद्देश्य के अन्तर्गत, व्याख्या, अंतर करना भूमिका स्पष्ट करना, विभेदीकरण, संबंध स्थापन जैसे महत्वपूर्ण व्यवहारगत परिवर्तन लाए जाते है । इसमें परिस्थिति, वातावरण एवं विषयवस्तु के साथ साथ अभिप्रेरणा की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

ज्ञानोपयोग उद्देश्य के अन्तर्गत प्राप्त ज्ञान का व्यवहारिक जीवन में उपयोग करने की क्षमता, पूर्व कथन भविष्य कथन करने की क्षमता, सामान्यीकरण करने की क्षमता विकसित करने का प्रयास किया जाता है । इसमें आन्तरिक प्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

कौशल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बालकों में रचनात्मक, सृजनात्मक, दक्षता एवं क्षमता का विकास करने का प्रयास किया जाता है जिसके अन्तर्गत बालकों के समक्ष परिस्थिति निर्मित कर आन्तरिक अभिप्रेरणा के द्वारा इस उद्देश्य प्राप्ति का प्रयास किया जाता है ।

6.3.6 मानव प्रकृति एवं उसमें परिवर्तन (Human nature and change)

व्यक्ति के द्वारा किए जाने प्रत्येक व्यवहार के मूल में किसी न किसी प्रकार की आवश्यकता की अनुभूति होती है । यह अनुभूति ही क्रिया करने के लिए प्रेरित करती है आवश्यकता पूर्ति या लक्ष्य प्राप्ति हेतु व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला निश्चित व्यवहार चालक कहलाता है । आवश्यकता पूर्ति या लक्ष्य प्राप्ति हेतु व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला निश्चित व्यवहार चालक कहलाता है । प्रोत्साहन का सम्बन्ध निश्चित वस्तुओं से होता है जिन्हें प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयत्न करता है या प्रयास करता है । अभिप्रेरक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकताओं से उत्पन्न होने वाली आन्तरिक दशाएँ अथवा शक्तियाँ है जो उसे निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर करती है । ये प्रेरक, स्वभाविक प्रेरक व अर्जित प्रेरक होते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक निर्धारकों को स्पष्ट कीजिए?
   Explain Psychological determinants of Curriculum?

6.4 अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ (Techniques of motivation)

सफल अधिगम हेतु अभिप्रेरणा किस प्रकार प्रभावी ढंग से कार्य करती है । इस हेतु विभिन्न विधियों का उपयोग शिक्षक द्वारा समय-समय पर किया जाता है । जिससे अधिगम स्थायी प्रभावी होता है । ये प्रविधियाँ निम्नांकित है :

1. पुरस्कार एवं दण्ड
2. प्रशंसा एवं निन्दा
3. सफलता एवं असफलता का ज्ञान
4. प्रतियोगिता, सहयोग

5. प्रगति का ज्ञान
6. रूचि
7. आवश्यकता का ज्ञान
8. नवीनता
9. आकांक्षा का विकास
10. संवेगात्मक स्थिति
11. परिचर्चा सम्मेलन
12. दृश्य श्रव्य सामग्री
13. उदाहरण
14. कक्षा एवं विद्यालय का वातावरण

6.5 अभिप्रेरणा की समुचित प्रविधियाँ (Selection of appropriate strategies of motivation)

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के सफल संचालन हेतु प्रभावी शिक्षण कार्य करने हेतु कुशल शिक्षक बालक के समक्ष एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं, जिससे बालक स्वयं क्रिया करने के लिए प्रेरित होता है । स्वक्रिया द्वारा बालक के लिए सीखना सरल क्रिया हो जाती है । किसी भी क्रिया या परिस्थिति के अनुरूप क्रिया करने के लिए बालक स्वत: निर्णय लेने में सक्षम हो जाता है । बालक की प्रकृति तथा समय की दृष्टि से अभिप्रेरणा प्रदान करने के लिए शिक्षक उपयुक्त प्रविधि का चयन करता है । कौन सी प्रविधि किस वातावरण के लिए उपयुक्त होगी इसको निर्धारित करने के लिए निम्न मापदण्ड काम में लेता है-.

1. बालकों की आवश्यकताएँ
2. अधिगम के उद्देश्य
3. अधिगम का स्वरूप

बालकों की आवश्यकताओं एवं अभिप्रेरणा की प्रविधियों के अन्तर्गत मैसलों के आवश्यकता सिद्धान्त के अनुरूप निम्न, मध्यम, उच्च स्तर के आधार पर वह प्रविधियों को काम में लेता है ।

1. जैविकीय माँग
2. सुरक्षा माँग
3. सामाजिक माँग ।
4. सम्मान माँग
5. आत्मानुभूति माँग

मैसलों के अनुसार निम्न. स्तर (शारीरिक एवं सुरक्षा संबंधी) आवश्यकताओं के लिए बाह्य अभिप्रेरणा जैसे पुरस्कार, दण्ड, निद्रा, चुनौती आदि प्रभावशाली विधियाँ है । मध्यम स्तर की आवश्यकता स्नेह संबंधी आवश्यकता एवं सम्मान की आवश्यकता के लिए आंतरिक ब्राह्य अभिप्रेरणा अधिक आवश्यकता होती है । इस प्रकार की अभिप्रेरणा का संबंध पाठ्यक्रम`, पाठ्य

वस्तु तथा वातावरण तीनों से होता है । इन प्रविधियों को बालक के सामाजिक क्षमताओं के विकास हेतु उपयोगी माना जाता है ।

उच्च स्तर की आवश्यकता के लिए आन्तरिक अभिप्रेरणा अधिक होती है । आन्तरिक अभिप्रेरणा का अभिप्राय पाठ्यवस्तु तथा शैक्षिक क्रियाओं से बालकों को स्वतः प्रोत्साहन मिलने से है ।

अधिगम के उद्देश्य एवं अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ -

अभिप्रेरणा के अभाव में अधिगम के उद्देश्यों की प्राप्ति संभव नहीं होती । अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ सीखने के अनुभवों को प्रभावकारी बनाती है । अभिप्रेरणा प्रविधियों के चयन में अधिगम उद्देश्य मानदण्ड के रूप में प्रयुक्त किये जा सकते हैं ।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में चार प्रमुख उद्देश्य हैं ज्ञान, अवबोध, ज्ञानोपयोग एवं कौशल। ज्ञान उद्देश्य के अन्तर्गत प्रत्याविज्ञान एवं प्रत्यास्मरण की दक्षताओं का विकास किया जाता है । यह दक्षता विकसित करने के लिए वातावरण एवं परिस्थितियों का निर्माण किया जाता है अर्थात बाह्य अभिप्रेरणा इस उद्देश्य की सम्प्राप्ति हेतु प्रशंसा, निन्दा, पुरूस्कार एवं दण्ड जैसी प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है । अवबोधात्मक उद्देश्य के अन्तर्गत, व्याख्या, अंतर करना भूमिका स्पष्ट करना, विभेदीकरण, संबंध स्थापन जैसे महत्वपूर्ण व्यवहारगत परिवर्तन लाए जाते हैं । इसमें परिस्थिति वातावरण एवं विषयवस्तु के साथ साथ अभिप्रेरणा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

ज्ञानोपयोग उद्देश्य के अन्तर्गत प्राप्त ज्ञान का व्यवहारिक जीवन में उपयोग करने की क्षमता, पूर्व कथन, भविष्य कथन करने की क्षमता, सामान्यीकरण करने की क्षमता विकसित करने का प्रयास किया जाता है । इसमें आन्तरिक प्रेरणा का महत्वपूर्ण स्थान है ।

कौशल उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बालकों में रचनात्मक, सृजनात्मक, दक्षता एवं क्षमता का विकास करने का प्रयास किया जाता है जिसके अन्तर्गत बालकों के समक्ष परिस्थिति निर्मित कर आन्तरिक अभिप्रेरणा के द्वारा इस उद्देश्य प्राप्ति का प्रयास किया जाता है ।

अधिगम के स्वरूप एवं अभिप्रेरणा की प्रविधियाँ-

अधिगम की क्रिया उतनी ही मात्रा में तीव्र एवं प्रभावी होगी जितनी मात्रा में अभिप्रेरणा का स्तर होगा । अनुभवी शिक्षक अधिगम का स्वरूप एवं परिस्थिति को निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखता है कि किस प्रकार अभिप्रेरणा की प्रविधियों का चयन कर अधिगम को स्थायी एवं प्रभावी बनाया जाए ।

– अधिगम के विभिन्न प्रकारों में यथा संकेत अधिगम में उद्दीपन एवं अनुक्रिया में संबंध स्थापित कर सकारात्मक व नकारात्मक पुनर्बलन के द्वारा अधिगम वातावरण विकसित किया जाता है । जिससे बालक के सीखने की गति एवं स्तर पर अभिप्रेरणा का पूर्ण प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । इसी प्रकार अभिक्रमित अनुदेशन में श्रृंखला अधिगम में उद्दीपन अनुक्रियाओं को एक क्रम में प्रस्तुत कर छात्राओं के समक्ष परिस्थिति एवं वातावरण उत्पन्न किया जाता है । प्रत्येक सही अनुक्रिया पर सकारात्मक पुनर्बलन द्वारा स्वगति से आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है ।

– सम्प्रत्यय अधिगम में बालकों को पाठ्यवस्तु को सामान्यीकरण के आधार पर सीखने का अवसर प्रदान किया जाता है । जिससे भी आंतरिक अभिप्रेरणा प्रभावी होती है । इसलिए बालक को समय-समय पर उसके अधिगम स्तर एवं प्रगति का ज्ञान करवाया जाता है ।

– बहुभेदीय अधिगम में बालकों को विषयवस्तु को समझने के उपरान्त उसमें अंतर करने की समझ विकसित की जाती है । इसमें आंतरिक एवं बाह्य अभिप्रेरणा प्रभावी होती है । जिससे बालकों में सहयोग की भावना, प्रतिस्पर्धा की भावना एवं स्वनिर्णय लेकर आगे बढ़ने की भावना विकसित होती है ।

6.6 पाठ्यक्रम नियोजकों हेतु अभिप्रेरणा का व्यावहारिक महत्व (Functional importance of motivation for curriculum planner)

पाठ्यक्रम निर्माण में मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से इस तथ्य की पुष्टि हो गयी हैं कि जब तक शिक्षार्थी नवीन ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप से तैयार न हो उसे कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता है । साथ ही किसी भी नवीन ज्ञान को प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है जब तक अलक उस नवीन ज्ञान को आत्मसात नहीं कर लेता तब तक व्यवहारिक दृष्टि से उसकी कोई उपयोगिता नहीं होती है । मानसिक रूप से तत्पर होने के लिए व नवीन ज्ञान को आत्मसात करने में अभिप्रेरणा की भूमिका महत्वपूर्ण है । इसके व्यवहारिक महत्व के प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार है-

1. औपचारिक अधिगम हेतु बालक के परिपक्वता स्तर को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना आवश्यक है । पाठ्यक्रम के निर्माण में परिपक्वता के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर अभिप्रेरणा एवं परिपक्वता को सम्बद्ध किया जाना चाहिए ।
2. जीवन की व्यवहारिक परिस्थितियों से प्राप्त ज्ञान जीवन में सर्वोत्कृष्ट अधिगम की श्रेणी में आता है । पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान पर आधारित कर किया जाने वाला अधिगम विषय वस्तु को समझने में ज्यादा सहायक होता है ।
3. पाठ्यक्रम का निर्माण बाल केन्द्रित विधि पर आधारित हो जिसमें बालक सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में कार्य कर पाने के लिए स्वतंत्र हो व बालक की स्वक्रिया व स्वमत को प्रोत्साहित करने के लिए अध्यापक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करें । अधिगम के प्रति बालक को अभिप्रेरित करने के लिए बालक के व्यक्तित्व का सम्मान कर उसे आगे बढ़ाने में अध्यापक सहायता करें ।
4. विषय वस्तु का चयन रूचिपूर्ण, आकर्षक एवं प्रभावी तरीके से किया जाए क्योंकि बालक के व्यवधान स्तर पर प्रभाव पड़ता है । इस हेतु उसे पर्याप्त मात्रा में अभिप्रेरित किया जाए जिससे उसमें कार्य के प्रति लगन, उत्साह, एवं जिज्ञासा पर्याप्त मात्रा में बनी रह सके ।
5. बालक में पाठ्यवस्तु की धनात्मक अभिवृद्धि विकसित करने का प्रयास करने हेतु पाठ्यक्रम का विकास इस आधार पर किया जाए जिससे बालक की अभिवृत्ति, अवधान स्तर एवं अभिरूचि में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाना संभव हो सके ।

6. पाठ्यक्रम में सहगामी एवं सहसहगामी क्रियाओं का चयन एवं नियोजन इस प्रकार से किया जाए कि परिणाम प्राप्ति पर बालक को सकारात्मक अभिप्रेरणा प्रविधियों की सहायता से अधिगम करवाना आसान हो सके । इस हेतु बालक का मूल्यांकन सम्पूर्ण कक्षा के आधार पर नहीं बल्कि स्वयं उसके निष्पत्ति स्तर के आधार पर किया जाए ।
7. पाठ्यक्रम नियोजन में शिक्षार्थी के सहभागित्व को यदि ध्यान में रखा जाता है तो विद्यार्थी द्वारा प्रत्येक कार्य को स्वत: अभिप्रेरित होते हुए करने से लक्ष्यों की प्राप्ति सरल हो जाती है ।
8. पाठ्यक्रम में तुरन्त प्रतिपुष्टि व स्वमूल्यांकन की व्यवस्था में अभिप्रेरणा का स्तर उच्च होता है । जिसका प्रभाव अधिगम स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है । अत: पाठ्यक्रम स्वमूल्यांकन पद्धति पर आधारित किया जाना चाहिए ।
9. पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय बालक के संवेगात्मक पक्ष को भी दृष्टिगत रखा जाना चाहिए क्योंकि संवेग भी अभिप्रेरणा एवं अधिगम स्तर पर प्रभाव डालते हैं । अत: पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय मनोवैज्ञानिक पक्षों के आधार को ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

6.7 अधिगम प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रम (Learning process and Curriculum)

पाठ्यक्रम निर्माण में अधिगम प्रक्रिया के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ ही व्यवहारिक पक्ष भी अधिक महत्वपूर्ण होता है । अधिगम के क्षेत्र मे निरन्तर अनुसंधान एवं नए प्रयोग किए जा रहे हैं । जिसके परिणामस्वरूप नये सिद्धान्तों का भी निर्माण हुआ है ।

अधिगम एक सोद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है । व्यक्ति द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया किसी न किसी अभिप्रेरणा पर आधारित होती है । अभिप्रेरणा हेतु अभिप्रेरक उद्दीपक का कार्य करता है व बालक अधिगम प्रक्रिया के समय पूर्व अनुभवों के आधार पर क्रिया की सम्पन्नता के लिए संवेदना की व्याख्या कर प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से पुनर्बलन प्राप्त करते हुए सम्पूर्ण विषय वस्तु का संगठन पूर्व ज्ञान को नवीन ज्ञान से जोड़ते हुए अधिगम प्रक्रिया को पूर्ण करता है ।

6.8 अधिगम के प्रमुख अंग (Main Components of Learning)

1. अधिगम का प्रमुख अंग या आधार विद्यार्थी होता है ।
2. विद्यार्थी को सीखने, सिखाने तथा अधिगम प्रक्रिया हेतु तत्पर के लिए दायित्व शिक्षक का होता है।
3. पाठ्यक्रम बालक के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जिसमें पाठ्यगामी व सहपाठ्यगामी क्रियाएं सम्मिलित होती है ।
4. अधिगम परिस्थिति एवं वातावरण से आशय है विद्यालय का वातावरण उपलब्ध शैक्षिक साधन बालक को सीखने में कितना योगदान देते है ।
5. किसी भी कार्य एवं क्रिया को किए जाने का प्रभाव भी अधिगम पर पूर्णरूप से पड़ता है।

6.9 अधिगम सिद्धान्त (Learning Theory)

समूह अधिगम के सिद्धान्तों तथा नियमों के निर्धारण में मनोवैज्ञानिक एक मत नहीं है। इसके अन्तर्गत मनोवैज्ञानिकों द्वारा जो विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं एवं प्रत्यय प्रस्तुत किए गए हैं उस आधार पर इसे निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है ।

6.9.1 मानसिक अनुशासन एवं संकाय सिद्धान्त (Mental discipline and faculty theory)

इस सिद्धान्त के समर्थक यह मानकर चलते हैं कि किसी एक विषय के अध्ययन से विकसित मानसिक संकाय का उपयोग अधिगम स्थानान्तरण के आधार पर करते हुए दूसरे विषय या सप्रत्यय को समझने में करता है । इस सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क के विभिन्न विभाग एवं संकाय जैसे तर्कशक्ति, चिन्तन शक्ति, स्मरण शक्ति अनुमान शक्ति होते हैं । उदाहरण स्वरूप तार्किक योग्यता या अभियोग्यता का उपयोग गणित जैसे विषयों को समाधान में विद्यार्थी कर पाने में सफल होता है ।

यह सिद्धान्त सीखने में परम्परागत सिद्धान्त पर आधारित है इसके अन्तर्गत तथ्यों एवं सूचनाओं का ज्ञान प्राप्त करना ही प्रमुख अधिगम प्रक्रिया मानी जाती है । पाठ्यक्रम की अर्न्तवस्तु का चयन रूचि एवं जीवन के लिए उपयोगिता पर आधारित नहीं होता है । इसके पीछे मान्यता यह रही कि विभिन्न मानसिक शक्तियों का विकास हो जाने पर शिक्षार्थी जीवन की विभिन्न समस्याओं एवं परिस्थितियों का अच्छी तरह से सामना कर सकेगा । किन्तु अब इस सिद्धान्त की मान्यता समाप्त हो चुकी है । आधुनिक काल में शिक्षा की संकल्पना मानसिक विकास के स्थान सामाजिक समायोजन पर आधारित है ।

6.9.2 साहचर्य सिद्धान्त (Associative theories)

साहचर्य सिद्धान्तों से अभिप्राय उन सिद्धान्तों से है जो मानव व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं । इन सिद्धान्तों के अन्तर्गत प्रमुख सिद्धान्त निम्नानुसार हैं:-

1. उद्दीपन अनुक्रिया सिद्धान्त (Stimulus Response Theorie)
2. अनुकूलित अनुक्रिया का सिद्धान्त (Theorie of Conditioned Response)
3. सक्रिय अनुबन्धन सिद्धान्त (Theorie of Operant Conditioning)
4. व्यवस्थित व्यवहार सिद्धान्त (Systematic Behaviour Theorie)

1. उद्दीपन अनुक्रिया को सम्बन्धवाद का सिद्धान्त भी कहा जा सकता है । इस सिद्धान्त के प्रतिपादक ई. एल. थार्नडाइक हैं । थार्नडाइक के अनुसार सीखना सम्बन्धों के साहचर्य का परिणाम है उद्दीपन अनुक्रिया के बीच में की जाने वाली क्रिया के परिणाम जितने सुखद होगें उसका बंध या बंधन उतना ही मजबूत होता जाएगा । सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य मस्तिष्क करता है क्योंकि अधिगम प्रक्रिया में व्यक्ति जब कोई क्रिया को सीखना आरम्भ करता है तो उसके सामने एक विशेष स्थिति या उद्दीपक होता जो उसे विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है । इस प्रकार एक विशिष्ट उद्दीपक का एक विशिष्ट प्रतिक्रिया से संबंध स्थापित हो जाता है । जिसे उद्दीपक

अनुक्रिया बंध (S.R.Bond) के नाम से जाना जाता है । थार्नडाइक ने इस सिद्धान्त के आधार पर ही सीखने के प्रमुख नियम प्रतिपादित किए हैं । जो इस प्रकार है :-

अ. तत्परता का नियम (Low of readiness)

ब. प्रभाव का नियम (Low of effect)

स. अभ्यास का नियम (Low of excercise)

2. अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन रूसी मनोवैज्ञानिक आई. पावलव ने किया श्य। पावलव के अनुसार अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त में प्राकृतिक उद्दीपन के साथ कृत्रिम उद्दीपक का प्रभाव देखा जाता है । धीरे-धीरे प्रकाशित उद्दीपक के प्रति होने वाली स्वभाविक अनुक्रिया कृत्रिम उद्दीपक के साथ भी स्वभाविक अनुक्रिया में बदल जाती है । पावलव अस्वभाविक उत्तेजक के प्रति स्वभाविक उत्तेजक के समान ही होने वाली प्रतिक्रिया को सम्बद्ध सहज किया कहते है ।

3. उद्दीपन अनुक्रिया की श्रृंखला में बी.एफ. स्किनर ने सक्रिय अनुबंधन की अवधारण का विकास किया । स्किनर ने अपने सिद्धान्त से यह प्रतिपादित किया कि सक्रियता ही सीखने के लिए महत्वपूर्ण आवश्यक घटक है व सक्रियता हेतु अभिप्रेरणा आवश्यक है । सक्रिय अनुबंधन की मूल अवधारणा पुनर्बलन के द्वारा सीखने वाले को क्रियाशील बनाए रखने पर आधारित है ।

4. क्लार्क हल द्वारा प्रतिपादित व्यवस्थित व्यवहार सिद्धान्त पुनर्बलन का सिद्धान्त भी कहलाता है । जो जीवन के सम्पूर्ण कार्यो का व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करता है । हल के प्रयोगों से निष्कर्ष यह है कि उत्तेजना तथा अनुक्रिया के मध्य चालक (Drive) व पुरस्कार पर निर्भर करता है ।

इस प्रकार साहचर्य सिद्धान्त पूर्णत: उद्दीपक अनुक्रिया एस.आर. सिद्धान्त पर आधारित उद्दीपक जितना प्रभावी होगा अनुक्रिया उतनी ही प्रभावी एवं स्थायी होगी । अत: पाठ्यक्रम का निर्माण मनोवैज्ञानिक आधार पर करते समय मनोवैज्ञानिक आधार पर साहचर्य सिद्धान्त का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

6.9.3 अधिगम के क्षेत्र का सिद्धान्त (Field theory of Learning)

अधिगम के क्षेत्र सिद्धान्त को संज्ञानात्मक सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है । क्षेत्र सिद्धान्त का सामान्य अभिप्राय उस परिवेश से है जिसमें सभी घटनाऐं होती है । क्षेत्र सिद्धान्तों के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख सिद्धान्त है :-

a. पूर्णाकारवाद सिद्धान्त (Gestalt Theory)

b. तलरूप सिद्धान्त (Topological Theory)

c. प्रतीक पूर्णाकारवाद सिद्धान्त (Sign-Gestalt Theory)

गेस्टाल्ट का अर्थ है समग्र या पूर्ण पूर्णाकारवाद के अनुसार व्यक्ति किसी क्रिया को हमेशा पूर्ण रूप से सीखता है । इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जर्मन के मनोवैज्ञानिक मैक्स वर्दीमर है इस सिद्धान्त का आधार यह है कि जब हम कोई भी वस्तु को एक बार देखते हैं तो हमारी आखों में एक बार दूसरे दृश्य उद्दीपन को दिखाते हैं व उसी प्रतिक्रिया स्वरूप उद्दीपनों में पूर्ण

आकृति एवं युग्म बनने लगते है । कोहलर ने सूझ या अर्न्तदृष्टि सिद्धान्त का विकास भी इसी आधार पर किया था । उसके अनुसार व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण परिस्थिति को अपनी मानसिक शक्ति से समझ कर उसे सही ढंग से करना सीख लेता है । यह सम्पूर्ण क्रिया अर्न्तदृष्टि या सूझ के परिणाम स्वरूप होती है ।

6.9.4 तलरूप सिद्धान्त (Topological theory)

तलरूप सिद्धान्त के प्रवर्तक कुर्टलेविन है उन्होनें अधिगम का महत्वपूर्ण आधार जीवन में वास्तविक वातावरण को माना है । उनके अनुसार अधिगम को प्रभावी एवं स्थायी बनाने में आकांक्षा स्तर, उद्देश्य, लक्ष्य प्राप्ति की भावना, स्मृति, 'कार्य की गति एवं पुरस्कार एवं दण्ड का अधिक महत्व होता है ।

प्रतीक पूर्णकार सिद्धान्त के प्रतिपादक टालमैन का मानना है कि मनुश्य का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है । उद्दीपन में अर्थ उसी समय उत्पन्न होता है जबकि वह मानव द्वारा निर्धारित लक्ष्य एवं उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक हो । अत: अधिगम हेतु चिह्नों एवं संकेतों को अधिक महत्व देता है ।

अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्तों से प्रतीत होता है कि क्षेत्र सिद्धान्त साहचर्य सिद्धान्तों का ही विस्तृत रूप है । साहचर्य सिद्धान्तों की भांति इसमें भी अधिगम को उद्दीपन अनुक्रिया के संबंधों का परिणाम माना गया है । फिर -भी इन दोनों सिद्धान्तों में प्रक्रिया संबंधी अंतर स्पष्ट दिखायी देता है अर्थात साहचर्य सिद्धान्तों में व्यवहार को यांत्रिक मानकर क्रिया पर बल दिया गया है जबकि क्षेत्र सिद्धान्त में यांत्रिकता का स्थान क्रियाशीलता एवं जीवन्तता ने ले लिया है ।

क्षेत्र सिद्धान्त के अनुसार उद्दीपन को अनुक्रिया तक पहुंचने से पूर्व जो क्रिया प्रतिक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है । उनमें आपस में सम्बन्ध मानसिक प्रक्रिया का ही परिणाम होते है । अर्थात् क्षेत्र सिद्धान्त उद्दीपन अनुक्रिया के मध्य में होने वाली प्रक्रिया की संकल्पना पर आधारित है । अत: पाठ्यक्रम निर्माताओं को पाठ्यक्रम निर्माण करते समय एस-आर सम्बन्धों के साथ क्रिया प्रतिक्रियाओं के परिणामों के प्रति भी सजग रहना चाहिए ।

6.9.5 अधिगम के कार्यात्मक सिद्धान्त (Functional theory)

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अन्य जीवों (बिल्ली, कुत्ते, चूहों, कबूतरों) पर किए गए प्रयोगों से अलग हटकर अधिगम प्रक्रिया सिद्धान्तों की बात भी इनका मानना है कि मनुष्य उद्दीपन अनुक्रिया की प्रक्रिया में बुद्धि, स्मरण शक्ति एवं मानसिक योग्यता का भी उपयोग करता है । अत: केवल अधिगम सिद्धान्त प्रतिपादित किए जाने के स्थान पर कार्यात्मक सिद्धान्त या व्यवहारिक सिद्धान्त निर्मित किए जाने चाहिए ।

इस सिद्धान्त के मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों में स्मृति विस्मृति, अंश व पूर्ण का एक साथ अधिगम एवं अभ्यास एवं अधिगम में सम्बन्ध व अधिगम स्थानान्तरण जैसे विषयों पर प्रयोग किए है अत: पाठ्यक्रम नियोजकों को एवं शिक्षकों को इस तरह के प्रयोग एवं निष्कर्षो को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यक्रम निर्माण करना चाहिए ।

6.10 अधिगम स्थानान्तरण एवं पाठ्यक्रम (Transfer of Learning and Curriculum)

अधिगम स्थानान्तरण से आशय एक परिस्थिति, घटना, काल या समय पर सीखे हुए अर्जित ज्ञान का दूसरी समान परिस्थिति में उपयोग किए जाने से होता है । पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण सिद्धान्तों एवं सम्प्रत्यों का निर्माण इसी आधार पर किया जाता है कि विद्यालय में सीखे हुए ज्ञान का बालक व्यवहारिक जीवन में उपयोग किस प्रकार करें । जैसे (गणित विज्ञान, जीवन कौशलों की शिक्षा साहित्य का ज्ञान आदि) अधिगम स्थानान्तरण हेतु अनेक मत प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख निम्न प्रकार है-

1. मानसिक शक्तियों का सिद्धान्त (Theory of Mental Disciplines)-मानसिक शक्ति सिद्धान्त के अनुसार तर्क, ध्यान, चिन्तन, मनन एवं कल्पना आदि मानसिक प्रक्रिया एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य करती है व स्वतंत्र रूप से अलग अभ्यास एवं प्रशिक्षण कर इन्हें सबल बनाया जा सकता है । किन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मानसिक शक्तियों का विभाजन किया जाना असंभव है । जिस कारण यह सिद्धान्त वर्तमान समय में अमान्य हो गया ।

2. औपचारिक मानसिक प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Theory of Formal Mental Disciplines)- औपचारिक मानसिक प्रशिक्षण सिद्धान्त के अनुसार मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षण के द्वारा समान रूप से व पूर्ण रूप से विकसित कर किसी भी परिस्थिति या व्यवहार में लिया जा सकता है । किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से इस सिद्धान्त की भी आलोचना हुई क्योंकि किसी अध्यापक को सफल चिकित्सक बनाना या इंजीनियर को कुशल चिकित्सक बनाना स्वयं में जटिल कार्य है । इस आधार पर यह सिद्धान्त भी अमान्य हो गया ।

3. समान तत्वों का सिद्धान्त (Theory of Similar Elements)- समान तत्वों के सिद्धान्त के अनुसार समान परिस्थिति, घटना, विषय सामग्री, दृष्टिकोण, उद्देश्य यदि एक समान हो तो ही एक स्थिति से दूसरी स्थिति में स्थानान्तरण संभव होता है । जैसे किसी भी सामाजिक ज्ञान विषय का ज्ञान दूसरे सामाजिक अध्ययन हेतु उपयुक्त हो सकता है । किंतु भाषा जैसे विषयों के लिए नहीं । इस सिद्धान्त के समर्थक थार्नडाइक है ।

4. सामान्यीकरण का सिद्धान्त (Theory of Generalization)- सामान्यीकरण के सिद्धान्त से आशय अधिगम प्रक्रिया में अपने किसी कार्य, ज्ञान व' अनुभव से सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण कर या निष्कर्ष निकाल लेना है व उस प्राप्त ज्ञान का उपयोग समान परिस्थिति में करता है । इस सिद्धान्त के समर्थक सी0 एस0 जुड़ (C.S.Judd) है ।

5. समान एवं विशिष्ट तत्वों का सिद्धान्त (Theory of General and Specific Factor)- सामान्य एवं विशिष्ट तत्वों का सिद्धान्त का प्रतिपादन स्पीयरमैन ने किया है । इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में मनुष्य मे दो प्रकार की बुद्धि कार्य करती है सामान्य एवं विशिष्ट । इस सिद्धान्त की यह मान्यता है अधिगम स्थानान्तरण प्रक्रिया में स्थानान्तरण सामान्य योग्यता का होता है विशिष्ट का नहीं ।

पाठ्यक्रम निर्माताओं एवं नियोजकों को पाठ्यक्रम के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-साथ व्यावहारिक पक्ष को भी दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए । उन्हें सदैव यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि पाठ्यक्रम को स्थायी एव प्रभावी कैसे बनाया जाए । अधिगम स्थानान्तरण हेतु अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण किस प्रकार किया जाए ।

अत: अधिगम स्थानान्तरण को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण एवं संगठन किया जाए, साथ ही पाठ्यक्रम निर्माण करते समय छात्रों की रुचि, आवश्यकता, मानसिक स्तर आदि को भी ध्यान में रखा जाए । इस हेतु सह सम्बंधित पाठ्यक्रम अधिक प्रभावी एवं उपयोगी तरीका है ।

6.11 सारांश (Summary)

पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक आधार में अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों उपागमों, प्रयुक्त सामग्री आदि के भिन्नताओं के आधार पर जो परिणाम सामने आए हैं । उनमें सामान्य तथ्यों एवं सिद्धान्तों को लेकर मनोवैज्ञानिकों में प्राय: सहमति देखने को मिलती है । मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के कारण शैक्षिक मनोविज्ञान में गत कुछ वर्षो में महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं । जैसे बुद्धि के क्षेत्र में स्पीयरमैन से लेकर हैब तक अनेक प्रयोग हुए जिनके निष्कर्षो ने पाठ्यक्रम को केवल अर्न्तवस्तु चयन की दृष्टि से ही नहीं बल्कि उसके अन्य पक्षों को भी प्रभावित किया है ।

पाठ्यक्रम निर्माण में मनोविज्ञान के उपयोग की प्रमाणिक विधि व इसकी प्रकृति व सिद्धान्तों को सही ढंग से समझने एवं जानकर पाठ्यक्रम में इनका उपयोग किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में इन सिद्धान्तों का उपयोग तभी सार्थक होगा जब पाठ्यक्रम निर्माता यह ध्यान रखें कि सभी सम्बन्धित विचार, सिद्धान्त एवं संकल्पनाऐं मनोविज्ञान से ही ली गई हैं । यह शिक्षा के अंग नहीं है । अर्थात् पाठ्यक्रम निर्माण मनोवैज्ञानिक लक्ष्यों के अनुरूप ही किया जाना चाहिए ।

मूल्यांकन प्रश्न

1. पाठ्यक्रम निर्माण में अधिगम सिद्धान्तों का क्या प्रभाव है?
   What is the impact of learning theories in curriculum framing?

6.12 संदर्भ ग्रंथ (Reference)

1. Kelly, A.V.the Curriculum Theory and practice,Harper and row Newyork.
2. Pathak P.D. Education Psychology.
3. Sharma R.A. Managing Curriculum.
4. Yadav, Siyaram Curriculum Development.

http://en.wikipedia.org/wiki/classical-conditioning

इकाई 7

पाठ्यक्रम में विचारणीय सामाजिक आधार - पाठ्यक्रम के माध्यम से संस्कृति: भारत में सामाजिक परिवर्तन (विशेष रूप से विज्ञान एवं तकनीकी के सन्दर्भ में) एवं इसकी पाठ्यक्रम में निहितार्थ

Sociological Considerations: Culture through Curriculum: Social Change in India (With special reference to the Impact of Science & Technology) and Its Implications

इकाई की संरचना (Structure of the Unit)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

7.1 पाठ्यक्रम की अवधारणा (Concept of Curriculum)

7.2 पाठ्यक्रम के प्रमुख आधार (Main Considerations of Curriculum)

7.3 पाठ्यक्रम के माध्यम से संस्कृति (Culture throught Curriculum)

7.4 भारत में सामाजिक परिवर्तन (Social Change in India)

7.5 पाठ्यक्रम योजना संबंधी कुछ विचार(Some Ideas related to the planning of Curriculum)

7.6 पाठ्यक्रम संबंधी प्रवृतियाँ (Curriculum related Trends)

7.7 21वीं शताब्दी में पाठ्यक्रम (Curriculum in 21st Century)

7.8 सम्भावित भावी प्रवृत्तियाँ (Futuristic Trends)

7.9 सारांश (Summary)

7.10 संदर्भ ग्रन्थ (References)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्यक्रम की विविध व्याख्याओं के उदाहरण दे सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम की प्रक्रिया तथा इसके विविध सोपानों का विवेचन कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम के विभिन्न आधारों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम योजना के लिए विषय की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम योजना पर विभिन्न कारकों के सापेक्ष प्रभाव की चर्चा कर सकेंगे ।

- पाठ्यक्रम संबंधी 21 वीं शताब्दी में देख गर्भ तथा भावी प्रवृत्तियों का विवेचन कर सकेंगे ।

7.1 पाठ्यक्रम की अवधारणा (Concept of Curriculum)

विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु पाठ्यक्रम है । स्कूल में उपलब्ध सभी संसाधन विद्यालय भवन, उपकरण, पुस्तकें तथा अन्य शिक्षण सामग्री का एकमात्र उद्देश्य यह है कि पाठ्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन में सहयोग देना । कक्षा शिक्षण की सभी क्रियाएँ, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ एवं मूल्यांकन की सभी प्रक्रियाएँ विद्यालय पाठ्यक्रम के परिणाम स्वरूप ही नियोजित की जाती है । समाज अपनी युवा पीढी के समाजीकरण के लिए एक निश्चित शैक्षिक कार्यक्रम का नियोजन करता है जिसका क्रियान्वयन विद्यालय के द्वारा किया जाता है । इस प्रक्रिया में किन बातों को सम्मिलित किया जाए तथा इन्हें शैक्षिक व्यवहार तथा क्रियाओं के रूप में कैसे परिवर्तन किया जाए तथा इन्हें शैक्षिक व्यवहार तथा क्रियाओं के रूप में कैसे परिवर्तन किया जाए, एक विवाद का विषय है । अरस्तु ने कहा था कि "जो स्थितियाँ है. ... . मानव समाज इनके अध्यापन के प्रति न तो एकमत है और न शिक्षण के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले साधनों के प्रति ही ।" वर्तमान समय में भी यह विवाद विद्यमान है कि पाठ्यक्रम में क्या समाहित किया जाए । इसे कैसे संगठित किया जाए? इसे कैसे क्रमबद्ध करके पढाया जाए? इस विवाद के कारण ही पाठ्यक्रम की अवधारणा तथा इसके विकास के प्रति हमारे दृष्टिकोण में एकरूपता नहीं आ पाई ।

वैसे पाठ्यक्रम शब्द का विभिन्न रूपों में प्रयोग किया जाता है, सामान्यत: इसका अभिप्राय यह है कि:

- शिक्षार्थी को पढ़ाई जाने वाली विषय सामग्री ।
- स्कूल में अध्ययन के लिए निर्दिष्ट पाठ्यक्रम तथा इसके अलावा संबंधित सामग्री ।
- विद्यालय में निर्दिष्ट विषय का पाठ्यक्रम ।
- विद्यार्थियों को दिये जाने वाले अधिगम अनुभवों का सम्मिलित रूप ।
- पाठ्यक्रम हमेशा पूर्ण नियोजित होता है ।
- पाठ्यक्रम के भार आधार - सामाजिक शक्तियाँ, स्वीकृत सिद्धान्तों द्वारा प्रदत्त मानव विकास का ज्ञान, सीखने का स्वरूप तथा ज्ञान का स्वरूप ।
- पाठ्यक्रम के लक्ष्य - उससे संबंधित शैक्षिक उद्देश्यों से निर्दिष्ट होते हैं ।
- पाठ्यक्रम शिक्षक के अनुदेशन को नियोजित करने में सहायक होता है ।
- शिक्षक अपनी कक्षा के सभी बालकों के लिए एक ही प्रकार के सीखने के अनुभवों का विकास करता है।
- प्रत्येक अध्येता की अपनी वास्तविक पाठ्यक्रम के अस्तित्व के परिणाम स्वरूप निर्दिष्ट पाठ्यक्रम तथा क्रियान्वित पाठ्यक्रम के बीच पाये जाने वाले अन्तर के कारण शिक्षक का कार्य महत्वपूर्ण हो जाता है ।

7.2 पाठ्यक्रम के प्रमुख आधार (Main Considerations of Curriculum)

पाठ्यक्रम का नियोजन शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किया जाता है । दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम के स्वरूप को निश्चित करने हेतु शिक्षा के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को सामने रखना पडता है । जैसे शिक्षा के उद्देश्य होते हैं उन्हीं के अनुकूल पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार की जाती है । यदि ऐसा न किया जाए तो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति दुर्लभ हो जाए । शिक्षा उद्देश्य देश काल तथा समाज को दार्शनिक तथा सामाजिक, सांस्कृतिक विचारधाराओं के अनुसार बदलते रहते हैं । वस्तुत: पाठ्यक्रम की रूपरेखा में भी परिवर्तन होता रहता है । इसलिए यदि कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा किसी देश की शिक्षा की पाठ्यक्रम उस देश की नीति तथा विचारधारा के अनुसार निश्चित होती है । आज हमारे देश के कर्णधार तथा शिक्षाशास्त्री हमारे जीवन तथा देश के नये नये लक्ष्यों के अनुकूल शिक्षा के पाठ्यक्रम के प्रारूप बनाने में प्रयत्नशील है । स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम का नियोजन देश की सामाजिक, दार्शनिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक विचारधाराओं पर आधारित होता है ।

7.2.1 पाठ्यक्रम का दार्शनिक आधार

जिस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों के संबंध में दार्शनिकों के विभिन्न दृष्टिकोण हैं, उसी प्रकार पाठ्यक्रम संगठन के सिद्धान्तों के संबंध में भी उनके भिन्न भिन्न विचार हैं । यद्यपि यह सत्य है कि विभिन्न विचारधाराओं ने अपने-अपने मतों में पाठ्यक्रम के निर्माण के भिन्न-भिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं परन्तु इन पर विचार करने से यह संभव है कि मत भिन्नता में साथ-साथ हमें मत एकता भी दिखलाई पड जाये । रॉस के अनुसार कुछ ऐसे तथ्य अवश्य मिल जायेंगे जहाँ भिन्न भिन्न धाराओं का अन्तर समाप्त हो जाता है तथा विभिन्न धारायें एक दूसरे की पूरक प्रतीत होती हैं ।

प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषयों का निर्वाचक शिक्षार्थियों की प्राकृतिक रूचियों, क्रियाओं तथा वर्तमान अनुभवों पर निर्भर होना चाहिए । यथार्थवादियों का नारा है शब्द नहीं वस्तु महत्वपूर्ण है । अत: वे पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करते है तथा व्यावहारिक ज्ञान के पक्षपाती हैं । आदर्शवादियों के अनुसार मानव के विचारों, सत्यों, मूल्यों तथा आदर्शों के आधार पर पाठ्यचर्या का निर्माण होना चाहिए । वे इस संबंध में बालक, उसकी वर्तमान तथा भावी क्रियाओं एवं संसार की अन्य वस्तुओं को कोई महत्व नहीं देते हैं ।

प्रयोजनवाद के अनुसार पाठ्यक्रम ऐसी होनी चाहिए जो बालक को उत्तम, उपयोगी, समृद्धिशाली तथा सम्पूर्ण अनुभव प्रदान कर सके तथा उसे भावी सामाजिक जीवन के लिए तैयार कर सके । इस दृष्टि से प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यचर्या में विषयों की अपेक्षा अनुभवों को स्थान देना चाहिए । पाठ्यक्रम नियोजन का प्रमुख सिद्धान्त क्रिया है । अत: शिक्षार्थी को क्रिया का अवसर देना चाहिए ।

7.2.2 मानवतावाद एवं पाठ्यक्रम

मानवतावादी दृष्टिकोण के समर्थक **ब्रूबेकर** के अनुसार - "मानवतावाद मानव स्वभाव एवं मानवीय दृष्टिकोण पर बल देता है ।" अन्य मानवतावादी समर्थकों के अनुसार पाठ्यक्रम में तर्क बुद्धि या विवेक को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए तथा उन विषयों पर बल देना चाहिए जो तथ्यपरक हो । डार्विन ने इसी प्रकार के पाठ्यक्रम पर जोर दिया है । भारतीय मानवतावादियों की दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय एवं उसकी अच्छाईयों को शिक्षा के कार्यक्रमों में समाविष्ट करना है । अत. पाठ्यक्रम में मानवतावादी कला तथा शिल्प एवं अन्य विषयों का समावेश होना चाहिए ।

इस दृष्टिकोण से पाठ्यक्रम में विज्ञान को विशिष्ट स्थान दिये जाने पर मानवतावादी बल देते हैं । इसके विपरीत गाँधी जी का कहना है कि मानव के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए केवल ज्ञान ही आवश्यक नहीं है वरन् उसके लिए सेवाभाव व कार्यानुभव की भी आवश्यकता है ।

7.2.3. मनोवैज्ञानिक आधार

आधुनिक शिक्षा शास्त्री पाठ्यक्रम का आधार मनोवैज्ञानिक मानते हैं । उनके मतानुसार शिक्षार्थी की आवश्यकताओं, रूचियों तथा अनुभवों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का संयोजन करना चाहिए । शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए । अत: पाठ्यक्रम ऐसी होनी चाहिए जो बालक के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में सहायक हो । इन बातों की जानकारी हमें मनोविज्ञान से होती है । इसलिए पाठ्यक्रम का निर्धारण मनोविज्ञान पर आधारित होना चाहिए । चूंकि मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि बालकों की प्रकृति, बुद्धि, योग्यता, रूचि आदि में पर्याप्त भिन्नता होती है । अत: पाठ्यक्रम कठोर व जटिल नहीं होनी चाहिए । वह इतना लचीला होना चाहिए कि वह सब स्तरों के बालकों को आवश्यकतानुसार शिक्षित कर सके।

इसके अलावा बालक के विकास की कई अवस्थाएं होती हैं । भिन्न-भिन्न अवस्था में बालक को आवश्यकताएं भिन्न भिन्न होती है । इसलिए पाठ्यक्रम विषयों तथा क्रियाओं का संयोजन इस प्रकार होना चाहिए कि वह बालक की विभिन्न श्रेणीगत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके । यह कार्य करने के लिए शिक्षकों को बालकों के विकास की विभिन्न श्रेणियों की आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और इन्हीं को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम निर्मित होनी चाहिए । इससे स्पष्ट है कि मनोविज्ञान पाठ्यक्रम को निश्चित करने का एक प्रमुख आधार है ।

7.2.4 सामाजिक आधार

बालक की आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती है- (1) वैयक्तिक (2) सामाजिक । व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है । वह समाज में ही अपना जीवन बिताता है तथा समाज के बिना उसका विकास कठिन है । अत: शिक्षा द्वारा उसे समाज के साथ अनुकूल करने की क्षमता देनी चाहिए । दूसरे शब्दों में समाज पाठ्यक्रम के निर्धारण का आधार होना चाहिए । सामाजिक आधार का आशय यह है कि पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं को शामिल करना चाहिए

जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हो जो बालकों में सामाजिकता की भावना तथा सामाजिक गुणों का विकास करें और जो व्यक्ति की प्रमुख तथा गौण दोनों प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करें ।

चूंकि समाज प्रजातान्त्रिक है । अत: पाठ्यक्रम ऐसी होनी चाहिए जो प्रजातंत्र की भावना को विकसित करें । वह इतना लचीला तथा उदार हो कि सभी बालकों को अपनी योग्यतानुसार बढने का अवसर दे, उन्हें समाज का उपयोगी सदस्य एवं देश का उत्तम नागरिक बनाये तथा उसमें राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करें ताकि वे समाज तथा देश के प्रति अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों को निभा सकें ।

इसके अलावा समाज की सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, औद्योगिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ भी जीवन को प्रभावित करती है । अत: इन परिस्थितियों को मद्देनजर रखकर ही शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाना चाहिए जिससे बालक समाज की विभिन्न परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं का समाधान कर सके । यही पाठ्यक्रम का सामाजिक आधार है ।

7.2.5 वैज्ञानिक आधार

आधुनिक समाज प्रजातन्त्रात्मक होने के साथ-साथ व्यवसायात्मक है । अत: शिक्षाविदों का मानना है कि पाठ्यक्रम में उन विषयों को भी शामिल किया जाए जो व्यवसाय तथा विज्ञान से संबंध रखते हैं । जब तक बालकों को विज्ञान, व्यवसाय, व्यापार तथा यन्त्रालयों में काम करने की शिक्षा न दी जाएगी तब तक वह भावी समाज में कुशलतापूर्वक रहने के लिए तैयार न हो सकेगा । वैज्ञानिक आधार का यही तात्पर्य है । अत: पाठ्यक्रम में विज्ञान, व्यापार, कला-कौशल, उद्योग-धन्धे, व्यवसाय आदि विषयों तथा क्रियाओं को स्थान मिलना चाहिए । स्पेन्सर के अनुसार सफल शिक्षा वह है जिससे व्यक्ति अपने जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान कर सके और जो उसके जीवन को सभी प्रकार से सुखी बनाने में सहायक हो । यह केवल वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा द्वारा ही संभव है । इस दृष्टि से स्पेन्सर वैज्ञानिक ज्ञान को साहित्यिक ज्ञान की अपेक्षा अधिक उत्तम तथा उपयोगी समझता है ।

7.2.6 ऐतिहासिक आधार

प्रत्येक समाज के आधारभूत मूल्य, आदर्श, विश्वास तथा परम्पराएं होती है और इन सब में समय तथा काल एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है । कुछ में हमें इतना दृढ़ विश्वास हो जाता है कि हम उन्हें नहीं छोड़ते और ये ही हमारी शिक्षा पाठ्यक्रम को प्रभावित करते है । पाठ्यक्रम में हम उन सभी विकासों एवं मूल्यों को अवश्य स्थान देते हैं, जिन्हें हम आने वाली पीढी को सौंपना चाहते हैं । शिक्षा के इतिहास पर दृष्टि डालें तो यह विदित होता है कि जैसे-जैसे राजनैतिक परिवर्तन होते रहे हैं, वैसे-वैसे शिक्षा में भी परिवर्तन होते हैं । महाभारत काल में द्रोणाचार्य ने पाण्डवों तथा कौरवों को युद्ध विधाओं की शिक्षा दी क्योंकि उस समय युद्ध को समाज अधिक महत्त्व देता था । इसके पश्चात् भक्तिकालीन युग में आध्यात्मिक शिक्षा वेदों, उपनिषदों तथा धर्म की शिक्षा को महत्व दिया जाता था, इसी प्रकार चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त काल में राजनीति की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया । अंग्रेजों के

काल में ऑफिस कार्य के लिए बाबूओं की आवश्यकता थी, इसलिए उन्हें पाठ्यक्रम का रूप ऐसा दिया कि वह शिक्षा के द्वारा बाबू तैयार कर सकें । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से बालक के सम्पूर्ण विकास को महत्व दिया जाने लगा है, क्योंकि प्रजातान्त्रिक प्रणाली को अपनाया गया है।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम की अवधारणा स्पष्ट कीजिये ।
2. पाठ्यक्रम की कोई एक उपर्युक्त परिभाषा देकर समझाइये ।
3. पाठ्यक्रम के चार महत्वपूर्ण आधार बताइये ।

7.3 पाठ्यक्रम के माध्यम से संस्कृति (Culture through Curriculum)

विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति का, हृदयस्पर्शी मूल्यों और पवित्र परम्पराओं को स्मृति में बनाए रखने का प्रभावशाली माध्यम पाठ्यक्रम है । मूल्यों का प्रकाशन कर देने मात्र से स्वत: अगली पीढ़ी में हस्तान्तरित नहीं हो सकते, बालक परिवार और समाज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और वही भावी पीढ़ी है, उसमें मूल्यों की स्थापना के लिए आवश्यकता पाठ्यक्रम का विकास किया जाना चाहिए । प्रत्येक वर्ग / सम्प्रत्यय के कुछ निहित स्वार्थ होते हैं जो उस वर्ग या सम्प्रत्यय के कुछ निहित स्वार्थ होते है जो उस वर्ग या सम्प्रत्यय के मूलाधार होते हैं किन्तु समाज के लिए संकटकालीन भी होते हैं । अत: बच्चों में आवश्यक सिद्धान्तों के निरूपण के लिए, समाज की अखण्डता और विश्व में पहचान (वैश्विक पहचान) के लिए पाठ्यक्रम में परिशोधन की आवश्यकता महसूस की जाती है ।

शिक्षा विस्तृत स्तर पर संस्कृति के हस्तान्तरण देने वाली संगठित सामाजिक संस्था है। शिक्षा के उद्देश्यों में एक मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को मूल्यों का ज्ञान कराना भी है । जिसमें उनमें उचित दृष्टिकोण, भावनाएँ, आस्थाएँ और कौशल पवित्र जीवन जीने के लिए विकसित हो सके ।

शिक्षा का लक्ष्य बालकों में जागरूकता, संवेदना, मूल्यांकन, सामाजिक और नैतिक मूल्यों के प्रति चिंतनशील बनाना, उचित और सही निर्णय के अवसर प्रदान करना, श्रेष्ठ मूल्यों का चयन करना और उन्हें हृदय से स्वीकारना और उनके अनुरूप आचरण करना है ।

परम्परागत शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम के अन्तर्गत जो भी ज्ञान और सूचनाएँ प्रदान की जाती हैं उसमें अपेक्षा की जाती है कि वे उसे स्मृति में रखें । केवल सूचनाएँ देना मात्र शिक्षा नहीं है विषयवस्तु क्या है इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए । अनुदेशन का लक्ष्य विद्यार्थियों को विषयवस्तु में निहित मूल्यों को समझने, उसका मूल्यांकन करने और उन्हें सीखने में सहायता करना होना चाहिए ।

पाठ्यक्रम प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में ज्ञान विज्ञान एवं मूल्य शिक्षा का महत्त्वपूर्ण साधन है । यह विद्यालय के शिक्षण विषयों में, पाठ्यपुस्तकों में और विषयवस्तु के माध्यम से मूल्यों को हस्तान्तरित करने का कार्य करता है ।

विद्यालय स्तर पर विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा, गणित आदि विषय विशेष संबंधी मूलभूत ज्ञान प्रदान करते हैं । उदाहरण के लिए विज्ञान शिक्षण से बालक भौतिक तथा प्राकृतिक विश्व से संबंधित अवधारणाओं, तथ्यों, सिद्धान्तों, नियमों और वास्तविकताओं से परिचित होता है। सामाजिक विज्ञान मानवीय व्यवहार और सामाजिक पर्यावरण को समझने में सहायता करता है । इस तरह विभिन्न क्रियाएँ की जाती है किन्तु सभी का समान रूप से स्मृतिकरण नहीं होता है । निश्चित अभिवृत्ति, मूल्य और चिंतन की प्रवृत्ति ज्ञान विशेष पर निर्भर/आधारित होती है । उदाहरण के लिए विज्ञान शिक्षण से विद्यार्थी में निष्पक्ष जाँच, जिज्ञासा, सत्य की खोज की प्रवृत्ति विकसित होती है तो गणित से उसमें तार्किक चिंतन, विशुद्धता, क्रमबद्धता और निर्णय क्षमता का विकास होता है । सामाजिक विज्ञान से समाज के प्रति स्पष्ट अभिवृत्ति और सद्नागरिक बनने की तो इतिहास से अपने देश के वीरों की देश-भक्ति, बहादुरी, निष्ठा, सहयोग, न्याय और महान् व्यक्तियों के आदर्शों को जीवन में अपनाने की सीख मिलती है । भूगोल से विभिन्न देशों में आपसी अन्तर्निर्भरता, एकता, अखण्डता एवं पर्यावरण संरक्षण के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति का, भाषा शिक्षण से सम्प्रेषण की योग्यता, श्रवण कौशल, कल्पनाशक्ति, सृजनात्मकता, संवेदनात्मकता और भावात्मक विकास होता है । लेकिन अपनी संस्कृति के माध्यम से इस प्रकार विभिन्न विषयों के शिक्षण का उद्देश्य उचित अभिवृत्तियों का, मूल्यांकन की योग्यता का, मूल्यों का एवं कौशलों का विकास करना है इसलिए विभिन्न विषयों के मूल्य शिक्षा का भण्डार माना जा सकता है । संस्कृति को इस बात से समझा जा सकता है कि एक समूह के लोगों का चिंतन क्या है, वे कैसे व्यवहार करते हैं और भविष्य की पीढ़ी के लिए क्या उत्पादित (रचना) करते हैं ।

विगत वर्षो में हुए शोध यह दर्शाते हैं कि शिक्षक का कक्षा-कक्ष में विद्यार्थियों से व्यवहार एवं अन्तक्रिया दूसरों के प्रति सम्मान, दयालुता, शिष्टाचार आदि गुण विकसित करने के लिए सकारात्मक वातावरण बनाते हैं ।

सबसे अधिक प्रभावी शिक्षक वे होते हैं जो मूल्यों में स्वयं आस्था रखते हैं और विद्यार्थियों के लिए आदर्श होते हैं ।

औपचारिक पाठ्यक्रम के माध्यम से जो कुछ मूल्यों के विकास के लिए सिखाया जा रहा है उसमें प्रतिरूपण (Modeling) सीखने का सशक्त माध्यम है जिससे बालकों को यह स्पष्ट हो जाता है कि विषयवस्तु की किन बातों को जीवन में स्वीकारना है और किसे नकारना है । विद्यार्थी मूल्यों का अनुसरण करना सीख सकते हैं यदि शिक्षक स्वयं उन मूल्यों के लिए विद्यार्थियों के समक्ष आदर्श हो । इसलिए इच्छित मूल्य के प्रतिरूपण के लिए शिक्षक में अपेक्षित गुणों का होना अनिवार्य है । विभिन्न विषयों द्वारा मूल्य केन्द्रित शिक्षण सोच-समझकर किया गया प्रयास है ।

7.4 भारत में सामाजिक परिवर्तन (Social Change in India)

परिवर्तन क्षेत्र इतना विस्तृत है कि समस्त जड़ और प्राकृतिक शक्तियाँ तक इससे प्रभावित होती हैं । फिर मनुष्य तो चेतनशील प्राणी है, जीवन में व्यवस्था एवं सुरक्षा पाने के

लिए उसने परिवार, पड़ौस और समाज जैसी संस्थाओं की रचना की है तो उसकी संस्था समाज परिवर्तन से कैसे अछूती रह सकती है । परिवर्तन के विषय में ग्रीन महोदय ने कहा है कि प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ मात्रा में असंतुलन (कमी) सदैव बना रहता है । समाज के अधिकांश लोग उस असंतुलन को दूर करने के लिए और समाज में नई व्यवस्था लाने के लिए प्रयत्न करते हैं । समाज के कुछ लोग नई व्यवस्था और नई दिशा के पक्ष में हो जाते हैं तो कुछ लोग परिवर्तन लाने वाले व्यक्तियों का विरोध करते हैं । ये दोनों दशाएँ ही समाज में परिवर्तन को प्रोत्साहन देती हैं । "लूम्ले" ने माना कि समाज में बदलाव या परिवर्तन कई कारणों से होते रहते हैं और होते रहेंगे । परिवर्तन ही समाज के जीवित होने का प्रमाण है और इसके बगैर समाज का विकास संभव नही है ।

भारत के प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक समाज की तुलना करें तो परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देता है । समाज की संरचना का निर्माण व्यक्ति की स्थिति और भूमिका, विभिन्न संस्थाओं तथा सांस्कृतिक प्रतिमानों द्वारा होता है और उनमें होने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन हैं । यह परिवर्तन भौगोलिक, सांस्कृतिक, जनसंख्यात्मक तथा प्रौद्योगिक कारकों के कारण होता है ।

वर्तमान मे परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभावी और महत्वपूर्ण कारक सूचना प्रौद्योगिकी बन गया है, जिससे अन्य कारक भी प्रभावित हो रहे है और वैश्विक समाज में परिवर्तन ला रहे हैं ।

वर्तमान युग सूचना एवं प्रौद्योगिकी का युग है । इसलिए दुनिया का हर देश अपने प्रत्येक क्षेत्र में नवीनतम तकनीकी को आत्मसात् करने का इच्छुक है । सूचना एवं प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप समाज के आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए है । उदारीकरण और वैश्वीकरण को बढ़ाने में भी सूचना और प्रौद्योगिकी की अहम् भूमिका मानी जा सकती है । आज सम्पूर्ण विश्व एक छोटे गाँव का रूप ले चुका है । खुली बाजार व्यवस्था के चलते किसी भी देश के उत्पाद दुनिया के किसी भी कोने में क्रय-विक्रय के लिए उपलब्ध हैं और गौरतलब बात यह है कि ये उत्पाद घरेलू उत्पादों की कीमत से कहीं अधिक सस्ते या समान कीमत के पड़ते हैं ।

हमारे देश में सूचना प्रौद्योगिकी की शुरूआत वर्ष 1991 में आर्थिक सुधार लाने के उद्देश्य से की गई थी । तब से इसका प्रयोग लगातार बढ़ रहा है ।

सूचना और प्रौद्योगिकी की ही देन है कि जहाँ हमारा देश पहले अन्न के लिए अन्य देशों पर निर्भर रहता था आज अन्न के क्षेत्र में निर्भर ही नहीं बना वरन् अन्न का अन्य देशों में निर्यात भी कर रहा है । फल उत्पादन में हमारा देश विश्व में दूसरे स्थान पर है । बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति के लिए और विश्व में अपना अग्रिम स्थान बनाये रखने के लिए नवीनतम प्रौद्योगिकी को अपने कार्य-व्यवहार में अपनाने के लिए तत्पर है । देश में नवीन उत्पाद और सेवाएँ देने और उन सेवाओं में गुणवत्ता, कम लागत एवं कम समय लगने के लिए प्रौद्योगिकी का यथासंभव प्रयोग हो रहा है ।

सूचना प्रौद्योगिकी ने सामाजिक जीवन में काफी परिवर्तन लाने का कार्य किया है । रोजगार के अवसर शहरों में अधिक होने के कारण लोग गांवों में पलायन करने लगे हैं । जिससे शहरों की सीमाओं में तो विस्तार हुआ है । किन्तु संयुक्त परिवार प्रथा खत्म होने लगी

है और उसकी जगह एकल परिवार ने ले ली है । जीवन शैली में बदलाव एवं हर व्यक्ति में अपने आप को सम्पन्न बनाने की होड़ भी सूचना प्रौद्योगिकी की ही देन है । महिलाएँ आज शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं वरन् रोजगार के क्षेत्र में पुरूषों के बराबर कार्य कर रही है जिससे महिलाओं का समाज में सशक्तिकरण हुआ है । एक ही कार्यस्थल पर विभिन्न जाति एवं धर्म के लोगों के साथ-साथ कार्य करने के जातिगत भेदभाव में भी कमी होने लगी है । विवाह विषयक मान्यताओं में परिवर्तन होने लगा है । अब प्रेम-विवाह, विलम्ब विवाह, अन्तर्जातीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय विवाह और विवाह-विच्छेद का प्रचलन बढ़ने लगा है ।

आज का युग विज्ञान का युग है । इसलिए आज का शिक्षित वर्ग किसी भी परम्परा या प्रथा का आँख मूंदकर पालन नहीं करता वरन् उसे तर्क की कसौटी पर परखना चाहता है । सूचना और प्रौद्योगिकी ने इसमें सोने पे सुहागा का कार्य किया है, जिससे लोगों के धार्मिक अंधविश्वास, कुसंस्कार और अज्ञानता में कमी आई है । लोग एक-दूसरे के धर्म को निकट से जानने का प्रयास करने लगे हैं, जिससे धार्मिक संकीर्णताएँ कम होने लगी हैं और उसमें सहनशीलता और दूसरे धर्म के प्रति उदारता बढ़ी है ।

किन्तु सामाजिक मूल्यों के पालन में कमी आई है और उसकी जगह व्यक्तिगत मूल्य ज्यादा हावी होने लगे हैं । जिससे सामाजिक संबंधों में असंतुलन की स्थिति बढ़ने लगी है । सांस्कृतिक मूल्यों में भी गिरावट आई है और जनमानस पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा है । विभिन्न पश्चिमी पर्वों का आयोजन धूमधाम से किया जाना इस बात का सूचक है ।

औद्योगिक क्षेत्र में सूचना एवं प्रौद्योगिकी का बड़े स्तर पर प्रयोग किया जाने लगा है। भेल दुर्गापुरा स्टील प्लांट, एच.ए.एल., इरकान जैसे बड़े उद्योगों में और गांव की डेयरी फार्मिंग जैसे छोटे उद्योगों में नवीनतम प्रौद्योगिकी को अपनाया गया है । अंतरिक्ष विज्ञान, मौसम विज्ञान, युद्ध संबंधी उपकरणों में देश काफी हद तक आत्मनिर्भर होता जा रहा है अब इसरो के वैज्ञानिकों द्वारा मिसाइलों के प्रक्षेपण में मिल रही सफलता इस बात का पक्का साक्ष्य है कि भारत तकनीकी क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ता जा रहा है । अमेरिका द्वारा भारत से की गई परमाणु-संधि भी इस बात का संकेत करती है कि भारत सूचना प्रौद्योगिकी के बल पर महाशक्ति के रूप में विकसित हो रहा है ।

बैंकिंग सेवाओं में गुणवत्ता, लागत व समय में कमी लाने के उद्देश्य से "इंटरनेट बैंकिंग सुविधा" देश में प्रारम्भ की गई है, जिसमें ग्राहक बिना बैंक शाखा में जाए, घर बैठे अपने खाते से संबंधित लेन-देन की जानकारी व खाता विवरण प्राप्त कर सकता है ।

सूचना क्रांति की वजह से गांव-गांव में टेलीफोन, घर-घर मोबाइल, शहर-कस्बों में इंटरनेट का प्रयोग बढ़ता जा रहा है । विभिन्न व्यवसायों और अध्ययन से जुड़े व्यक्ति इन संचार साधनों का प्रयोग नवीनतम जानकारी प्राप्त कर अपने ज्ञान में वृद्धि कर रहे हैं और अपने क्षेत्र में गुणवत्ता ला रहे हैं ।

स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में आज जितना विकास और परिवर्तन हुआ है, उसके लिए सूचना प्रौद्योगिकी के महत्त्व को नहीं नकारा जा सकता है । आज इंटरनेट पर पलक झपकते

ही किसी भी देश के किसी भी चिकित्सक के परामर्श को घर बैठे ही प्राप्त किया जा सकता है। चिकित्सा क्षेत्र में हो रहे नवीन प्रयोग अनुसंधान और विकास की सारी जानकारी इंटरनेट व अन्य दूरसंचार माध्यमों के जरिए तुरन्त प्राप्त की जा सकती है । टेलीविजन द्वारा भी स्वास्थ्य से संबंधित सूचनाएँ और कार्यक्रम जारी किए जाने लगे हैं जिससे देश के आम नागरिक की स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ी है ।

जहाँ तक शिक्षा का सवाल है । इस दिशा में देश में अनेकानेक निजी इंजीनियरिंग, मेडिकल, आई. आई.टी., ऐम्स जैसी शीर्षस्थ संस्थाओं का विकास हो रहा है । शिक्षा के क्षेत्र में नवीनतम सूचनाओं के साथ नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए अध्ययन, अध्यापन और शोध किया जा रहा है । "ई-लर्निग" एवं डिस्टेंस लर्निग" उन विद्यार्थियों के लिए एक अच्छा विकल्प है, जो विद्यालय से लगातार नहीं जुड़ पाते हैं । वे अपनी सुविधानुसार किसी भी समय नेटवर्क से जुड़ता हैं और वांछित सूचनाएँ ग्रहण करते हैं तथा अपनी शंकाओं और समस्या का समाधान कर पाते हैं ।

सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न साधनों यथा **LCD,OHP,DVD,COMPUTER** तथा अन्य दृश्य-श्रव्य साधनों की कक्षा-कक्ष में व्यवस्था कर Smart Classroom का निर्माण किया जाने लगा है । जिससे शिक्षण में नई प्रवृत्तियों का विकास हो रहा हे । आज विद्यार्थियों की किताबों का स्थान लैपटॉप एवं कम्प्यूटर ने ले लिया है । संदर्भ पुस्तकों के लिए सीडी, बुक्स की व्यवस्था होने लगी है और विस्तृत एवं गहन अध्ययन के लिए ई-लाइब्रेरी का प्रयोग किया जाने लगा है । विद्यार्थियों को प्रदत्त कार्य (Assignment) भी आन-लाईन द्वारा दिया जाने लगा है ।

विद्यार्थी विषयवस्तु को ठीक प्रकार से समझ सके और प्रशिक्षण भी वास्तविक और प्रभावी बन पाये इसके विभिन्न पाठ्यक्रमों में सेमेस्टर प्रणाली, फील्डवर्क, इंटर्नशिप की शुरूआत सूचना प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप हुई है ।

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के विकास का ही परिणाम है Virtual Universities जिसके अन्तर्गत एक विश्वविद्यालय के विषय विशेषज्ञ विश्व के विभिन्न विश्वविद्यालयों के विषय विशेषज्ञों से परामर्श एवं मार्गदर्शन दे और ले सकते हैं । उनके व्याख्यानों का लाभ टेली कांफ्रेसिंग के जरिए विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी उठा सकते हैं और विषय से संबंधित शंकाओं और जिज्ञासाओं को सामने रख उसका समाधान भी पा सकते है ।

सूचना और प्रौद्योगिकी के विकास ने विभिन्न नये पाठ्यक्रमों का सृजन किया है ।

7.5 पाठ्यक्रम योजना संबंधी कुछ विचार

आप जानते है कि विद्यालय प्रणाली का उद्देश्य समाज की संस्कृति सुरक्षित रखना तथा आगे बढ़ाना होता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यालय पाठ्यक्रम का प्रयोग करते हैं । पाठ्यक्रम में संस्कृति, ज्ञान व समाज के अनुभवों के ऐसे चुने हुए व पुनर्गठित अंश होते हैं । जिन्हें समाज के संरक्षण व विकास के लिए जरूरी समझा जाता है । पाठ्यक्रम योजना में ये सभी निर्णय लिए जाते हैं कि समाज के कौन से तथ्य व अनुभव छात्रों को इनके व्यवस्थित

संप्रेषण के लिए चुने जाए । इन प्रश्नो के उत्तर देने के लिए प्रत्येक पाठ्यक्रम आयोजनकर्ता के द्वारा निर्विवाद रूप से विचार किया जाना चाहिये ।

7.5.1 विषय की प्रकृति तथा पाठ्यक्रम योजना

पाठ्यक्रम की योजना बनाते समय पहला ध्यान यह रखना चाहिए कि विषय की प्रकृति व स्वरूप क्या है । विषय का अभिप्राय विषय-वस्तु के व्यापक तथा तार्किक दृष्टि से संगठित स्वरूप से है जो अपने विद्वतापूर्ण सार के कारण विशिष्ट या भिन्न होता है तथा अपनी संरचना द्वारा ही अपनी विशिष्टताएँ निरूपित करता है । दूसरी बात यह है कि प्रत्येक विषय की अपनी पद्धति तथा जाँच का तरीका होता है जिसके माध्यम से ज्ञान सृजित किया जा सकता है तथा उसे वैधता प्रदान की जाती है । तीसरी बात यह है कि प्रत्येक विषय की अपनी परम्परा तथा नियमों का इतिहास होता है । किसी विषय की संरचना उस तरीके को व्यंजित करती है जिसके द्वारा इसका अध्ययन तथा ज्ञानार्जन किया जाता है । इन पाठ्यक्रमों में ये सुझाव दिए जाते हैं कि छात्रों को अधिगम अनुभवों की विशिष्ट प्रणालियाँ उपलब्ध कराई जाये । यह अधिगम अनुभव संबंधित विषय की प्रकृति पर निर्भर करते हैं । अत: विषय के स्वरूप के अन्तर्गत ज्ञान तथा इसकी संरचना, पद्धतियाँ एवं विधियाँ शामिल होती हैं । जिनके द्वारा विषय संबंधित ज्ञान का सृजन किया जाता है । यह प्रथम कारक है जो अनिवार्य पाठ्यक्रम नियोजन की प्रक्रिया को प्रभावित करता है और इसलिए पाठ्यक्रम योजनाकार को इस पर चिन्तन करना चाहिए ।

7.5.2 पाठ्यक्रम योजना के मूल विचार

पाठ्यक्रम योजनाकार के रूप में आपको पाठ्यक्रम नियोजन तथा विकास के दौरान विभिन्न विचार ध्यान में रखने चाहिए । ये विचार सामूहिक रूप से आवश्यकता आधारित पाठ्यक्रम के नियोजन तथा विकास के संबंध में प्रत्येक निर्णय को प्रभावित करते हैं । पाठ्यक्रम छात्र, समाज, पर्यावरण. अर्थव्यवस्था, संस्था तथा अध्यापक संबंधी कारकों तथा विषयवस्तु की संरचना से संबंधित विविध कारकों द्वारा प्रभावित होती है । प्रत्येक कारक पाठ्यक्रम नियोजनकर्ता पर अपना अलग दबाव डालता है । इसके अलावा ये सभी कारक एक दूसरे को भी प्रभावित करते हैं । वांछित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रत्येक कारक को यथोचित महत्व दिया जाना चाहिए ताकि सार्थक पाठ्यक्रम की जा सके । अत: पाठ्यक्रम विकास संबंधी निम्नांकित विचार हैं-

1. विकासात्मक विचार
2. सामाजिक विचार
3. आर्थिक विचार
4. परिवेश संबंधी विचार
5. संस्थानिक विचार
6. अध्यापक संबंधी विचार

7.6 पाठ्यक्रम संबंधी प्रवृतियाँ (Curriculum related Trends)

पाठ्यक्रम कोई स्थिर वस्तु नहीं है । इसे प्रभावी होने के लिए विद्यालय का एक गतिशील-कारक होना चाहिए जो समाज में होने वाले परिवर्तनों के जवाब में निरन्तर परिवर्तित होता रहे । 20 वीं शताब्दी में विश्व के लगभग सभी समाजों में विविध आर्थिक-सामाजिक तथा प्रौद्योगिकीय परिवर्तन हुए विद्यालय द्वारा अपने भावी छात्रों को उपलब्ध कराये जाने वाले कार्यकलापों तथा शिक्षण अनुभवों में यह परिवर्तन भिन्न-भिन्न मात्राओं में प्रतिबिम्बित होने चाहिए । अच्छा पाठ्यक्रम नियोजक वह है जो न केवल समाज के मौजूदा परिवर्तनों व विकास से अवगत हो बल्कि भावी आवश्यकताओं के प्रति भी सचेत होना चाहिए । उसे बाहरी व आन्तरिक कारकों के कारण समाज में संभावित घटनाओं के विकास का भी ज्ञान होना चाहिए । हम पाठ्यक्रम को तभी प्रभावशाली प्रासंगिक कहेंगे यदि उसमें समाज की वर्तमान तथा भावी प्रवृत्तियाँ समय पर प्रतिबिम्बित होती हो ।

7.7 21 वीं शताब्दी में पाठ्यक्रम (Curriculum in 21st Century)

20वीं सदी तथा 21 वीं सदी के प्रारम्भ में समूचे विश्व में विभिन्न परिवर्तन हुए उनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का उल्लेख निम्नांकित हैं-

1. **उदारवादी शिक्षा -** प्राचीनकाल में शिक्षा केवल कुछ ही लोगों तक सीमित थी । मूल पाठ को रटाकर समझने के स्थान पर अब मूल पाठ को समझने तथा आत्माभिव्यक्ति पर बल दिया जाता है । यह उदारवादी शिक्षा ही है जो स्कूली पाठ्यचर्या को पंथ निरपेक्षता की ओर ले जाती है ।

2. **भूमण्डलीय शिक्षा -** भूमण्डलीय परस्पर निर्भरता वर्तमान में प्रत्येक समाज के लिए आवश्यक बन गई है । राष्ट्रों के बीच सम्पर्कों तथा संबंधों के तन्त्र ने मकड़ी के जाल की तरह पूरे विश्व को अपने घेरे में समेट लिया है तथा इस तंत्र को छूने का अर्थ विश्व के अनेक भागों में कम्पित करना । मानव जीवन के सभी पक्ष सार्वभौमिक रूप से अन्तः निर्भर है । भूमण्डलीय शिक्षा उभरती हुई भूमण्डलीय प्रणालियों को समझाने की समकालीन विश्व की आवश्यकता का उत्तर है । छात्रों को विश्व की गहरी समझ होनी चाहिए । अत: ऐसी पाठ्यक्रम का विकास होना चाहिए जो विश्व के बारे में छात्रों में जागरूकता पैदा कर सकें । भूमण्डलीय शिक्षा की पाठ्यचर्या को बालकों को सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करना चाहिए ।

3. **अर्न्तविषयी विषयवस्तु -** प्रचलित पाठ्यक्रम में ज्ञान को स्वतन्त्र -विषयों तथा क्षेत्रों के रूप में पारम्परिक अविच्छिन्न विभाजन के अनुसार स्वीकार नहीं किया गया है । पाठ्यक्रम में अंतर्विषयी दृष्टिकोण छात्रों को विभिन्न विषयों की विषयवस्तु को अच्छी तथा यथार्थवादी ढंग से समझने में सहायता करता है । इससे मानव समाज की अनेक समस्याओं को भी अधिक प्रभावी ढंग से हल करने में सहायता मिलती है ।

4. **पंथनिरपेक्षता तथा शिक्षा -** वर्तमान में सभी समाजों में विभिन्न धर्मों व संप्रदायों के नागरिक होते हैं । लोकतन्त्रात्मक समाज में पंथनिरपेक्षता में दृढ़ विश्वास है जिसके द्वारा लोग अपने विश्वासों व मान्यताओं के अनुसार पूजा-पाठ हेतु पूर्ण स्वतंत्र है । राज्य उनकी धार्मिक मान्यताओं में हस्तक्षेप नहीं करता है । विद्यालय में विभिन्न धर्मावलम्बी के छात्र एक साथ

पढ़ते हैं । धार्मिक शिक्षा देना असंतोष व आंतरिक समस्या का कारण हो सकता है । इन्हीं कारणों से राज्य अपने औपचारिक पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों को धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से प्रशिक्षण देता है ।

5. मनोविज्ञान तथा पाठ्यक्रम - पाठ्यक्रम का नियोजन करते समय उन मनोवैज्ञानिक विशेषताओं पर ध्यान दिया जाता है जो किसी विषय विशेष के अधिगम को प्रभावित करती है । मानव विकास, विभिन्न प्रकार के विषयों को सीखने में प्रेरणादायक कारक, शैक्षिक तकनीकी तथा मूल्यांकन प्रक्रियाएँ इत्यादि क्षेत्रों को विषय विशेष की पाठ्यक्रम तैयार करते समय ध्यान में रखा जाता है । छात्रों की वैयक्तिक विभिन्नताओं से पैदा होने वाली विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताऐं, छात्रों के लिए जुटाए गए सीखने के अनुभवों के चयन का आधार बनती है । सारांश में सीखने का मनोविज्ञान पाठ्यक्रम संबंधी निर्णयों को स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है ।

7.8 सम्भावित भावी प्रवृत्तियाँ

अत: हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम का प्रमुख कार्य हैं-भविष्य के लिए युवकों को तैयार करना । इस कार्य को ध्यान में रखते हुए पाठ्यचर्या नियोजक को भविष्य के लिए पाठ्यक्रम विकास संबंधी सम्भावनाओं का मूल्यांकन करना होता है । ऐसा करते समय विभिन्न प्रश्नो का उत्तर देना आवश्यक है जैसे-हमारे समाज में वर्तमान में शिक्षा की भूमिका क्या है? क्या हमारे समाज का भविष्य पाठ्यक्रम द्वारा प्रभावित हो सकता है? पाठ्यक्रम नियोजन करते समय हम किस प्रकार से विभिन्न लोगों को इसमें प्रभावी तरीके से शामिल कर सकते हैं?
अत: निम्नांकित कारणों से भविष्य की पाठ्यचर्या प्रारूप आवश्यक हो गया है-

- जनांकिकीय परिवर्तन - लिंग, आयु प्रतिमान, मृत्युदर आदि ।
- प्रौद्योगिक नवाचार
- सामाजिक नवाचार
- सांस्कृतिक प्रसार

उपरोक्त परिवर्तनों ने भारतीय समाज की सामाजिक संरचना को परिवर्तित किया है । ऐसा अनुभव भविष्य की चिन्ता को बढा देता है । भविष्य में विद्यालय कैसे होने चाहिये? पाठ्यचर्या की भूमिका बदलते समाज में विद्यालय का प्रयोजन तय करना होता है ।

सूचना विस्फोट व संचार प्रौद्योगिकी- छात्रों में सूचना प्रवाह को निरन्तर काम में लाने के लिए आवश्यक कौशलों व रुचियों के विकास में पाठ्यचर्या का योगदान होना चाहिये । सूचना प्रवाह के साथ ही साथ में संचार प्रौद्योगिकी भी तेज गति से बदल रही है । इससे आगामी वर्षो में पाठ्यक्रम का संचालन अधिक वैज्ञानिक व व्यावहारिक बनेगा । इसे छात्र की जरूरतों के अनुकूल बनने के लिए विविध प्रकार के अधिगम सॉफ्टवेयर पर आधारित होना पड़ेगा ।

नवीन रोजगार- नए रोजगारों का बाजारों में विकसित होने के कारण शिक्षित मानव शक्ति की जरूरत भावी पाठ्यक्रम में विभिन्न परिवर्तनों का कारण होगी । पाठ्यक्रम को रोजगारोन्मुखी बनना होगा । विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक अलग पाठ्यक्रम तैयार करने की माँग बढ़ती जा रही है जो नए रोजगारों के लिए युवकों को प्रशिक्षित करने में सहायक हो सकती है । अत: सामान्य धारणा है कि इस सामाजिक वास्तविकता पर कम ध्यान दिया गया

है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक लाभप्रद रोजगार मिले । यह भी महसूस किया गया कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय एवं राजनीतिक स्थितियाँ शिक्षा की मूलभूत परिभाषा में परिवर्तन की ओर संकेत है ।

इसके अलावा सभी के लिए आजीवन तथा निरन्तर शिक्षा पर अधिक बल देने तथा उसकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए आमने-सामने की शिक्षा पद्धति के विकल्प तथा अनिवार्य अनुपूरक के रूप में दूरस्थ शिक्षा पद्धति को प्रोत्साहन मिला है । यह पाठ्यक्रम आवश्यकताओं पर आधारित, शिक्षार्थी की आवश्यकताओं एवं सुविधा के अनुकूल तथा लचीली एवं उन्हें शिक्षार्थी के घर पर ही उपलब्ध होती है । दूरस्थ पद्धति की पाठ्यक्रम में शिक्षार्थी को स्वाध्ययन तथा स्वक्रिया द्वारा सीखने के लिए प्रेरित होना चाहिये ।

7.9 सारांश (Summary)

कक्षा शिक्षण की सभी क्रियाएँ, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ एवं मूल्यांकन की सभी प्रक्रियाएँ विद्यालय पाठ्यक्रम के परिणाम स्वरूप ही नियोजित की जाती है । समाज अपनी युवा पीढी के समाजीकरण के लिए एक निश्चित शैक्षिक कार्यक्रम का नियोजन करता है जिसका क्रियान्वयन विद्यालय के द्वारा किया जाता है।

पाठ्यक्रम का नियोजन शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए किया जाता है । दूसरे शब्दों में पाठ्यक्रम के स्वरूप को निश्चित करने हेतु शिक्षा के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को सामने रखना पडता है । मूल्यों का प्रकाशन कर देने मात्र से स्वत: अगली पीढ़ी में हस्तान्तरित नहीं हो सकते, बालक परिवार और समाज के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और वही भावी पीढ़ी है, उसमें मूल्यों की स्थापना के लिए आवश्यकता पाठ्यक्रम का विकास किया जाना चाहिए ।

वर्तमान में परिवर्तन का सर्वाधिक प्रभावों और महत्त्वपूर्ण कारक सूचना एवं प्रौद्योगिकी बन गया है, जिससे अन्य कारक भी प्रभावित हो रहे है और वैश्विक समाज में परिवर्तन ला रहे हैं । पाठ्यक्रम योजना में ये सभी निर्णय लिए जाते हैं कि समाज के कौन से तथ्य व अनुभव छात्रों को इनके व्यवस्थित संप्रेषण के लिए चुने जाए । इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिए प्रत्येक पाठ्यक्रम आयोजनकर्ता के द्वारा निर्विवाद/निरपेक्ष रूप से विचार किया जाना चाहिये ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. विषय पाठ्यक्रम की संरचना क्या होती है?
2. विषय का स्वरूप पाठ्यक्रम नियोजन को कैसे प्रभावित करता है ।
3. वर्तमान में स्कूली पाठ्यक्रम में हुए तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन संक्षिप्त में लिखिए ।
4. भविष्य के लिए पाठ्यक्रम डिजाइन की आवश्यकता क्यों है? इसके तीन कारण लिखिए।
5. पाठ्यक्रम संबंधी किन्हीं तीन प्रवृतियों का उल्लेख कीजिये ।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. **Agrawal, J,C (1990):** Curriculum Reforms in India,Daoba House,Delhi.

2. **Orsntein, C.& Hunkins P.(1988):**Curriculum,Foundations,Principles and Issues, New Jersey,U.K.
3. **Pandey, R.S. (2001):** Shihskha Darshan, Vinod Pustak Mandir, Agra.
4. **Rao, V.K. (2005):** Principles of Curriculum,A.P.H Publishing Corporation,New Delhi.

इकाई 8

पाठ्यक्रम आकल्पन एव संगठन : आकल्पन के अवयव एवं स्त्रोत, पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त, पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन में पाठ्यचर्या संगठन की विधियाँ (Curriculum Design and Organization : Components and Sources of design, Principles of curriculum operations,Methods of Organization of Syllabus in formulating Curriculum operations)

इकाई की रूपरेखा (Structure of the Unit)

8.0 उद्देश्य(Objectives)

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

8.2 पाठ्यक्रम आकल्पन का तात्पर्य (Meaning of Curriculum Design)

8.3 पाठ्यक्रम आकल्पन के अवयव (Components of Curriculum Design)

8.4 पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोत (Source of Curriculum Design)

8.5 पाठ्यक्रम आकल्पन के सिद्धान्त (Principles of Curriculum Design)

8.6 पाठ्यक्रम कार्यान्वयन हेतु पाठ्यचर्या संगठन की विधियाँ (Methods of Organization of Syllabus in Formulating Curriculum Operation)

8.7 सारांश (Summary)

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

8.0 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- पाठ्यक्रम आकल्पन का तात्पर्य जान सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम आकल्पन के अवयवों से परिचित हो सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम आकल्पन के विभिन्न स्रोतों को समझ सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम कार्यान्वयन के क्रम में पाठ्यचर्या संगठन की विधियों की जानकारी प्राप्त सकेंगे ।
- पाठ्यचर्या संगठन की विधियों के साथ सम्बद्ध आयामों को समझ सकेंगे ।

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

पाठ्यक्रम मात्र विद्यालय के अन्दर होने वाली क्रियाओं तक सीमित नहीं है, वरन् इससे बाहर की वे सभी क्रियाएँ इसमें सम्मिलित हैं जो उसके विकास में योगदान देती हैं । इन क्रियाओं सीमा ज्ञानात्मक पक्ष तक सीमित न होकर शारीरिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक एवं नैतिक क्षेत्रों तक फैली हुई है ।

पाठ्यक्रम समाज के उद्देश्यों एवं आवश्यकता को पूरा करने का ऐसा साधन है जो बच्चों को समाज के स्वरूप का ज्ञान कराता है तथा वांछित एवं अवांछित व्यवहारों का बोध कराती है। इसके अन्तर्गत मानसिक विकास के साथ उन सभी क्रियाओं का विवरण होता है, जिससे बच्चे का भावात्मक एवं गत्यात्मक विकास भी साथ-साथ हो सके और उसका व्यक्तित्व पूर्ण रूप में प्रगति कर सके । इस प्रकार बच्चे के बहुमुखी विकासार्थ परिपक्वता के अनुसार ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं (भाषा, विज्ञान, साहित्य, कला, सामाजिक अध्ययन आदि), भावात्मक अनुभवों (मूल्य, प्रत्यक्षीकरण, अनुभूति, मूल्यों का संगठन, संवेगों का समायोजन व प्रमुख संवेग का चयन तथा चरित्र निर्माण) तथा गत्यात्मक क्रिया-कलापों (व्यायाम, खेलकूद, भ्रमण एवं पर्यटन आदि) की ऐसी रूपरेखा (design) जो प्रत्येक बच्चे की योग्यता, समता एवं अभिरूचि के अनुसार विकास का पूर्ण अवसर देकर समाज की प्रगति में अधिकाधिक योगदान देती हो, पाठ्यचर्या कहलाती है। इस पाठ्यचर्या के आकल्पन (design) से क्या तात्पर्य है?पाठ्यक्रम आकल्पन के प्रमुख अवयव (components) तथा स्रोत (sources) कौन-कौन से हैं? किन सिद्धान्तों (principles) का पाठ्यचर्या निर्माण (curriculum construction) करते समय ध्यान रखा जाता है? तथा पाठ्यचर्या कार्यान्वयन के लिए (for formulating operations) पाठ्यचर्या संगठन (syllabus organization) कैसे किया जा सकता है? यह जानना अत्यन्त आवश्यक है । आगे इकाई में इन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है ।

8.2 पाठ्यक्रम आकल्पन: तात्पर्य (Meaning of curriculum Design)

पाठ्यक्रम आकल्पन की शब्दावली में दो पहलू सम्मिलित हैं- प्रथम, विधि- सहायक-सामग्री, क्षेत्र एवं व्यवस्था,method support & Material,scope and organization जो लिखित रूप में पाठ्यवस्तु होती है । द्वितीय. शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच होने वाली परस्पर अन्त: क्रिया के फलस्वरूप अधिगम अनुभव । पाठ्यक्रम आकल्पन दो शब्दों से मिलकर बना है- पाठ्यक्रम curriculum तथा आकल्पन । आकल्पन का साधारण अर्थ है आकृति की परिसीमा delimitation of a shape परन्तु पाठ्यक्रम के संदर्भ में आकल्पन का अर्थ है कि विद्यार्थी के बहुमुखी विकास के लिए भिन्न-भिन्न क्रियाओं एवं उनकी सीमा को स्तर पर कितना रखा जाये ताकि वह अपनी रूचि, क्षमता, परिपक्वता के अनुसार क्रिया का ज्ञान, बोध एवं प्रयोग कर पाये । इस प्रकार प्रत्येक अनुभव क्रिया के सीखने की भिन्न-भिन्न मात्रा (परिमाण), स्तर अनुसार व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध स्वरूप का निर्धारण करना पाठ्यक्रम आकल्पन कहलाता है ।

8.3 पाठ्यक्रम आकल्पन के अवयव (Components of Curriculum Design)

शिक्षा के किसी भी स्तर पर पाठ्यक्रम आकल्पन को शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली के सन्दर्भ में देखा जाता है । पाठ्यक्रम आकल्पन का सम्प्रत्यय पाठ्यक्रम नियोजन ,planning के अवयवों की वास्तविक व्यवस्था को रेखांकित करता है । एच.एच.गाइल्स (H.H. Giles) के अनुसार पाठ्यक्रम आकल्पन, जिसे कभी-कभी पाठ्यक्रम संगठन Curriculum organization भी कहा जाता है, के मुख्यत: चार अवयव होते हैं-

(1) लक्ष्य, निमित्त एवं उद्देश्य(aims, Goals and Objectives)

(2) विषय सामग्री (Subject matter)

(3) अधिगम अनुभव (Learning experiences)

(4) मूल्यांकन उपागम (sEvaluation approaches)

इन अवयवों को अग्रांकित प्रकार से समझा जा सकता है-

(1) लक्ष्य. निमित्त एवं उद्देश्य

पाठ्यक्रम आकल्पन का यह अवयव क्या किया जाना है, इसका उत्तर देता है । हमारे संविधान की उद्देशिका में सम्मिलित उदात्त मूल्य-संप्रभुता, समाजवाद, पंथनिरपेक्षता, लोकतन्त्र, गणराज्यीय स्वरूप, न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य कहे जा सकते हैं । अधिगमकर्ताओं द्वारा ज्ञान का अर्जन, सम्प्रत्ययों का विकास और कौशलों, अभिवृत्तियों, मूल्यों एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त आदतों का समावेश, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय वास्तविकताओं के प्रति गहरी समझ आदि शिक्षा के निमित्त कहे जा सकते हैं । भाषायी दक्षता, सम्प्रेषण कौशल, गणितीय दक्षता, शारीरिक पुष्टता एवं दृढ़ता, लिंग के प्रति उचित दृष्टिकोण सहयोग, मित्रता, आत्मनियंत्रण, आत्मावलोकन, साहस, सामाजिक न्याय व सम्बन्धों. के प्रति स्नेह, नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों का विकास, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्वतंत्र एवं अमूर्त चिंतन (independent and divergent thinking), स्व-अधिगम (self-learning) आदि को शिक्षा का उद्देश्य कहा जा सकता है । इस प्रकार शिक्षा के लक्ष्यों, निमित्तों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का आकल्पन किया जाता है ।

(2) विषय-सामग्री

पाठ्यक्रम आकल्पन का यह अवयव किस विषय-सामग्री को सम्मिलित जाना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर देता है । विषय सामग्री पाठ्यक्रम आकल्पन का एक मुख्य अवयव होती है। पाठ्यक्रम द्वारा उन मूल्यों एवं नियमों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है जो समाज में रहने के लिए अनिवार्य होते है । इसके अन्तर्गत समाज की समस्याओं का विस्तृत अध्ययन किया जाता है । इसमें केवल एक विषय या क्षेत्र की समस्याओं की और ध्यान नहीं दिया जाता बल्कि वृहद समाज की सभी समस्याओं का समाधान अधिक से अधिक गहराई तक किया जाने

की चुनौती होती है । विषय सामग्री का लक्ष्य संतुलित एवं एकीकृत व्यक्तित्व एवं समाज बनाना होता है । अत: भाषाएँ, गणित, विज्ञान, सामाजिक-विज्ञान, कार्य-अनुभव, कला-शिक्षा, स्वास्थ्य-शिक्षा, कम्पयूटर-विज्ञान, शांति के लिए शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा आदि से सम्बन्धित विषय सामग्री को सम्मिलित किया जाता है ।

(3) अधिगम अनुभव

पाठ्यक्रम आकल्पन का यह अवयव किन अनुदेशनात्मक आव्यूहों (instructional strategies) संसाधनों (resource) एवं गतिविधियों को सम्मिलित किया जाय, इसका उत्तर देता है । शिक्षाशास्त्र में मनोवैज्ञानिक विकास व अभिरुचियों को दृष्टिगत रख शिक्षण-अधिगम (teaching-learning) को शिक्षार्थियों की विशेषताओं व जरूरतों से सुमेलित (match) करने पर बल दिया जगता है ताकि प्राप्त अनुभव विस्तृत विविधताओं (diversities) के अन्तर्गत भौतिक, सांस्कृतिक व सामाजिक प्राथमिकताओं को सम्बोधित करें तथा विद्यार्थियों की सक्रियता व रचनात्मक सामर्थ्य को पोषित व संवर्धित करे । अधिगम-अनुभव अधिगमकर्ता को चिन्तन-कौशल एवं तार्किक क्षमता को विकसित करने के आधार प्रदान करते हैं; अधिक समझ के लिए अधिगमकर्ता को उद्दीप्त करते हैं तथा खुले विचार एवं विविधता के प्रति अधिगमकर्ता की सहनशीलता पर बल देते हैं । अधिगम अनुभव सतत् अधिगम के लिए अभिप्रेरण एवं देते हैं ताकि आवश्यकताओं की पूर्ति कर, रूचियों का विस्तार किया जा सके ।

बच्चे उसी वातावरण में अधिक सीख सकते हैं, जहाँ उन्हें लगे कि उन्हें महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है तथा जहाँ सीखने का आनंद व संतोष के साथ रिश्ता हो । विद्यार्थियों को अधिगम अनुभव इस प्रकार मिले कि उन्हें यह महसूस हो कि वे सभी, उनका घर, समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्त्वपूर्ण हैं । इन्हें अनुभव के ऐसे संसाधनों के रूप में देखा जाए जिन्हें शिक्षा संस्थान में जाँचा तथा निर्देशित किया जाना है ।

(4) मूल्यांकन उपागम (Evaluation Approach)

पाठ्यक्रम आकल्पन का यह अवयव पाठ्यक्रम के परिणामों के मूल्य निर्धारण की विधियों एवं इसके लिए किन उपकरणों (instruments) का उपयोग किया जाए, इसका उत्तर देता है । पाठ्यक्रम की संरचना करते समय यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम की सफलता का आकलन और मूल्यांकन किस प्रकार किया जाएगा, पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र कौन से होंगे जिनका मूल्यांकन किया जायेगा, आकलन की रूपरेखा क्या होगी, रूप रेखा का संचालन किस प्रकार जाएगा, पाठ्यचर्या के वे क्षेत्र कौनसे होंगे जिन्हें अंकों के लिए नहीं जाँचा जा सकता है आदि आकलन व मूल्यांकन सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त' करना चाहिए । इस प्रकार पाठ्यक्रम आकल्पन के चारों अवयव मिलकर पाठ्यचर्या आकल्पन को पूर्ण बनाते हैं । किसी भी पाठ्यक्रम आकल्पन में ये अवयव स्वतंत्र अथवा पृथक् रूप से विद्यमान नहीं होते हैं, वरन् इनके मध्य परस्पर अन्त: क्रिया चलती है । इन अवयवों के मध्य अन्त: क्रिया (interaction) को अग्रांकित चित्र में समझा जा सकता है-

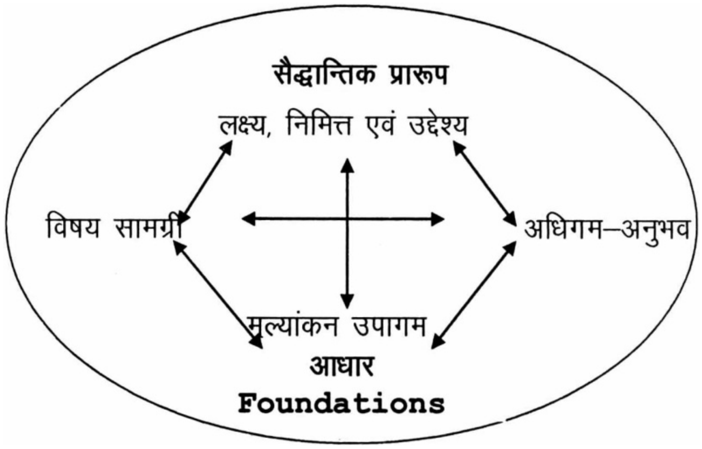

चित्र सं. 8.1 पाठ्यक्रम आकल्पन के अवयवों के मध्य अन्त: क्रिया

पाठ्यक्रम आकल्पन के विभिन्न अवयवों - लक्ष्य, निमित्त एवं उद्देश्य, विषय सामग्री, अधिगम अनुभव तथा मूल्यांकन उपागमों पर बल देने पर पाठ्यक्रम आकल्पन आकार लेता है । इन अवयवों पर यदि समान बल दिया जाये तो आकल्पन सन्तुलित होता है । तबा (Taba) के अनुसार अधिकांश पाठ्यक्रम अवयवों के ठीक परिभाषित न होने अथवा उन पर सैद्धांतिक प्रारूप के भीतर ठीक से विचार न करने के कारण असंतुलित हो जाती हैं । यह आवश्यक नहीं है कि पाठ्यक्रम निर्माता (who construct the curriculum) इन अवयवों पर बिल्कुल एक समान ही बल दें क्योंकि यह उनके दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक आधारों के प्रति उन्मुखीकरण पर बहुत हद तक निर्भर करता है । किस अवयव को कितना महत्त्व दें, यह स्पष्टत: निश्चित करना सम्भव नहीं है किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वही आकल्पन श्रेष्ठ होगा जिनमें इन अवयवों को आवश्यकतानुसार पर्याप्त महत्त्व दिया जाये ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question) ।

1. पाठ्यक्रम आकल्पन से क्या तात्पर्य है ?
2. पाठ्यक्रम आकल्पन के प्रमुख अवयव कौन-कौन से हैं?
3. पाठ्यक्रम आकल्पन के अवयवों के मध्य सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए ।

8.4 पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोत (Source of Curriculum Design)

वे सभी जो पाठ्यक्रम आकल्पन से जुड़े होते हैं उन्हें समाज एवं वैयक्तिक अधिगमकर्ता के दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करना चाहिए । जो यह करते हैं उन्हें पाठ्यक्रम के स्रोत कहा जाता है । पाठ्यक्रम आकल्पन के प्रभाव को निश्चित करने के लिए इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि ये स्रोत किस प्रकार शिक्षा को प्रभावित करते हैं? शिक्षा के लिए विचारों (ideas for education) के स्रोत क्या हैं? इस प्रश्न का जो उत्तर पाठ्यक्रम आकल्पनकर्ता द्वारा दिया जाता है वह पाठ्यक्रम आकल्पन को प्रभावित करता है, इसलिए पाठ्यक्रम आकल्पनकर्त्ताओं को लिए यह आवश्यक है कि वे अपने दार्शनिक एवं सामाजिक

उन्मुखीकरण को ठीक से पहचान ले । यदि वे दार्शनिक एवं सामाजिक प्रश्नों को नजर अंदाज करेंगे तो आकल्पन सीमित या विभ्रमित तर्क (limited or confused rationales) वाला होगा । तबा (Taba) के अनुसार सिद्धान्त एवं अभ्यास (theory and practice) के बीच जितनी दूरी (distance) होगी उतनी ही तर्कहीनता उपस्थित होगी ।

पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोत आकल्पन के सभी अवयवों के आधार होते हैं तथा इनके विनिश्चयन (determination) में महत्ती भूमिका रखते हैं । रोनाल्ड डॉल (Ronald Doll) ने पाठ्यक्रम आकल्पन के चार स्रोत विज्ञान, समाज, सनातन सत्यता (Eternal verities) एवं दैवीय इच्छा (divine will) बताये । **जॉन ड्यूवी एवं बोड (Dewey and Bode)** ने ज्ञान, समाज तथा अधिगमकर्ता को पाठ्यक्रम आकल्पन का स्रोत माना । समेकित रूप से पाठ्यक्रम आकल्पन के पाँच स्रोत माने जा सकते हैं-

(1) विज्ञान (Science)

(2) समाज (Society)

(3) सनातन सत्य (Eternal Truth)

(4) ज्ञान (Knowledge)

(5) अधिगमकर्ता (Learners)

पाठ्यक्रम आकल्पन के इन स्रोतों को हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

(1) विज्ञान एक स्रोत (Science as a source)

विज्ञान की चतुर्मुखी प्रगति ने शिक्षा के किसी भी क्षेत्र को अछूता नहीं छोड़ा है । वैज्ञानिक विधियाँ पाठ्यक्रम आकल्पन को अर्थ (meaning) प्रदान करती हैं । यह बताती हैं कि केवल उन्हीं मदों (items) को पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया जाना चाहिए जिन्हें अवलोकित (observed) और परिमाणित (quantified) किया जा सके । वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार कोई भी वस्तु अन्तिम सत्य (with a capital T) नहीं हैं । तथ्य वे वस्तुएँ है जिन्हें आनुभविक (empirically) निर्धारित किया जाता है, लेकिन इन्हें नवीन प्रदत्तों (new datas) के आधार पर पुनर्शोधित (revise) किया जा सकता हे । विज्ञान विषय केन्द्रित होता है । यह मूल्य एवं ललित कला के स्थान पर प्रश्न उपस्थित करता है तथा पाठ्यक्रम में समस्या-समाधान (problem solving) को मुख्य स्थान देने पर बल देता है । प्रक्रियात्मक ज्ञान (procedural knowledge) अथवा ज्ञान की प्रक्रिया को महत्व देते हुए पाठ्यचर्या के एक स्रोत रूप में विज्ञान वास्तविकता के साथ व्यवहार करने (dealing with reality) के लिए तार्किक प्रक्रियाओं को शुरूआत है । विषय केन्द्रित आकल्पन को इस श्रेणी में माना जा सकता है ।

(2) समाज एक स्रोत (society as a source)

समाज पाठ्यक्रम आकल्पन का एक महत्वपूर्ण स्रोत है । पाठ्यक्रम समाज की प्रतिनिधि होती है । समाज की आवश्यकताएँ पाठ्यक्रम की निर्धारक होती हैं । इसलिए इसका आकल्पन वृहद् समाज व स्थानीय समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए किया जाता है ।

समाज में व्याप्त सभी विचार (thought)एवं वास्तविकताएँ (realities) शैक्षिक प्रयासों (educational enterprise) के आधार बनते हैं । परस्पर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज ही बताता है कि कहाँ पाठ्यचर्या को संशोधित किया जाए । शिक्षा समाज के दो कार्यो की पूर्ति करती है**- प्रथम,** समाज की संस्कृति, अनुभवों आदि को आने वाली पीढ़ी को प्रदान करना, तथा **द्वितीय**. समाज की उन्नति एवं प्रगति को निश्चित करना । पाठ्यक्रम में भाषा इतिहास, समाजशास्त्र, भूगोल एवं नीतिशास्त्र आदि को स्थान मिलने का प्रमुख आधार समाज ही होता है । समाज स्वयं में निहित विचारों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शैक्षिक तत्परता को प्रतिबिम्बित करता है । समाज ही यह तय करता है कि उसके विश्वास, दृष्टिकोण एवं मूल्य आदि को पाठ्यचर्या किस सीमा तक प्रभावित करें । **बोयड बोड (Boyd Bode)** के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य समाज के किसी स्थान लिए व्यक्ति को तैयार करना नहीं है, वरन् उसे समाज में अपना स्थान बनाने के लिए सक्षम बनाना है

The purpose of education is not to fit the individuals for a place in society but to enable him to make his own place.

(3) सनातन सत्य एक स्रोत (Eternal Truth as a Source)

पाठ्यक्रम का आकल्पन एक स्थिर समाज perpetuate societyके लिए किया जाता है । हमारे सत्त सनातन अर्थात् चिन्तन, अनादि अथवा नित्य हैं । ये देश काल स्थिति से परे हैं तथा मानवीय अन्तर्क्रियाओ (human interaction) के लिए अनिवार्य हैं । अत: ये पाठ्यक्रम का एक अहम् (crucial) भाग बनते हैं । ये सनातन सत्य ही चिरस्थायी चिन्तन (pernnialist thinking)को प्रतिबिम्बित करते हैं । सनातन सत्य ही और अनुभाविक प्रमाणों (empirical data) के मध्य के **द्वंद्व** को हल करने में सहायता प्रदान करते हैं । यह स्रोत मुख्यत: पाठ्यचर्या आकल्पनकर्ता के मूल्य एवं व्यक्तिगत नैतिकता (personal morality) द्वारा प्रतिबिम्बित होता है ।

(4) ज्ञान एक स्रोत (Knowledge as a Source)

ज्ञान पाठ्यक्रम आकल्पन का एक प्रमुख स्रोत है । ज्ञान चाहे विषय में संगठित हो या किसी छोटे पुंज(cluster) के रूप में; उसकी अपनी विशिष्ट संरचना होती है व सीमा विशेष में उसके उपयोग की विधियाँ भी निश्चित होती हैं । औपचारिक विषयों में संगठित ज्ञान और समाज की आवश्यकता के द्वारा छनित (filtered) तथा अधिगम करने वाले विषय के रूप में हमारा ज्ञान पाठ्यक्रम आकल्पन का मुख्य स्रोत बनता है । मानव गतिविधियों के समस्त पहलुओं से युक्त, सदियों से संचित ज्ञान राशि (database) का उपयोग पाठ्यक्रम विकास में किया जाना चाहिए ।

ज्ञान-राशि को मुख्य रूप से विशिष्ट विषय क्षेत्र के रूप में संगठित किया जाता है- जैसे गणित एवं इतिहास । यह प्रयास अवश्य किया जाना चाहिए कि नवीन ज्ञान को पहचानने के लिए नियमित प्रयास हों तथा उनका विषयों के रूप में पुनर्व्यवस्थापन (reorganize) किया

जाए यथा- गृह अर्थशास्त्र (home economics), सूक्ष्म जीवविज्ञान (micro biology) आदि। ये नवीन विषय क्षेत्र ज्ञान के बल एवं गहनता पर केन्द्रित होने चाहिए ।

(5) अधिगमकर्ता एक स्रोत (Learner as a Source)

हम अधिगमकर्ता के बारे में जो कुछ जानते हैं, पाठ्यक्रम उसी से संचालित (derive) होती है । मनोवैज्ञानिक आधार इसमें सहायता देते हैं । संज्ञानात्मक(cognitive) क्षेत्र में हुए अनुसंधान अधिगमकर्ता के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध कराते हैं । अधिगमकर्ता की रूचियाँ, स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ, आवश्यकताएँ तथा शक्तियाँ पाठ्यक्रम आकल्पन का स्रोत होती हैं। अधिगम सिद्धान्त(learning theory) यह बताते हैं कि क्या पढाया जाये और कब । अधिगमकर्ताओं का ज्ञान विकासात्मक चिन्तन (progressivist thinking)को प्रतिबिम्बित करता है । बालक को केन्द्र में मानकर पाठ्यक्रम निर्धारण करने से ही शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति सम्भव हो सकती है । बालक का शारीरिक विकास, उसकी समस्याएँ रूचि, आवश्यकता, अभिप्रेरणा एवं योग्यता आदि आकल्पन को आधार प्रदान करती हैं । इस प्रकार विज्ञान, समाज, सनातन सत्य, ज्ञान व अधिगमकर्ता पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोत माने जाते हैं ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question,)

1. पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोतों से आप क्या समझते हैं?
2. पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोतों का उल्लेख कीजिए?

8.5 पाठ्यक्रम संरचना के सिद्धान्त (Principles of Curriculum Construction)

पाठ्यक्रम का निर्माण प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकताओं, रूचियों, योग्यताओं, विशिष्टताओं और विभिन्नताओं को ध्यान में रख कर किया जाता है । पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिससे सभी विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का विकास हो सके एवं वे अपने भावी जीवन के लिए पूर्णरूप से तैयार हो जायें । अत: पाठ्यक्रम की संरचना कुछ सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर की जाती है । ये प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

(1) उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)

पाठ्यक्रम संरचना का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है- उपयोगिता का सिद्धान्त । इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम में उन विषयों को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाये जो विद्यार्थियों के भावी जीवन के लिए उपयोगी हों । प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री टी.पी. नन के अनुसार- सामान्यत: एक आम मनुष्य यह चाहता है कि उसके बच्चे ज्ञान प्रदर्शन के लिए भले ही कुछ व्यर्थ की बातें सीख लें, परन्तु समग्र रूप से वह चाहता है कि उनको वे बातें सिखाई जायें, जो भावी जीवन के लिए उपयोगी हों ।

(2) रचनात्मक कार्य का सिद्धान्त (Principle of Creative Activity)

इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम को ऐसे अवसर देने चाहिए जिनसे विद्यार्थी में रचनात्मक कार्य करने की योग्यता विकसित कर सके । इस हेतु बालक को रचनात्मक कार्य

करने के लिए प्रोत्साहन तथा उचित निर्देशन दिया जाना चाहिए । रेमॉण्ट (Raymont) के अनुसार- "जो वर्तमान एव भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त हो, उसमें रचनात्मक विषयों के प्रति निश्चित आग्रह होना चाहिए ।"

(3) जीवन-सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Relationship with Life)

पाठ्यक्रम निर्माण के इस सिद्धान्त के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में उन विषयों को आवश्यक स्थान दिया जाये, जिनका वास्तविक जीवन से सम्बन्ध हो । ऐसे विषयों के अध्ययन से विद्यार्थी जीवन में प्रवेश करने के बाद सफलता अर्जित करने में सक्षम होंगे ।

(4) **विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त (Principle of Continual Process of Evolution)** कोई भी पाठ्यक्रम हमेशा के लिए संरचित नहीं किया जाता है । देश की वैज्ञानिक प्रगति, नवीन व्यावसायिक अवसर, देशों के विस्तृत अन्तर्सम्बन्ध, प्रगतिशील तथा आकांक्षाएँ, शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार को नवीन ज्ञान, कुशलता, और दृष्टिकोण के अनुरूप बनाने की आवश्यकता प्रकट करते हैं पाठ्यचर्या इसलिए विकास की सत्त प्रक्रिया के अनुरूप पाठ्यक्रम में नवीनता आनी चाहिए ।

(5) **जीवन सम्बन्धी सब क्रियाओं का समावेश (Principle of Inclusion of Life-Actitivties)** इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम मे उन सब क्रियाओं का समावेश होना चाहिए जो प्रत्येक बालक के स्वास्थ्य, विचार. ज्ञान, कुशलता, मूल्यांकन, अभिव्यक्ति चरित्र और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सम्बन्धों का विकास करें । एक लोकतांत्रिक देश के लिए पाठ्यक्रम ऐसी हो कि बालक आरम्भ से ही लोकतन्त्रीय जीवन शैली अपनाना आरम्भ कर दे । इस हेतु ऐसी क्रियाओं को महत्त्व दिया जाना चाहिए, जिनसे लोकतंत्रीय दृष्टिकोण और धारणा पुष्ट हो ।

(6) **विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Interrelation of Subject)** यह सिद्धान्त पाठ्यक्रम में सम्मिलित विषयों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध की मांग करता है । अर्थात् पाठ्यक्रम को प्रभावयुक्त बनाने के लिए इस में सम्मिलित सभी विषयों में यथार्थपरक (real) सम्बन्ध होना चाहिए । यदि ये विषय परस्पर असम्बन्धित होंगे तो इनका जीवन से सम्बन्ध विछिन्न हो जाएगा ।

(7) सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त(Principle of Relationship with Community Life)

इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम को बालक के जीवन की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं की व्यवस्था करनी चाहिए ताकि वे इन क्रियाओं के सम्पर्क में आकर सामुदायिक जीवन के लिए आवश्यक अनुभवों का अर्जन कर पाये । माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार-पाठ्यक्रम का सामुदायिक जीवन से सजीव और आंगिक सम्बन्ध होना चाहिए । पाठ्यक्रम को सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित बनाने के लिए उसमें समाजोपयोगी उत्पादक कार्य, स्थानीय आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को सम्मिलित किया चाहिए ।

(8) विविधता और लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Variety and Elasticity)

यह सिद्धान्त बालकों की रूचियों, विभिन्नताओं, दृष्टिकोणों, मनोवृत्तियों और आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम बनाये जाने पर बल देता है । इन विशिष्टताओं के साथ ठीक-ठीक सुमेलन के लिए पाठ्यक्रम में विविधता एवं लचीलापन आवश्यक है । माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार- पाठ्यक्रम में विविधता एवं लचीलापन होना चाहिए जिससे वैयक्तिक विभिन्नताओं एवं आवश्यकताओं एवं रूचियों का अनुकूलन किया जा सके ।

(9) उत्तम आचरणों के आदर्शो की प्राप्ति का सिद्धान्त (Principle of Achievement of wholesome Behaviour Pattern)

इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शो की प्राप्ति हेतु शिक्षित किया जाये । जिससे उनमें नि:स्वार्थता एवं समष्टिवादी व्यवहार का विकास हो । सुखी एवं शान्तिपूर्ण जीवन के लिए अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों का उपयोग समाज के हित में करना अपेक्षित होता है । क्रो एवं क्रो के अनुसार-पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शो की प्राप्ति में सहयोग दे ।

(10) अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त (Principle of the Totality of Experience)

अनुभवों कीं पूर्णता के सिद्धान्त पर बल देते हुए माध्यमिक शिक्षा आयोग ने कहा-यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि सबसे आधुनिक शैक्षिक विचार धारा के अनुसार पाठ्यक्रम का अर्थ सैद्धान्तिक विषयों से नहीं लिया जाता है, वरन् इसमें अनुभवों की सम्पूर्णता निहित होती है । शिक्षा की आधुनिक विचारधारा केवल ज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष पर ही बल नहीं देती है बल्कि उन समस्त अनुभवों पर बल देती है जो जीवन की श्रेष्ठतम पूर्णता के लिए आवश्यक हैं।

(11) खेल व कार्य की गतिविधियों के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त (Principle of Inter-Relation of Play and Work Activities)

क्रो व क्रो के अनुसार जो व्यक्ति सीखने की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं, उनका उद्देश्य यह होना चाहिए कि वे ज्ञानात्मक क्रियाओं की ऐसी योजना बनायें, जिसमें खेल के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण हो । पाठ्यक्रम की संरचना करते समय खेल व कार्य की गतिविधियों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध होना चाहिए । खेल व कार्य आधारित गति विधियों में अन्तर्सम्बन्ध नहीं होने पर गतिविधियाँ पूरक न होकर अलग-अलग मानी जाती हैं, जिससे एक का होना दूसरी में बाधा माना जाने लगता है । इसलिए पाठ्यचर्या निर्माताओं को यह चाहिए कि वे खेल को कार्य तथा कार्य से खेल को जोड़ने का प्रयास करें ।

(12) अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Principle of Training for Leisure)

पाठ्यचर्या संरचना के इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यक्रम को बालकों को कार्य एवं अवकाश दोनों के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए । माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार पाठ्यचर्या इस प्रकार नियोजित की जानी चाहिए कि वह छात्रों को न केवल कार्य के लिए वरन् अवकाश का सदुपयोग करने के लिए भी प्रशिक्षित करे । पाठ्यचर्या की संरचना करने वालों को खेलकूद, सामाजिक, सौंदर्यात्मक. कलात्मक, रचनात्मक आदि क्रियाओं पाठ्यचर्या में सम्मिलित करना चाहिए ।

(13) बाल केन्द्रीयता का सिद्धान्त (Principle of Child Centeredness)

इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्यचर्या बालक की परिस्थितियों तथा उसकी वर्तमान आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिए । इस प्रकार की पाठ्यचर्या में बालकों की आयु तथा उनके विकास- प्रकिया के स्तर को ध्यान में रखा जाता है । सार्थक क्रियाओं की सहायता से ही बालकों को प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किये जाने चाहिए ।

(14) समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination)

पाठ्यचर्या संरचना के इस सिद्धान्त के अनुसार विद्यार्थी केवल कक्षा में ही नहीं सीखते हैं, वे कक्षा से बाहर भी बहुत कुछ सीख सकते हैं तथा सीखते भी हैं । अत: विद्यार्थी के कक्षा के भीतर व बाहर के अधिगम में समन्वय होना चाहिए । विद्यार्थी को खेल के मैदान, पुस्तकालय प्रयोगशाला आदि में भाग लेने के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए, ताकि पुस्तकीय ज्ञान और कक्षा से बाहर के ज्ञान में समन्वय हो सके ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question,)

1. पाठ्यचर्या का निर्माण करते समय किन सिद्धांतों का पालन करना चाहिए?

8.6 पाठ्यचर्या कार्यान्वयन के लिए पाठ्यक्रम संगठन की विधियाँ (Methods of Organization of Syllabus in Formulating Curriculum Operations)

पाठ्यचर्या का आशय केवल उन विषयों से नही है, जो विद्यालय में परम्परागत रूप से पढ़ाए जाते हैं, वरन् इसमें अनुभवों की सार्थकता भी सम्मिलित होती है, जिनको कि छात्र विद्यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वर्कशॉप और खेल के मैदान तथा शिक्षकों और साथी छात्रों के अगणित अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है । इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन उसकी पाठ्यचर्या बन जाती है । वह छात्रा के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर सकती है और उनके सन्तुलित विकास में सहायता देती है ।

पाठ्यचर्या का निर्धारण करने के पश्चात् इसके आधार पर पाठ्यक्रम का संगठन किया जाता है । पाठ्यचर्या जहाँ विद्यालय अथवा शैक्षिक प्रणाली में आत्मीकरण किये जाने वाले लक्ष्यों और विषयवस्तु का पूर्ण योग है, वहीं पाठ्यक्रम किसी विशिष्ट विषय सामग्री का द्योतक है । इस प्रकार पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम को आधार प्रदान करती है । पाठ्यचर्या किसी शैक्षिक कार्यक्रम का दर्शन बताती है, उद्देश्यों और विषयवस्तु का विनिश्चयीकरण करती हैं, क्रियान्वयन की बाधाओं की पहचान, आकलन एवं मूल्यांकन की रूप विधि (Criteria) के संयोजन को रूप प्रदान करती है । इसमें बहुत सी सामग्री का संग्रह होता है, जिसमें से शिक्षक अपने विद्यार्थियों की आवश्यकता के अनुसार उपयुक्त का चयन कर सकते हैं । दूसरी ओर पाठ्यक्रम परम्परागत रूप से किसी विशिष्ट विषय की विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण करता है और बताता है कि कैसे विषयवस्तु को स्तरों में बाँटा और क्रमबद्ध किया जाएगा । इस प्रकार पाठ्यक्रम किसी कार्यक्रम (course) में सम्मिलित प्रकरणों की रूपरेखा या सारांश होता है, जिसे सामान्यत: परीक्षा बोर्ड या शिक्षण करने वाले शिक्षक द्वारा निर्मित किया जाता है तथा यह विद्यार्थी एवं अनुदेशक के मध्य परस्पर समझ का आधार बनता है । प्राय: विद्यार्थी को अपनी पहली कक्षा में ही इससे

परिचित करा दिया जाता है । इसमें पाठ्यक्रम से सम्बन्धित विशिष्ट सूचनाएँ जैसे कब क्या होना है, पाठ्यसामग्री में क्या सम्मिलित किया जाएगा, परीक्षा कब होगी, दिया गया कार्य (assignments) कब तक प्रस्तुत करना होगा, अंकन प्रणाली क्या होगी, कक्षा के नियम क्या होंगे आदि का समावेश होता है । पाठ्यचर्या का कार्यान्वयन (curriculum operation) के लिए पाठ्यक्रम का उपयुक्त संगठन करना अनिवार्य हो जाता है क्योंकि यदि पाठ्यक्रम का ठीक से संगठन नहीं किया जाएगा तो पाठ्यचर्या के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति करना सम्भव नहीं हो पाएगा । अत: पाठ्यक्रम संगठन की विधियों की उचित जानकारी आवश्यक है, ताकि पाठ्यचर्या के अनुकूल पाठ्यक्रम की संरचना की जा सके । पाठ्यक्रम संगठन की दो मुख्य विधियाँ होती हैं-

(1) समतल विधि (Horizontal Method)

(2) लम्बवत विधि (Vertical Method)

(1) समतल विधि

समतल संगठन पाठ्यक्रम निर्माता को विषयवस्तु के क्षेत्र (scope) एवं समन्वय (integration) के साथ सम्बद्ध (engage) करता है । इसमें पाठ्यचर्या तत्त्वों को एक के साथ एक (side-by-side) व्यवस्थित किया जाता है । उदाहरण के लिए इतिहास, मानवशास्त्र और समाज-शास्त्र की विषय वस्तु को सामाजिक अध्ययन के लिए संगठित किया जाना तथा गणित जैसे किसी विषय की विषयवस्तु को विज्ञान जैसे विषय की विषयवस्तु से सम्बन्धित करना ।

(2) लम्बवत विधि

लम्बवत संगठन में सम्प्रत्ययों की क्रमबद्धता (sequence) एवं सततता (continuity) पर बल दिया जाता है । इस संगठन में पाठ्यचर्या तत्वों का अनुदैर्ध्य स्थापन (longitudinal placement) किया जाता है । उदाहरण के लिए-सामाजिक-अध्ययन विषय में पहली कक्षा में परिवार और दूसरी कक्षा में समुदाय को लिया जाना । सामान्यत: पाठ्यचर्या का संगठन करते समय एक पाठ्य बिन्दु को निम्नतम कक्षा में प्रस्तुत किया जाता है । लम्बवत् संगठन का अन्य रूप में यदि उसी को अगली कक्षा में सम्मिलित किया जाना आवश्यक हो तो पाठ्यवस्तु को अपेक्षाकृत अधिक विस्तार व गहनता से प्रस्तुत किया जाता है । उदाहरण के लिए गणित मे समुच्चय (set) के सम्प्रत्यय को एक कक्षा में प्रस्तुत (introduce) किया जाता है और पुनर्प्रस्तुतीकरण अथवा उद्धरण आगामी कक्षा के पाठ्यक्रम में लिया जाता है । यह संगठन ब्रूनर के सुगठित पाठ्यचर्या (spiral curriculum) को व्यक्त करता है ।

पाठ्यक्रम संगठन की उपर्युक्त दोनों विधियों में चार प्रमुख आयाम (dimension)-विषयवस्तु क्षेत्र, एकीकरण, क्रमबद्धता व सततता (continuity) सम्मिलित होते हैं तथा इनमें संयोजन व संतुलन आवश्यक होता है । इस प्रकार पाठ्यक्रम संगठन के पाँच प्रमुख आयाम- क्षेत्र, एकीकरण, क्रमबद्धता व सततता तथा संयोजन व संतुलन होते हैं जिन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है-

(क) क्षेत्र (Scope)

जे. ग्लेन सेलर (J.Glen Selor)क्षेत्र को इस प्रकार परिभाषित किया है. क्षेत्र से तात्पर्य विस्तार, विविधतापूर्ण एवं विभिन्न प्रकार के अनुभवों से है, जिन्हें विद्यार्थियों को विद्यालय कार्यक्रम के द्वारा जैसे-जैसे वे विकास करते है, दिया जाता है । क्षेत्र पाठ्यचर्या अनुभवों का चयन करने के लिए अक्षांश सम्बन्धी धुरी (latitudinal axis) को व्यक्त करता है। क्षेत्र का निर्धारण करते समय आकल्पनकर्ता सामान्यतया निम्नांकित प्रश्नों को सामने रखता है-किस विषयवस्तु को पाठ्यचर्या में सम्मिलित किया जाये? किन गतिविधियों को सम्मिलित किया जाये? इन पाठ्यचर्या तत्वों की सीमा एवं व्यवस्था क्या होगी? पाठ्यचर्या का आकल्पन करते समय आकल्पनकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे सम्मिलित की जाने वाली विषयवस्तु के विस्तार (breadth) व गहनता (depth) की जानकारी हो ।

(ख) एकीकरण (Integration)

पाठ्यक्रम के विशिष्ट स्तर पर विद्यार्थियों को बड़ी मात्रा (myriad) में अधिगम करना होता है । पाठ्यक्रम आकल्पनकर्ता के समक्ष एक बडी चुनौती यह होती है कि वह कैसे विद्यार्थी अधिगम को एकीकृत करें । आदर्शरूप में यह माना जाता है कि अधिगम उस समय अधिक प्रभावी होता है जब एक विषय की विषय वस्तु का सम्बन्ध दूसरे विषय को विषयवस्तु से सार्थक ढंग से जोड़ा जाए । एकीकरण विविध विषयवस्तु बिन्दुओं शीर्षकों (various content topics and themes) के बीच समतल सम्बन्ध स्थापन पर बल देता है । यह विषयवस्तु के साथ अधिगम अनुभवों और गतिविधियों के सम्बन्ध स्थापन का एक ऐसा प्रयास है, जिससे विद्यार्थी आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव हो सके । विचारों एवं सम्प्रत्ययों के बीच सम्बन्ध दिखाने के लिए एक धागे में पिरोया जाता है । एकीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है यथा-दो विषयों को मिलाते हुए, एक विषय की विषयवस्तु से उसी विषय की विषयवस्तु का सम्बन्ध स्थापित करने हुए तथा अलग-अलग विषयों की विषयवस्तुओं के मध्य सम्बंध स्थापित करते हुए ।

(ग) क्रमबद्धता (Sequence)

पाठ्यक्रम में क्रमबद्धता लाने के क्रम में आकल्पनकर्ताओं के समक्ष यह चुनौती होती है कि पाठ्यचर्या तत्वों के साथ प्रभावी ढंग से व्यवहार किया जाय ताकि पाठ्यचर्या से समेकित एवं नियमित अधिगम सम्भव हो सके । क्रमबद्धता के लिए विषयवस्तु का संगठन लम्बवत् क्रम में किया जाता है ।

पाठ्यक्रम को क्रमबद्धता प्रदान करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों, विषयवस्तु की संरचना तथा विषयवस्तु में उपस्थित तर्क का ध्यान रखा जाता है । स्मिथ,.स्टेनली एवं शोर्स (Smith,Stanler and shores) ने पाठ्यचर्या में क्रमबद्धता लाने के लिए चार अधिगम सिद्धान्त प्रस्तुत किये-

(1) सरल से जटिल अधिगम (Simple to complex learning)

(2) पूर्व आकांक्षित अधिगम (Prerequisite learning)

(3) पूर्ण से अंश अधिगम (Whole to part learning)

(4) कालानुसार अधिगम (Chronological learning)

(1) ***सरल से जटिल अधिगम:*** सरल से जटिल अधिगम यह संकेत देता है कि पाठ्यवस्तु को सरल अप्रधान तत्वों से जटिल मुख्य तत्वों की ओर के क्रम में संगठित किया जाना चाहिए। सरल तत्वों से जटिल तत्वों को इस प्रकार रखा जाता है कि उनके मध्य का सम्बन्ध भलीभांति प्रदर्शित हो । यह सिद्धान्त इस विचार पर बल देता है कि अपेक्षित अधिगम उस समय होता है जब अधिगमकर्ता के समक्ष विषय वस्तु आसान और प्राय: मूर्त रूप में प्रस्तुत की जाये ।

(2) ***पूर्ण आकांक्षित अधिगम :*** इसे दूसरे शब्दों में अंश से पूर्ण (part to whole) अधिगम भी कहा जाता है । यह इस अवधारणा पर कार्य करता है कि सीखने की प्रकिया में बालक अपने पूर्व अर्जित ज्ञान को नवीन से जोड़ना चाहता है । जो सूचना विद्यार्थी के पास हो उसका विस्तार सुगमता से कर सकता है । उदाहरणार्थ, यदि बालक को विविध फूलों तथा पत्तियों के बारे में ज्ञान कराना हो तो पहले उनके आकार तथा रंगों के विषय में जानकारी करानी होगी, फिर भिन्न-भिन्न फूलों तथा उनके प्रयोगों के बारे में बताना होगा । अत: पाठ्यचर्या का क्रियान्वयन करने के लिए पाठ्यक्रम को अंश से पूर्ण की ओर संगठित करते हुए विद्यार्थियों के पूर्व ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है ।

(3) ***पूर्ण से अंश अधिगम:*** पूर्ण अंश अधिगम गैस्टाल्टवादी शैक्षिक मनोवैज्ञानिकों से आधार प्राप्त करता है । इस मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया पूर्ण से अंश की ओर होती है अर्थात् अधिगमकर्ता पहले पूर्ण (whole) का प्रत्यक्षीकरण करता है इसके बाद अंश का । पाठ्य- पुस्तकों के पढ़ने एवं अधिगम करने आदि में प्रत्यक्षीकरण का यह सिद्धान्त लागू होता है । इसलिए पाठ्यचर्या आकल्पनकर्त्ताओं को पाठ्यक्रम को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिए, जिससे पहले पूर्ण रूप का निर्माण हो और तत्पश्चात् अंशों parts को प्रस्तुत किया जाये । उदाहरण के लिए- भाषा में पहले वाक्य का प्रस्तुतीकरण हो तथा उसके बाद वाक्यांश, शब्द, अक्षर तथा वर्तनी आदि का । भूगोल में पहले देश तथा बाद में विभिन्न प्रदेश, प्रदेशों के भू-भाग आदि का प्रस्तुतीकरण हो ।

(4) ***कालक्रमानुसार अधिगम :*** यह पाठ्यक्रम संगठन का एक पसंदीदा (favored) रूप है । इसका उपयोग इतिहास, राजनीति विज्ञान एवं विश्व की घटनाओं के प्रस्तुतीकरण के लिए किया जाता है । पाठ्यचर्याशास्त्री (curricularists) इस संगठन को विश्व-सम्बन्धी (world related) भी कहते हैं, क्योंकि विषयवस्तु का संगठन उसी क्रम में किया जाता है, जिस क्रम में वह सामने आयी । इनके अतिरिक्त पोस्नर एवं स्ट्राइक (Posner and Strike) ने क्रमबद्धता निर्धारण की चार अन्य विधियाँ बतायी-

(1) सम्प्रत्यय सम्बन्धी (Concept related)

(2) पृच्छा सम्बन्धी (Inquiry related)

(3) अधिगम सम्बन्धी (Learning- related) एवं

(4) उपयोग सम्बंधी (Utilization-related

(1) ***सम्प्रत्यय सम्बन्धी:*** यह ज्ञान की संरचना पर बल देती है । इसमें वास्तविक जगत की बजाय सम्प्रत्ययों के साथ सम्प्रत्ययों के मध्य अन्तर्सम्बधों पर बल दिया जाता है । गणित एवं तर्क आधारित विषयों में इस पद्धति का अधिक उपयोग किया जाता है । ।

(2) ***पृच्छा सम्बन्धी:*** पृच्छा सम्बन्धी क्रम निर्धारण क्षेत्र में विद्वानों द्वारा अपनायी जाने वाली क्रियाविधियों की प्रकृति से निकला है । वे जिस पद क्रम ;(steps) में अपनी पृच्छा में सम्प्रत्ययों एवं सिद्वान्तों का उपयोग करेंगे, विभिन्न बिन्दुओं को भी उसी क्रम में व्यवस्थित किया जाता है ।

(3) ***अधियमकर्त्ता सम्बन्धी:*** यह विधि अधिगमकर्ता कैसे अधिगम अथवा विषयवस्तु और अन्य गतिविधियों का अनुभव करता है, उसी क्रम में पाठ्यक्रम को व्यवस्थित करने पर बल देती है ।

(4) ***उपयोग सम्बन्धी:*** इस विधि में पाठ्यवस्तु का व्यवस्थापन व्यक्ति कैसे ज्ञान का उपयोग करेगा अथवा गतिविधि में वास्तविक रूप से सम्मिलित होगा उसी रूप में किया जाता है । तकनीकी एवं कौशल आधारित विषयों में इस पद्धति का बहुत उपयोग किया जाता है ।

(घ) सततता (Continiuty)

सततता लम्बवत फेरबदल (vertical manipulation) अथवा पाठ्यक्रम तत्वों के दोहराने के साथ व्यवहार करती है । टेलर के अनुसार पठन कौशल एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, इसके लिए यह आवश्यक है कि इन कौशलों के अभ्यास एवं विकास के लिए नियमित अवसर एवं स्थितियाँ मिलती रहे । इसका आशय यह है कि पठन-कौशल को नियमित क्रिया (continuing operation) के रूप में लिया जाना चाहिए । सततता पाठ्यचर्या के निश्चित मुख्य विचार अथवा कौशलों का पुनर्प्रकटीकरण (reappearance) होता है, जिनके विषय में शिक्षाविद् यह मानते हैं कि विद्यार्थियों को पाठ्यचर्या के विकास के साथ-साथ ज्ञान की गहनता एवं विस्तार तक पहुँचना चाहिए ।

ब्रूनर ने अपनी चक्राकार पाठ्यक्रम (spiral curriculum) में सततता को मुख्य रूप में प्रदर्शित किया । ब्रूनर के अनुसार पाठ्यक्रम को प्रत्येक विषय में निहित विचारों की संख्या के मध्य पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्धों के अनुसार व्यवस्थित करना चाहिए । विद्यार्थी इन मुख्य विचारों एवं संरचनाओं को ग्रहण कर लें । इसके लिए इन्हें गहनता एवं विस्तार के क्रम में जैसे-जैसे विद्यार्थी एक से दूसरी कक्षा में प्रवेश करता है, उसी रूप में विकसित एवं पुनर्विकसित करना चाहिए । चक्राकार पाठ्यक्रम का सम्प्रत्यय न केवल ज्ञान के लम्बवत एकीकरण से बल्कि समलम्ब एकीकरण अथवा बढ़ते विस्तार से भी सम्बन्धित होता है । जब आकल्पनकर्ता किसी विषय अथवा विषय क्षेत्र में शीर्षकों (topics) के मध्य संयोजन (link) में सुधार करता है, उस समय उसके द्वारा पाठ्यचर्या का लम्बवत् संगठन किया जाता है, किन्तु वह पाठ्यचर्या के तत्वों का संगठन करते समय विभिन्न तत्त्वों, विषयों, परस्पर अन्तर्सम्बन्धों पर बल देता है, तो उस समय समतल संगठन का उपयोग किया जाता है । पाठ्यक्रम का संगठन चाहे समतल हो या लम्बवत् दोनों ही प्रकार के संगठनों में संयोजन की उत्कृष्टता अपेक्षित होती है ।

(ङ) संयोजन एवं संतुलन (Co-ordination and balance)

संयोजन एवं संतुलन पाठ्यक्रम के विविध पक्षों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध को व्यक्त करता है, चाहे वह सम्बन्ध समतल हो या लम्बवत । लम्बवत संयोजन पाठों, शीर्षकों एवं पाठ्यवस्तु से पूर्ण कार्यक्रम को संगठित करने के बाद स्थापित होने वाले सम्बन्धों को व्यक्त करता है । जबकि समतल संयोजन पाठों, शीर्षकों एवं पाठ्यवस्तु में उपस्थित नियमित साहचर्य को व्यक्त करता है । पाठ्यक्रम का आकल्पन करते समय आकल्पनकर्ता के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह होता है कि वह आकल्पन के प्रत्येक पक्ष को उपयुक्त महत्त्व (appropriate weight age) दे, ताकि कहीं भी असंतुलन न पनपे । एक सन्तुलित आकल्पन उसे माना जा सकता है जिसमें विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत, सामाजिक एवं बौद्धिक लक्ष्यों के अनुकूल रीति से ज्ञान का स्वामित्व, आत्मीकरण एवं उपयोग कर सके क्योंकि पाठ्यचर्या को विभिन्न रूप सन्दर्भ (different frames of reference), विषय सामग्री (subject matter) विषय (discipline) विद्यार्थी रूचियाँ (student interests) व विद्यार्थी अनुभवों (student-experience) के रूप में देखा जा सकता है । यद्यपि पाठ्यक्रम के संतुलित तत्व विविध रूप संदर्भ में विविध आकार एवं आयाम रखेंगे तथापि पाठ्यक्रम को अवश्य सन्तुलित किया चाहिए । जॉन गुडलेड ;(John Goodlad)) ने पाठ्यक्रम को विषयसामग्री एवं अधिगमकर्ता के सन्दर्भ संतुलित करने पर बल दिया । यह सम्भव है कि पाठ्यक्रम को पूर्ण रूप से सन्तुलित करना साध्य न हो पाये, फिर भी एक कुशल आकल्पनकर्ता को पाठ्यक्रम के विभिन्न तत्वों के मध्य उपयुक्त संतुलन स्थापित करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रतिनिधि पाठ्यचर्या आकल्पन (Representative Curriculum Design)

पाठ्यचर्या के तत्त्वों को अनेक प्रकार से संगठित किया जा सकता है, इन्हें मुख्यत: तीन मूलभूत आकल्पनों का संवर्धन या एकीकरण कहा जा सकता है, यथा-

(1) विषय-केन्द्रित आकल्पन ;(Subject-centered design)

(2) अधिगम-केन्द्रित आकल्पन ;(Learner-centered design)

(3) समस्या केन्द्रित आकल्पन ;(Problem-centered design)

(1) **विषय केन्द्रित आकल्पन:** विषय-केन्द्रित आकल्पन में विषय आकल्पन (subject design) विषय क्षेत्र आकल्पन (discipline design) वृहद् क्षेत्र आकल्पन (broad field design) और सह सम्बन्ध आकल्पन (correlation designs) आते हैं । यह सबसे लोकप्रिय आकल्पन है, क्योंकि इसमें ज्ञान एवं विषयवस्तु को पाठ्यचर्या का अभिन्न अंग (integral parts) माना जाता है ।

(2) **अधिगम केन्द्रित आकल्पन:** अधिगम केन्द्रित आकल्पन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप अधिगम अनुभवों के संगठन पर बल देता है । इसमें विद्यार्थी केन्द्रित आकल्पन (child centered design) अनुभव आकल्पन (experience design) एवं मानवीय आकल्पन (humanistic design) आते हैं । इस तरह के आकल्पन का केन्द्र अधिगमकर्ता अनुभव एवं मानव विकास क्रम होता है ।

(3) **समस्या केन्द्रित आकल्पन:** समस्या-केन्द्रित आकल्पन के अन्तर्गत जीवन स्थितियों से सम्बन्धित मुख्य आकल्पन (core design) और सामाजिक-समस्याओं और पुनर्संरचनावादी (re-constructivist) आकल्पन को सम्मिलित किया जाता है । इनका मुख्य ध्येय किसी समस्या का समाधान करना होता है ।

8.7 सारांश (Summary)

उपर्युक्त इकाई में हमने पाठ्यक्रम आकल्पन का तात्पर्य, पाठ्यचर्या आकल्पन के अवयवों, लक्ष्य, निमित्त एवं उद्देश्य; विषय-सामग्री; अधिगम-अनुभव व मूल्यांकन-उपागम, पाठ्यचर्या-आकल्पन के स्रोतों-विज्ञान, समाज, सनातन सत्य, ज्ञान व अधिगमकर्ता, पाठ्यचर्या आकल्पन सिद्धान्तों-उपयोगिता का सिद्धान्त, रचनात्मक कार्य का सिद्धान्त, जीवन-सम्बन्ध का सिद्धान्त, विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त जीवन सम्बन्धी सब क्रियाओं का सिद्धान्त, समावेश विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध का सिद्धान्त, सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध का सिद्धान्त, विविधता और लचीलेपन का सिद्धान्त, उत्तम आचरणों के आदर्शो की प्राप्ति का सिद्धान्त, अनुभवों की पूर्णता का सिद्धान्त, खेल व कार्य की गतिविधियों के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त, अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त, बाल केन्द्रितता का सिद्धान्त और समन्वय के पर विस्तार से विचार किया । इसके साथ ही पाठ्यचर्या कार्यान्वयन हेतु पाठ्यक्रम का संगठन किस प्रकार किया जाता है इसकी प्रमुख विधियों-समतल तथा लम्बवत विधियों एवं इन विधियों से सम्बन्धित विविध आयामों की जानकारी प्राप्त की तथा प्रतिनिधि पाठ्यचर्या आकल्पनों-विषय- केन्द्रित आकल्पन, अधिगम-केन्द्रित आकल्पन एवं समस्या केन्द्रित आकल्पन का परिचय प्राप्त किया ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evalution Question)

1. पाठ्यक्रम आकल्पन से आप क्या समझते हैं?
2. पाठ्यक्रम आकल्पन अवयवों पर प्रकाश डालिए ।
3. पाठ्यक्रम आकल्पन के स्रोतों का वर्णन कीजिए
4. पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए ।
5. पाठ्यक्रम कार्यान्वयन के क्रम में पाठ्यक्रम संगठन की प्रमुख विधियों की चर्चा कीजिए।
6. पाठ्यक्रम संगठन की विधियों से सम्बंधित आयामों का विवेचन कीजिए ।

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ (References)

1 **Giles,H.H and S.P.Mccutchen;** Exploring the Curriculum,Telegraph Books.

2 **Glenys G.Unruh and Adolph Unruh;** Curriculum Development: Problems, Process, Berkeley, Calif; Mclutehan, 1948.

3 **John D Mc Neil, Curriculum;** A Comprehensive Introduction, Zeroed, Boston: Little, Brown, 1985.

4 **King, Arthur R.and John A.Brownell;** The Curriculum and The Disciplines of Knowledge: A Theory of Curriculum, Practice, John Wiley Sourinc.Network, 1966.

5 **Macdonald, James B.and fathers (Eds):** Strategies of Curriculum Development; Charles E. Merrill Books, inc, Columbus,Ohio,1965

6 **Michael fullan and Alan Pamphlet;** Research on Curriculum and Instruction Implantation, Review of Educational Research, winter 1977, 391-392.

7 **Prasad, Janardan and Vijay kumari kaushik;** Advanced Curriculum Construction, Kanishka Publishers, Distributors, New Delhi, 1997.

8 **Ronald C.Doll: Curriculum Improvement:** Decision milking and Process, Boston: Allyn and Bacon, 1986.

9 **Rao, V.K.;** Principles of Curriculum A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi 2005.

10 **Sharma, Ram Chandra;** Modern Methods of Curriculum Organization, Books Enclave, Jaipur, 2002.

11 **त्यागी,एस.पी. एवं पी.डी.पाठक:** शिक्षा के सामान्य सिद्धांत,विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा.

इकाई 9

पाठ्यक्रम अभिकल्प - प्रकार एवं वर्गीकरण
(Curriculum Design : Categories and Type)

इकाई की रूपरेखा (Structure of the Unit)

9.0 उद्देश्य (Objectives)

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

9.2 पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्त्रोत एवं आयाम (Source and Dimensions of Curriculum Design)

9.3 पाठ्यक्रम अभिकल्पन का वर्गीकरण (Classification of Curriculum Design)

9.4 विषय केन्द्रित (Subject Centred) तथा विस्तृत क्षेत्र (Broad Field) पाठ्यक्रम अभिकल्प

9.5 मूल पाठ्यक्रम (Core Curriculum Design) एवं गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प (Activity Based Curriculum Design)

9.6 पाठ्यक्रम अभिकल्प के प्रकार के सापेक्ष उनके गुण एवं सीमाएं (Characteristic and Curriculum Design)

9.7 एक संतुलित पाठ्यक्रम अभिकल्प का सम्प्रत्यय (Concept of a Balanced Curriculum Design)

9.8 सारांश (Summary)

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

9.0 उद्देश्य(Objectives)

इस इकाई का अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्यक्रम अभिकल्प का अर्थ बता सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम अभिकल्प के जिम्मेदार घटकों तथा स्त्रोतों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम अभिकल्प के प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे ।
- मूल पाठ्यक्रम अभिकल्प एवं गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प की विषेशताओं एवं सीमाओं के आधार पर उनमें अन्तर बता सकेंगे ।
- विषय केन्द्रित तथा विस्तृत क्षेत्र पाठ्यक्रम अभिकल्प की विषेशताओं तथा सीमाओं के आधार पर उनमें अन्तर बता सकेंगे ।
- संतुलित पाठ्यक्रम अभिकल्प के सम्प्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे ।

9.1 प्रस्तावना (Introduction)

पाठ्यक्रम के अभिकल्पन (designing) का सम्प्रत्यय पाठ्यक्रम के निर्माण के तरीकों की ओर ध्यान दिलाता है, यह विशेषतया पाठ्यक्रम योजना के विभिन्न भागों की वास्तविक

व्यवस्था की ओर संकेत करता है । इस इकाई में पद 'पाठ्यक्रम अभिकल्प' (curriculum design) या जिसे कभी कभी 'पाठ्यक्रम संगठन' (Curriculum Organisation) भी कहा जा सकता है, से आशय पाठ्यक्रम के तत्वों की उस व्यवस्था से है जो उसे एक पूर्ण रूप प्रदान करती है । पाठ्यक्रम के तत्वों की व्यवस्था या पाठ्यक्रम अभिकल्प का चयन वास्तव में पाठ्यक्रम निर्माता के दर्शन एवं पाठ्यक्रम उपागम (curriculum approach) भी प्रभावित होती है । किसी पाठ्यक्रम अभिकल्प की संरचना या व्यवस्था के भाग जिन्हें कभी-कभी घटक या तत्व भी कहा जाता है, चार है (1) लक्ष्य, उद्देश्य (2) विषयवस्तु (3) अधिगम अनुभव तथा (4) मूल्यांकन उपागम । इन घटकों की प्रकृति तथा जिस तरीके से पाठ्यचर्या योजनाओं में इन्हें संगठित या व्यवस्थित किया जाता है । पाठ्यक्रम के अभिकल्प या रूप रेखा को निरूपित करती है ।

अधिकतर पाठ्यक्रम योजनाओ में इन चारों आवश्यक तत्वों को सम्मिलित किया जाता है, परन्तु अधिकतर इनमें से प्रत्येक को समान महत्व नहीं दिया जाता है । यह देखने में आया है कि विषय-वस्तु को प्रारम्भिक महत्व दिया जाता है । कुछ पाठ्यक्रम योजनाओं में उद्धेश्यों तथा मूल्यांकन उपागमों को भी महत्व दिया जाता है तो कुछ में अधिगम गतिविधियों को भी । हालांकि ये चारों एक दूसरे से संबंधित हैं, इनके संबंध को एच. गाइल्स ने निम्न चित्र से दर्शाया है-

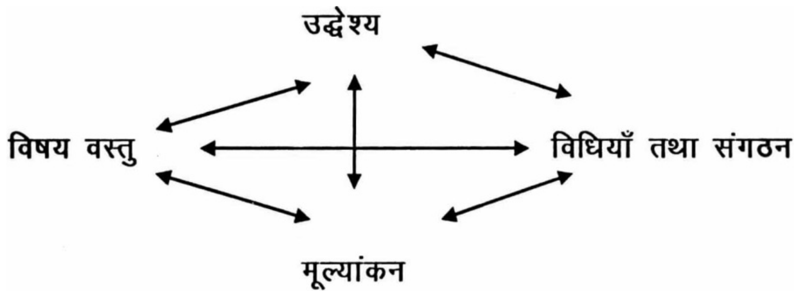

चित्र: 1 पाठ्यक्रम अभिकल्प के घटक

Source H.H.Giles,S.P. McCutchen and A.N.Zechiel(1942):Exploring the Curriculum ,Harper,Newyork,p.2.

प्रत्येक पाठ्यक्रम योजना की डिजाइन के चारों घटक पाठ्यचर्या निर्माताओं से चार प्रश्न करते है- 1. क्या किया जाना है? 2. किस विषय-वस्तु को शामिल करना है? 3. क्या अनुदेशनात्मक व्यूह रचना, संसाधन तथा गतिविधियाँ आयोजित करनी है? 4. परिणामों को किन विधियों तथा उपकरणों से मूल्यांकित किया जायेगा? गाइल्स के अनुसार ये चारों घटक एक दूसरे के साथ अन्त: क्रिया करते हैं तथा प्रत्येक घटक के लिए किया जाने वाला निर्णय अन्य घटकों पर निर्भर करता है ।

किसी पाठ्यक्रम की रूपरेखा में विभिन्न व्यावहारिक मुद्दों के साथ-साथ दार्शनिक तथा सैद्धान्तिक मुद्दे समाहित होते हैं । एक व्यक्ति की दार्शनिक सोच पाठ्यक्रम के उद्धेश्यों, विषयवस्तु आदि पर प्रभाव डाल सकती है । सभी पाठ्यक्रम अभिकल्पों में पाठ्यचर्या को क्रियान्वित करने तथा आवश्यक निर्णय लेने हेतु मूल्यों तथा प्राथमिकताओं की एक संगत एवं

पर्याप्त व्यवस्था होती है । हिल्दा तबा के अनुसार अधिकतर पाठ्यचर्या प्रारूपों में गाइल्स के चार घटक होते हैं, परन्तु इनका संतुलन असमान होता है । किसी एकाधिक घटक का अधिक महत्व तथा पाठ्यचर्या योजना में सम्मिलित विशिष्ट मूल्य, प्राथमिकताएं व उपागम अलग-अलग पाठ्यचर्या अभिकल्प का निर्माण करते है । इस इकाई में हम इस प्रकार निर्मित विभिन्न पाठ्यचर्या योजनाओं के बारे में चर्चा करेंगे ।

9.2 पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्त्रोत एवं आयाम (Source and dimension of Curriculum Design)

पाठ्यक्रम अभिकल्पों के निर्माण को समाज व व्यक्ति की सामाजिक एवं दार्शनिक विचार धाराएं प्रभावित करती है । सामान्यतया ये विचारधाराएँ ही पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्त्रोत कहलाते हैं । जिस प्रकार दर्शन व समाज की भूमि शिक्षा को प्रभावित करती है, उसी प्रकार पाठ्यचर्या के योजनाकारों को भी प्रभावित करती है । यदि पाठ्यक्रम में सामाजिक एवं दार्शनिक रूझान स्पष्ट नहीं होते हैं, तो पाठ्यक्रम योजना में व्यवहारिक व सैद्धांतिक दूरियां भ्रम का कारण बनती है । रोनाल्ड डोल ने पाठ्यक्रम अभिकल्पों के निर्माण के पीछे निहित चार स्त्रोतों का वर्णन किया है-विज्ञान, समाज, शाश्वत सत्य एवं दैविक इच्छा । इसी तरह टायलर के अनुसार ज्ञान, समाज तथा अधिगमकर्ता पाठ्यक्रम अभिकल्पन के प्रमुख स्त्रोत हैं ।

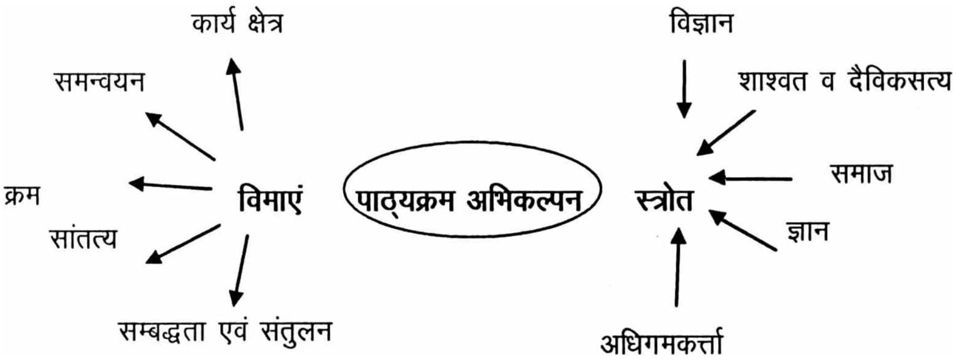

चित्र 2: पाठ्यक्रम अभिकल्पन के स्त्रोत एवं आयाम

पाठ्यक्रम अभिकल्प के निर्माण के मुख्य स्त्रोत ही रूझान होते हैं-

'विज्ञान 'स्त्रोत के रूप में- वैज्ञानिक विधि पर विश्वास करने वाले पाठ्यचर्या निर्माता निर्माण में उन तत्वों को चयन व व्यवस्थित करेंगे जो अवलोकन तथा अंकन योग्य हों अर्थात् सत्य को खोजने के लिए वैज्ञानिक विधियों, प्रविधियों, तथ्यों तथा उपकरणों पर जोर दिया जायेगा ।

'समाज' स्त्रोत के रूप में-विद्यालय एक सामाजिक अभिकरण होने के नाते समाज की दशाओं तथा व्यवस्थाओं के विश्लेषण के द्वारा विचार प्राप्त करता है । विद्यालय के पाठ्यक्रम में भी इन सामाजिक विचारों का सम्मिलित किया जाना आवश्यक होता है, अन्यथा वह पाठ्यक्रम समाज को स्वीकार नहीं होती है । जैसे-जैसे सामाजिक ताने-बाने तथा वैचारिक परिस्थितियों में परिवर्तन होता है, पाठ्यक्रम को भी उसी के अनुरूप बदलना होता है । दूसरी ओर कुछ लोगों

की सोच यह है कि विद्यालय पाठयक्रम समाज की सोच में परिवर्तन लाने में सक्षम है, अत: इसे उसी के अनुरूप रखा जाना चाहिए

'शाश्वत व दैविक सत्य' स्त्रोत के रूप में -कुछ पाठ्यचर्या अभिकल्पनकर्त्ताओं का मानना है कि जो परम्परागत एवं प्रकृति से परे विचार तथा दर्शन भूतकाल से चले आ रहे हैं वे भी पाठ्यक्रम के अभिकल्प को प्रभावित करते हैं । महान व्यक्तियों के विचारों को कई बार शाश्वत सत्य की तरह विषयवस्तु के साथ प्रस्तुत किया जाता है ।

'ज्ञान' स्त्रोत के रूप में -विज्ञान को स्त्रोत मानने से पाठ्यक्रम अभिकल्प सीमित होना संभव है कि इससे अन्य अध्ययन के विषय वंचित रह सकते हैं । हंकिंस के अनुसार ज्ञान वास्तव में पाठ्यक्रम अभिकल्प का एक मात्र स्त्रोत है, समाज एवं अधिगमकर्ता तो केवल उस ज्ञान में से उपयुक्त विषयवस्तु को चयनित करने में छलनी का कार्य करते हैं ।

'अधिगमकर्ता' एक स्त्रोत के रूप में -कुछ लोगों का विश्वास है कि पाठ्यक्रम अभिकल्पन में अधिगमकर्ता के बारे में जानकारी महत्वपूर्ण स्त्रोत का कार्य करती हैं । अधिगमकर्ता कैसे सीखता है? उसकी सीखने के प्रति अभिवृति कैसे बन सकती है, रूचि कैसे पैदा हो सकती है? इन बातों का प्रभाव पाठ्यक्रम अभिकल्पन पर पड़ता है । अधिगमकर्ता केन्द्रित व अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम अभिकल्पों के लिए यह स्त्रोत महत्वपूर्ण है । इस प्रकार के अभिकल्पों में विषय वस्तु तथा ज्ञान को द्वितीय प्रकार का महत्व दिया जाता है ।

पाठ्यक्रम अभिकल्पन के आयाम (Dimensions of curriculum Design)-जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि पाठ्यक्रम अभिकल्पन एक प्रकार से पाठ्यचर्या के तत्वों या घटकों के मध्य विद्यमान संबंध है । पाठ्यचर्या निर्माताओं को इसके अभिकल्पन से पूर्व अनेक आयामों पर ध्यान देना आवश्यक है-

कार्यक्षेत्र (Scope) -शिक्षाविदों को पाठ्यक्रम के अभिकल्प पर विचार करते समय इसकी विषय-वस्तु की लम्बाई तथा गहराई पर विचार करना आवश्यक है । अर्थात् उसके कार्यक्षेत्र पर विषय-वस्तु तथा अधिगम-अनुभवों को कौनसी पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना है, यह पाठ्यक्रम के किसी सीमा तक कार्यक्षेत्र को इंगित करता है ।

समन्वयन (integration)-पाठ्यक्रम में एक विषयवस्तु को दूसरी विषयवस्तु से तथा विषयवस्तु के साथ अधिगम अनुभवों को व गतिविधियों को किस प्रकार एक दूसरे से जोड़ा गया है, यह भी किसी पाठ्यक्रम अभिकल्प के लिए महत्वपूर्ण है ।

क्रम (Sequence)-विषयवस्तु तथा अनुभवों को पाठ्यक्रम में किस क्रम में व्यवस्थित किया जाये यह पाठ्यचर्या अभिकल्प का एक महत्वपूर्ण आयाम है । सदैव इस बात पर विवाद रहा है कि, पाठ्यक्रम में विषयवस्तु के तार्किक क्रम या किस प्रकार विद्यार्थी ज्ञान को सीखते हैं उस क्रम में विषयवस्तु तथा गतिविधियों को व्यवस्थित किया जाये । इस संबंध में कुछ सिद्धांत भी प्रचलित है, इनमें से प्रमुख है सरल से जटिल अधिगम, छोटे-छोटे अंशो में अधिगम, समग्र से खण्डों का अधिगम (Whole to part Learning),कालक्रम आधारित अधिगम आदि ।

सांतत्य (Continuity) -सांतत्य से तात्पर्य पाठ्यक्रम के घटकों के उर्ध्वाधिर व्यवस्था या उनकी पुनरावर्ति से है । विद्यार्थियों के ज्ञान की गहराई तथा विस्तृतता में पाठ्यचर्या की लम्बाई के

साथ-साथ वृद्धि आवश्यक होती है । इसी कारण शिक्षाविद् मुख्य विचारों तथा कौशलों को पाठ्यक्रम में पुन: शामिल करने को महत्व देते हैं । यही सांतत्य कहलाता है । किसी भी पाठ्यक्रम के अभिकल्पन में यह आयाम भी आवश्यक है ।

जुड़ाव तथा संतुलन (Articulation and Balance) -जुड़ाव से तात्पर्य पाठ्यक्रम के विभिन्न पक्षों के मध्य अन्त: सम्बद्धता से है । अर्थात् पाठ्यक्रम के अलग-अलग पक्ष किस प्रकार एक दूसरे से जुड़े है, यह भी पाठ्यक्रम अभिकल्प का महत्वपूर्ण आयाम है । इसी प्रकार इन पक्षों में संतुलन या बहुलता भी पाठ्यक्रम अभिकल्प को प्रभावित करती है ।

9.3 पाठ्यक्रम अभिकल्पों का वर्गीकरण (classification of Curriculum Design)

जैसा कि अभी तक आपने पढ़ा की पाठ्यक्रम के घटकों को अलग-अलग प्रकार से संगठित करने व उनके मध्य संबंधों में दार्शनिक सामाजिक एवं अन्य रुझानों के कारण अलग-अलग प्रकार के पाठ्यचर्या अभिकल्प प्राप्त होते हैं । ओरेन्स्टीन एवं हांकिन्स के अनुसार सभी पाठ्यक्रम अभिकल्प तीन आधारभूत प्रकार के अभिकल्पों में संशोधन एवं समन्वयन के द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं । ये तीन आधारभूत पाठ्यक्रम अभिकल्प हैं-

1. **विषय केन्द्रित अभिकल्प (Subject Centered Design)** विषय वस्तु (Subject matter), अनुशासन (Discipline),विस्तृत क्षेत्र (Broad field), सहसम्बन्धात्मक (Correlational)
2. **अमिगमकर्त्ता केन्द्रित अभिकल्प (Learner Centered Design)-**मानवतावादी (Humanistic), बाल-केन्द्रित, अनुभव केन्द्रित ।
3. **समस्या केन्द्रित अभिकल्प (Problem Centered Design)-** दैनिक परिस्थिति केन्द्रित, समाज केन्द्रित ।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम अभिकल्पों को तीन प्रमुख वर्गो में बांटा गया है जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम अभिकल्पों का हम यहां पर विस्तृत अध्ययन करेंगे ।

9.4 विषय केन्द्रित तथा विस्तृत क्षेत्र पाठ्यक्रम अभिकल्प (Subject Centered and Broad Field Curriculum Design)

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम अभिकल्प- विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम अभिकल्प सर्वाधिक उपयोग में लिये जाने वाला अभिकल्प हैं । यह इसलिये है क्योंकि ज्ञान एवं विषयवस्तु को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग माना जाता हैं । ज्ञान एवं विषयवस्तु की अधिकता के कारण इस प्रकार की पाठ्यक्रम अभिकल्प की ओर भी वर्गीकरण प्राप्त होते हैं ।

'विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के प्रमुख अभिकल्पों में एक विशिष्ट विषय की विषयवस्तु पर केन्द्रित पर (जैसे भौतिक विज्ञान), किसी अनुशासन (Discipline) (जैसे विज्ञान) की विषयवस्तु पर केन्द्रित अथवा विस्तृत विषयवस्तु पर आधारित पाठ्यचर्या अभिकल्प शामिल हैं ।

शिक्षकों एवं सामान्य व्यक्तियों हेतु विषयवस्तु आधारित अभिकल्प सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रसिद्ध पाठ्यचर्या अभिकल्प हैं । यह इसलिये प्रसिद्ध है क्योंकि शिक्षक एवं अन्य व्यक्तियों ने जिन विद्यालयों/महाविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की है, वहाँ इसी का प्रयोग होता है साथ ही शिक्षकों को विषय वस्तु विशेषज्ञ के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है ।

विभिन्न विषयों में ज्ञान का विकास जिस प्रकार से हुआ है विषयवस्तु आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प उसी के अनुरूप है । ज्ञान के विस्फोट के फलस्वरूप विषयों का जैसे जैसे निरन्तर विभाजन विशिष्ट विषयों के रूप में हुआ है, वैसे-वैसे न केवल विषयों की संख्या बढ़ती गयी है बल्कि उनके आपस में संबंधों में जटिलता भी, बढ़ी है ।उदाहरण के लिए इतिहास विषय का विभाजन सांस्कृतिक इतिहास, आर्थिक इतिहास एवं भौगोलिक इतिहास आदि के रूप में हुआ। अंग्रेजी विषय का विभाजन भी अधिक जटिल होता गया है साहित्य, लिखित तथा मौखिक अभिव्यक्ति, भाषाभिव्यक्ति, व्याकरण इसके मुख्य विषयों के रूप में विभाजित हुए हैं । शिक्षाविदों हेतु प्रत्येक अलग किया गया विषय एक विशिष्ट एवं अद्वितीय विषयवस्तु का प्रतिनिधित्व करता है ।

विषय वस्तु को संगठित करने का प्राथमिक आधार लम्बे समय अंतराल से शिक्षाविदों द्वारा स्वीकार की गई विषयवस्तु की प्रकृति है । जैसे गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, हिन्दी............आदि । इस प्रकार विषयवस्तु का संगठन जिन बातों को प्राथमिक तौर पर मानकर व्यवस्थित किया गया है वे है:-

1 कालानुक्रम आधार

2 सीखने की पूर्व अपेक्षाएँ

3 समग्र से अंश की प्रवीणता

4 निगमनात्मक अधिगम

स्मिथ एवं अन्य के अनुसार अधिकतर शिक्षकों की इन प्रक्रियाओं में सक्रिय भूमिका रहती है । व्याख्यान, वाचन एवं बड़े समूह में चर्चा मुख्य अनुदेशन प्रक्रियाएँ है । परिचर्चा अधिकतर सरल से जटिल विचारों की ओर आगे बढ़ती है । तर्क पर अधिक जोर दिया जाता हैं।

विषयवस्तु केन्द्रित अधिगम के बारे में यह कहा जाता है कि यह पाठ्यक्रम अभिकल्पन प्रारम्भिक शैक्षिक स्तरों पर साक्षरता लाने में मदद करता है जो कि आवश्यक है । विषयवस्तु केन्द्रित पाठ्यक्रम अभिकल्प परम्परागत तथा मानसिक अनुशासन के अनुरूप सीखने के अवसर प्रदान करने वाला उपागम है ।

हेनरी मोरिसन के अनुसार इस प्रकार का अभिकल्प एक माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी को किसी विशिष्ट विषय में रूचि तथा क्षमताओं के विकास की अनुमति प्रदान करता है । लेकिन साथ ही डिजाइन के बारे में उसने प्रस्तावित किया कि विद्यार्थियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए विविध प्रकार के विषयों का प्रावधान रखना चाहिए ।

रोबर्ट हचिसन (1930) ने इस प्रकार की पाठ्यक्रम अभिकल्प में किन विषयों को सम्मिलित किया जाए, उसके बारे में बताया । उनके अनुसार विषय थे-

1. भाषा एवं उसके प्रयोग (अभिव्यक्ति, लेखन, व्याकरण, साहित्य) 2. गणित 3. विज्ञान 4. इतिहास 5. विदेशी भाषा । इस प्रकार के पाठयवस्तु विभाजन वाली पाठ्यचर्या को सभी विद्यार्थियों के लिए प्रस्तावित किया गया ।

विस्तृत क्षेत्र अभिकल्प (Broad Field Design) - विस्तृत क्षेत्र उपागम में साधारणतया किसी एक ज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले अनेक अलग अलग विषयों की विषयवस्तु को एक साथ रखा जाता है अथवा कभी कभी अलग अलग ज्ञान की शाखाओं से विषयवस्तु को एक नये ज्ञान के क्षेत्र में मिश्रित किया जाता है।

यह अभिकल्प परम्परागत अभिकल्पों की शैली जिसमें एक ही विषय को स्थान दिया जाता है से भिन्न है । इस अभिकल्प में दो या दो से अधिक संबंधित विषयों को एक विस्तृत विषय के रूप में मिश्रित किया जाता है ।

पाठ्यक्रम का विस्तृत क्षेत्र अभिकल्प विषय केन्द्रित अभिकल्पों में से ही एक है, जिसमें विषयवस्तु अभिकल्प या एक विषय आधारित पाठ्यचर्या के अलगाव पूर्णता व संकीर्णता के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया है । इस अभिकल्प में किसी एक मात्र विषय को विशिष्ट रूप से अलग से पढ्ने के बजाय एक विस्तृत ज्ञान के क्षेत्र से संबंधित सूचनाओं को सामान्य रूप में समझने के लिए अवसर प्रदान किये जाते हैं।

उदाहरणार्थ उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर इतिहास को एक अलग विषय के रूप में रखने के बजाय उससे संबंधित अन्य विषयों नागरिक शास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि विषयों को एक ही विस्तृत क्षेत्र सामाजिक अध्ययन के अंतर्गत रखा जाता है । इससे विद्यार्थी को अलग-अलग विषयों को एकीकृत करने के साथ साथ उनमें आपस में सम्बंधों को समझने का अवसर मिलता हैं वर्ष 193०-4० के आस-पास अमेरिका में परम्परागत विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम से हटकर ज्ञान एवं उसके अध्ययन को एकीकृत करने के प्रयास के चलते विस्तृत क्षेत्र अभिकल्प को बढ़ावा दिया गया ।

यह पाठ्यक्रम अभिकल्प न केवल विषय सीमाओं के बन्धन को कम करता है अपितु शिक्षक को भी विषय सामग्री के चुनाव में लचीलापन एवं अधिक अवसर प्रदान करता है । प्रारम्भ में इस पाठ्यक्रम अभिकल्प को महाविद्यालय स्तर पर लागू किया गया । इसकी उपयोगिता को देखते हुए धीरे-धीरे उच्च माध्यमिक एवं माध्यमिक स्तर पर भी प्रयुक्त किया जा रहा है । परन्तु प्राथमिक विद्यालयों में इस पाठ्यक्रम अभिकल्प की उपयोगिता को अधिक माना गया है । जहां पर रसायन-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, जीव-विज्ञान जैसे अलग-अलग विषयों को एक ही विषय सामान्य विज्ञान के अन्तर्गत पढ़ाये जाना अधिक उपयोगी महसूस किया जाता है ।

विस्तृत क्षेत्र अभिकल्प के अन्तर्गत पूरी पाठ्यचर्या को देखते हुए भिन्न-भिन्न संयोजन में व्यवस्थित करने के लिए कई शिक्षाविदों एवं समितियों ने सुझाव दिये है । कहीं-कहीं तो विषय की प्रकृति के अनुरूप भाषा एवं गणित दोनों को भी एक साथ रखा गया क्योंकि दोनों ही पाठ्यवस्तु मानव निर्मित है । इस प्रकार के पाठ्यक्रम अभिकल्प में कई बार अलग-अलग विषयों के संयोजन से मिलकर एक नये विषय का संश्लेषण भी किया गया । उदाहरण के तौर

पर गणित, समाजशास्त्र सांख्यिकी, राजनैतिक-विज्ञान अर्थशास्त्र शिक्षा-शास्त्र आदि से मिलकर एक नया क्षेत्र भविष्य शास्त्र का विकास हुआ।

9.5 मूल पाठ्यक्रम एवं गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प (Curriculum Design and Activity Based Curriculum Design)

मूल पाठ्यचर्या अभिकल्प (Core Curriculum Design)- मूल पाठ्यचर्या अभिकल्प से तात्पर्य उस ज्ञान, कौशल एवं योग्यता विकसित करने वाले सुनिश्चित पाठ्यचर्या से है जो सभी विद्यार्थियों के लिए लागू किया जाता है । यह एक सावधानी पूरक एवं योजनाबद्ध ढंग से बनाया गया पाठ्यक्रम अभिकल्प है जिसे कभी-कभी सामाजिक क्रिया भी कहा जाता है । इस पाठ्यक्रम अभिकल्प के पीछे ये धारणा होती है कि समुदाय या समाज हेतु सभी विद्यार्थियों में एक समान एवं निश्चित प्रकार के ज्ञान को विकसित करना आवश्यक है, जो कि उन सभी विद्यार्थियों को समाज के प्रति जिम्मेदार नागरिक बनाने में सहयोग करें । इस प्रकार यह पाठ्यक्रम अभिकल्प जिसमें समाज की आवश्यकताओं एवं समस्याओं की पूर्ति के लिए सभी विद्यार्थियों को एक सुनिश्चित तथा समान पाठ्यवस्तु एवं अनुदेशन क्रियाओं की व्यवस्था करता है । इसमें मनुष्य के जीवनयापन करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित ज्ञान प्रदान करने को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार का पाठ्यक्रम प्रारूप अधिगमकर्ता की आवश्यकता या रूचि के बजाय समाज की विस्तृत समस्याओं के प्रति अधिक केन्द्रित होता है । विद्यार्थियों की आवश्यकता, रूचि एवं अनुभव का इस प्रकार के पाठ्यक्रम अभिकल्प में अधिक महत्व नहीं होता है ।

ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार का अभिकल्प कक्षा के बाहर परिभाषित एवं आकल्पित किया जाता है अर्थात् विद्यार्थियों अथवा समूह के अनुभवों का इससे कुछ लेना देना नहीं होता है । प्रत्येक विद्यार्थी को एक निश्चित पाठ्यचर्या के अनुरूप आगे बढ़ना होता है । इस प्रकार के अभिकल्प में अनुदेशन एक पूर्व निश्चित विषयवस्तु एवं ज्ञान के दायरे पर आधारित होता है न कि खोज आधारित विषय वस्तु पर । हालांकि इस अभिकल्प के द्वारा शिक्षण में समस्या-समाधान, आलोचनात्मक चिन्तन आदि प्रविधियों पर कोई रोक नहीं है फिर भी यह अभिकल्प हमेशा किसी निश्चित उत्तर की ओर ही विद्यार्थियों को ले जाने का संकेत करता है ।

गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प-विश्व में बदलते हुए राजनैतिक एवं सामाजिक परिदृश्य जिसमें लोकतन्त्र तथा स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित किया है, का प्रभाव शिक्षा पर भी पड़ा है । पाठ्यक्रम निर्माता इस प्रकार की पाठ्यक्रम को सृजित करना चाहते हैं जो विद्यार्थी के लिए उपयोगी हो । पाठ्यक्रम निर्माण में एक तरफ जहां विषय-वस्तु तथा शिक्षक को महत्व दिया जाता रहा है, वहीं बदलाव के दौर में शैक्षिक नीति निर्माताओं ने विद्यार्थी को केन्द्र में रखकर पाठ्यक्रम निर्माण पर बल दिया है । हेनरी पेस्टोलॉजी तथा फ्रेडरिक फ्रोबेल जैसे शिक्षाविदों ने बच्चों में स्व-अनुभूति के विकास हेतु सामाजिक सहभागिता तथा करके सीखने के

सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था । विद्यार्थियों की गतिविधियों एवं अनुभव पर आधारित शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं तथा पाठ्यक्रम को बढ़ावा देने में जॉन डीवी तथा विलियम किलपेट्रिक जैसे शिक्षाविदों ने प्रयास किए । ऑरन्स्टाइन तथा हकिन्स के अनुसार जर्मन शिक्षाविद् फ्रांसिस पॉर्कर ने इस प्रकार की पाठ्यक्रम हेतु अपने शोध के आधार पर सिफारिश की । पार्कर विश्वास करता था कि अनुदेशन की प्रक्रिया. विद्यार्थियों के सीखने के प्राकृतिक उपागमों के आधार पर होनी चाहिए । उदाहरण के तौर पर यदि आप उनको भूगोल सिखाना चाहते हैं तो शिक्षकों, विद्यार्थियों को भौगोलिक स्थान पर ले जाना चाहिए, उनके द्वारा भू-दृश्यों के चित्र तथा नक्शे बनवाये जाने चाहिए । यह किसी पाठ्य पुस्तक को पढ़ने से ज्यादा फायदेमंद होगा । जॉन डीवी ने भी इसी प्रकार की धारणा का विकास किया । इनके अनुसार पाठ्यक्रम को मनुष्य के आवेगों के अनुरूप ही संगठित किया जाना चाहिए । जैसे समाजीकरण हेतु आवेग, निर्माण हेतु आवेग, पृच्छा हेतु आवेग, अभिव्यक्ति हेतु आवेग आदि । पार्कर की तरह डीवी के अनुसार शिक्षा व्यक्ति की क्षमताओं का विकास सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु करती है, पर साथ में बच्चे का विकास उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार हो, लगातार हो, न की एक साथ और पहले से तैयार पाठ्यक्रम के अनुसार ।

इसी धारणा पर आधारित प्रोजेक्ट विधि को विलियम किलपैट्रिक ने प्रस्तुत किया था, जिसमें विद्यार्थी किसी प्रोजेक्ट की गतिविधियों में संलग्न रहकर शिक्षा प्राप्त करता है । जॉन डीवी जहां पर विद्यार्थी की स्वतन्त्रता व उसके व्यक्तिगत उद्देश्य को अधिक महत्व देते थे । वही किलपैट्रिक समाज की आवश्यकता तथा शिक्षक के निर्देशन को भी महत्वपूर्ण मानते थे । पूर्णत: विद्यार्थी केन्द्रित पाठ्यक्रम अव्यवहारिक प्रतीत होती है, जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम हो । लेकिन इस बात से सभी सहमत प्रतीत होते हैं, की सीखने-सिखाने की प्रक्रिया विद्यार्थियों की रूचि के अनुकूल हो । गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प इसी मान्यता पर आधारित है । इस आकल्प के अनुसार पाठ्यक्रम विषयवस्तु केन्द्रित अथवा पूर्व निश्चित होने की बजाय इस प्रकार की गतिविधियों पर केन्द्रित हो जिसके द्वारा विद्यार्थी को अपनी रूचियों तथा क्षमताओं को विकसित करने का अवसर प्रदान हो । पाठ्यक्रम में इस प्रकार का लचीलापन हो कि शिक्षक विद्यार्थियों पर एक निश्चित विषय वस्तु को थोपने के बजाय उनकी रूचि को पहचाने तथा विकसित करें । विद्यार्थियों की रूचियों व आवश्यकता पर आधारित गतिविधियों पर पाठ्यचर्या को अधिक केन्द्रित किया जाये । विषयों में स्थित विषयवस्तु को केवल उनकी समस्याओं को हल करने में प्रयुक्त किया जायें । इस प्रकार की समस्याओं को विद्यार्थियों को स्वयं चयन करने का अधिकार हो ।

इस प्रकार गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प में विषय वस्तु या पूर्व निश्चित पाठ्यचर्या के बजाय विद्यार्थियों तथा समाज की समस्याओं पर आधारित गतिविधियों को महत्व दिया गया है ।

9.6 पाठ्यक्रम अभिकल्पों के प्रकार के सापेक्ष उनके गुण एवं सीमाएं (Characteristics and Limitation)

अभी तक हमने अलग-अलग प्रकार के पाठ्यक्रम अभिकल्पों के बारे में अध्ययन किया एवं यह जाना कि प्रत्येक पाठ्यचर्या अभिकल्प की अपनी विषेशताएं होती है । ये ही विषेशताएं उसके गुण एवं सीमाओं का निर्धारण करती हैं ।

सर्वप्रथम हमने देखा कि किस प्रकार **विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम अभिकल्प** उस विषय की पाठ्य पुस्तकों के अनुकूल है तथा अध्यापकों के भी अनुकूल है क्योंकि उनका प्रशिक्षण एक विषय विशेषज्ञ के रूप में हुआ है । इसीलिए यह अधिक प्रसिद्ध तथा सर्वाधिक उपयोग किया जाने वाला पाठ्यक्रम अभिकल्प रहा है । इस अभिकल्प की मुख्य विशेषता यह भी है कि यह मनुष्यों की बुद्धि और ज्ञान के गहन करने की प्राकृतिक प्रक्रिया के अनुसार है । इस अभिकल्प को अभिशंसित करने वाले शिक्षाविदों का मानना है कि यह अभिकल्प विद्यार्थियों को एक विशेष विषय में रूचि और क्षमताओं को विकसित करने में सहायता देता है ।साथ ही समाज के आवश्यक ज्ञान से विद्यार्थियों का परिचय कराता है । यह भी माना जाता है कि इस प्रकार के अभिकल्प के द्वारा ज्ञान को प्रदान करना आसान है क्योंकि इसकी पाठ्य पुस्तकें एवं सहायक सामग्री उपलब्ध है तथा परम्परागत रूप से इसके स्वरूप से अधिकतर व्यक्ति परिचित है । लेकिन दूसरी और इसके आलोचकों की भी कमी नहीं है । जॉन डीवी के अनुसार ज्ञान को अलग-अलग करके प्रदान करना ठीक नहीं है । उन्होंने चेताया कि इससे अलग-अलग विषयों के ज्ञान के एकाकी होने एवं अलग-थलग हो जाने का खतरा है । अन्य आलोचकों के अनुसार विषय वस्तु पर अधिक जोर दिया जाना सामाजिक, मानसिक एवं शारीरिक विकास को बढ़ावा नहीं देता है । चूंकि विषय को अन्य विषयों तथा वास्तविकता से जोड़कर नहीं देखा जाता है । अत: इससे रटने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है अर्थात् विद्यार्थियों की आवश्यकता, रूचि एवं अनुभवों के बजाए पाठ्यवस्तु अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, इससे कक्षा में विद्यार्थियों के निष्किय होने का भय रहता है । **विस्तृत क्षेत्र. अभिकल्प** में इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है । अलग-अलग विषयों को एकीकृत किया गया है जिससे कि ज्ञान को सम्पूर्ण एवं अर्थपूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सके ।

विस्तृत क्षेत्र अभिकल्प के बारे में भी अनेक प्रकार की आलोचनाएँ प्राप्त होती है । सबसे महत्वपूर्ण बात है कि वह विषय वस्तु की गहनता एवं विस्तार से संबंधित है । इस प्रकार के पाठ्यक्रम अभिकल्प से किसी एक क्षेत्र से संबंधित ज्ञान को अधिक विस्तार एवं विविधता के साथ पूरे वर्ष भर पढ़ा जाता है । ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार की शिक्षा से केवल ऊपरी ज्ञान विद्यार्थी प्राप्त कर सकता है लेकिन ज्ञान की गहनता से वह वंचित रहता है । यह आलोचना उच्च माध्यमिक एवं शिक्षा के उच्च स्तरों के लिए तो ठीक कही जा सकती है लेकिन प्रशासनिक स्तर पर शिक्षा हेतु अधिक गहनता की आवश्यकता रहती है, ऐसा नहीं माना जाता है।

मूल पाठ्यक्रम अभिकल्प (Core Curriculum Design) के अनेक लाभ गिनाए जाते हैं । ऐसा माना जाता है कि इस प्रकार के अभिकल्प में विषयवस्तु का एकीकरण हो जाता है जिससे विद्यार्थियों के समक्ष विषयवस्तु को प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता है और सूचना के सक्रिय प्रसंस्करण को प्रोत्साहन मिलता है । इस अभिकल्प में विषय वस्तु को प्रासंगिक या समस्या आधारित बनाकर प्रस्तुत किया जाता है इसलिए इससे विद्यार्थियों में सीखने के प्रति आंतरिक प्रेरणा को बढ़ावा मिलता है । इस प्रकार के अभिकल्प विद्यार्थियों को उन जटिल समस्याओं का हल ढूंढने के योग्य बनाता है जिसे वे अपने समाज में कम महसूस करते हैं । इस प्रकार विद्यार्थी समुदाय को एक प्रयोगशाला के रूप में देखता है । इसके साथ ही सहकारी अधिगम की प्रक्रियाओं के कारण लोकतन्त्रात्मक भावनाओं का विकास होता है ।

इस आकल्प में भी कई समस्याएं है इसकी एक मुख्य कमजोरी जिसे हम इसकी ताकत के रूप में भी देख सकते हैं, वह है परम्परागत पाठ्यक्रम से हटकर होना है । इस प्रकार के अभिकल्प हेतु पाठ्य पुस्तकें एवं सामग्री मिलना भी कठिन है । परम्परागत पाठ्य पुस्तकें इस प्रकार के अभिकल्प के लिए मददगार नहीं । इसी तरह इस प्रकार का पाठ्यक्रम अभिकल्प स्वीकार नहीं किया जाता, क्योंकि सामान्य लोग इसके अर्थात् सामान्य शिक्षा के लाभप्रद होने को स्वीकार नहीं करते हैं । इसके साथ ही इस प्रकार के पाठ्यचर्या अभिकल्प हेतु अलग प्रकार के शिक्षकों की आवश्यकता होती है, जो विषय वस्तु के साथ-साथ सामान्य ज्ञान तथा समस्या-समाधान कौशल में भी निपुण हो ।

गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प का मुख्य लाभ है कि यह विद्यार्थी एवं अनुभव केन्द्रित होने के कारण विद्यार्थियों की जीवनयापन संबंधित आवश्यकताओं, समायोजन एवं दैनिक समस्याओं के हल में उसकी सहायता करती है । विशेषत: प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए इसे अधिक उपयुक्त माना गया है । इस प्रकार की पाठयक्रम हेतु विषयवस्तु को अलग-अलग भागों में बांटकर विज्ञान, गणित, सामाजिक ज्ञान आदि के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय एकीकृत रूप में विद्यार्थी के अनुभव या सामाजिक समस्या के अनुरूप प्रस्तुत किया जाता है । जो प्राकृतिक रूप से स्वत: अधिगम का कारक बनता है । निश्चित रूप से इस प्रकार की पाठ्यक्रम विद्यार्थी को स्मरण आधारित ज्ञानार्जन के बजाय उसकी आवश्यकता के अनुरूप संज्ञानात्मक, कौशलात्मक एवं चारित्रिक विकास हेतु अवसर प्रदान करता है ।

दूसरी ओर प्रत्येक विद्यार्थी की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम को निर्मित करना असंभव है । इस प्रकार की पाठ्यक्रम को निर्मित करना न केवल कठिन है बल्कि इस प्रकार की पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु अधिक दक्ष शिक्षकों की आवश्यकता होती है, जो अवसर एवं परिस्थिति को पहचानकर पाठ्यचर्या को उचित गतिविधि पर आधारित बनाये । साथ ही वर्तमान समय में ज्ञान के निरन्तर विस्तार के कारण विद्यार्थियों को प्रदान किये जाने वाले एवं आवश्यक न्यूनतम ज्ञान की मात्रा भी अधिक हो गयी है ।

इतने अधिक ज्ञान को गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम द्वारा प्रदान करने में समय, श्रम तथा संसाधनों की अधिक आवश्यकता होगी ।

9.7 संतुलित पाठ्यक्रम आकल्प का सम्प्रत्यय (Concept of a Balanced Curriculum Design)

इस अध्याय में हमनें एक पाठ्यक्रम आकल्प के घटकों, स्त्रोतों तथा विभिन्न आयामों के साथ-साथ चार भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम आकल्पों पर विचार किया । किसी भी पाठ्यक्रम आकल्प के घटकों-उद्देश्य विषयवस्तु, विधियों, संगठन, मूल्यांकन की प्रकृति एवं विस्तार के आधार पर ही उस आकल्प की उपयोगिता निश्चित की जा सकती है । एक पाठ्यक्रम आकल्प में क्रियात्मक निर्णय लेने एवं पाठ्यक्रम क्रियान्वयन हेतु एक निश्चित प्रारूप को, जिसमें मूल्य एवं प्राथमिकताएं स्पष्ट हो, दिया जाना आवश्यक है । विभिन्न पाठ्य आकल्पों में इन चार घटकों की मौजूदगी तो पाई जाती है, लेकिन इनके मध्य संतुलन का अभाव होता है । कुछ घटकों पर अधिक जोर दिया जाता है तथा कुछ घटकों को ठीक से परिभाषित नहीं किया जाता है, इससे पाठ्यक्रम आकल्प में असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है । इन घटकों के मध्य आपस में संबंधों की सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति में विभिन्नता पाई जाती है ।

एक संतुलित पाठ्यक्रम आकल्प से तात्पर्य पाठ्यक्रम के प्रत्येक आयाम को उचित भार प्रदान करने से है, जिससे की किसी प्रकार का झुकाव किसी एक आयाम या तत्व की ओर न हो ।

> ऑरन्स्टाईन तथा हनकिन्स के अनुसार एक संतुलित पाठ्यक्रम वह है जिसमें विद्यार्थियों के व्यक्तिगत सामाजिक तथा बौद्धिक लक्ष्यों के अनुकूल ज्ञान की दक्षता हासिल करने, उसको आत्मसात करने तथा उसे उपयोग करने के लिए उपयुक्त प्रावधान हो । किसी पाठ्यक्रम आकल्प को अनेक दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है उनमें से प्रमुख है-विषय-वस्तु विषयानुशासन, विद्यार्थियों का अनुभव, मूल्य, तात्कालिक या दीर्घकालिक समस्यायें आदि । एक संतुलित पाठ्यचर्या आकल्प को इन सभी के विभिन्न रूपों तथा आयामों के संतुलन के रूप में देखा जा सकता है ।
>
> जॉन गुडलेड के अनुसार पाठ्यक्रम को विषय-वस्तु तथा अधिगमकर्ता के लिहाज से संतुलित होना चाहिए । उनके अनुसार यदि इनमें से एक को अधिक महत्व दिया जाता है तथा दूसरे को कम, तब विद्यालय को इस प्रकार की पाठ्यक्रम को क्रियान्वित करने में परेशानी आती है अर्थात् अधिगमकर्ता तथा विषयवस्तु दोनों को पर्याप्त महत्व दिया जाना आवश्यक है ।
>
> वास्तव में पाठ्यक्रम का पूरी तरह से संतुलित होना असंभव हैं समाज व व्यक्ति की आवश्यकता में निरन्तर बदलाव होता रहता है । लेकिन इतनी तेजी से विद्यालय इनको अंगीकार नहीं कर पाता है । शिक्षाविद् अपनी पसंद के एक विषय या एक विषय के समूह पर अधिक जोर देते हैं, जो कि दूसरे की कमी का कारण बन जाता है । योजनाबद्ध तथा वस्तुनिष्ठ पाठ्यक्रम के स्थान पर व्यक्तिनिष्ठता तथा समाज के तात्कालिक दबाव अधिक प्रभावी होते हैं ।

9.8 सारांश (Summary)

1. पाठ्यक्रम अभिकल्प-पाठ्यचर्या के तत्वों की उस व्यवस्था से है जो उसे एक पूर्ण रूप प्रदान करती है।
2. पाठ्यक्रम अभिकल्प के घटक- (1) लक्ष्य, उद्देश्य (2) विषयवस्तु (3) अधिगम अनुभव तथा (4) मूल्यांकन उपागम ।
3. पाठ्यक्रम अभिकल्पों के स्त्रोत-विज्ञान, समाज, शाश्वत सत्य एवं दैविक इच्छा, ज्ञान, समाज तथा अधिगमकर्ता ।
4. पाठ्यक्रम अभिकल्पों को तीन प्रमुख वर्गो में बांटा गया हैं- 1. विषय केन्द्रित अभिकल्प 2. अभिगमकर्ता-केन्द्रित-अभिकल्प 3. समस्या-केन्द्रित अभिकल्प ।
5. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के प्रमुख अभिकल्पों में एक विशिष्ट विषय की विषयवस्तु पर केन्द्रित पर, किसी एक अनुशासन की विषयवस्तु पर केन्द्रित अथवा विस्तृत विषयवस्तु पर आधारित पाठ्यक्रम अभिकल्प शामिल है ।
6. विस्तृत क्षेत्र उपागम में साधारणतया किसी एक ज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले अनेक अलग अलग विषयों की विषयवस्तु को एक साथ रखा जाता है अथवा कभी कभी अलग अलग ज्ञान की शाखाओं से विषयवस्तु को एक नये ज्ञान के क्षेत्र में मिश्रित किया जाता है ।
7. मूल पाठ्यक्रम अभिकल्प से तात्पर्य उस ज्ञान, कौशल एवं योग्यता विकसित करने वाले सुनिश्चित पाठ्यचर्या से है जो सभी विद्यार्थियों के लिए लागू किया जाता है ।यह एक सावधानी पूरक एवं योजनाबद्ध ढंग से बनाया गया पाठ्यक्रम अभिकल्प है जिसे कभी-कभी सामाजिक क्रिया भी कहा जाता है
8. गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प-इस आकल्प के अनुसार पाठ्यचर्या विषयवस्तु केन्द्रित अथवा पूर्व निश्चित होने की बजाय इस प्रकार की गतिविधियों पर केन्द्रित हो जिसके द्वारा विद्यार्थी को अपनी रूचियों तथा क्षमताओं को विकसित करने का अवसर प्रदान हो ।
9. एक संतुलित पाठ्यक्रम आकल्प से तात्पर्य पाठ्यक्रम के प्रत्येक आयाम को उचित भार प्रदान करने से है, जिससे कि किसी प्रकार का झुकाव किसी एक आयाम या तत्व की ओर न हो ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evalution Question)

1 पाठ्यक्रम आकल्पन के प्रमुख घटकों को उल्लेखित कीजिये।

2 पाठ्यक्रम आकल्पन के स्त्रोतों का वर्णन कीजिये।

3 विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम आकल्प किसे कहते हैं ?

4 विस्तृत क्षेत्र पाठ्यक्रम आकल्प कैसे विषय केन्द्रित पाठ्यचर्या आकल्प से भिन्न है ?

5 मूल पाठ्यक्रम आकल्प से आप क्या समझते हैं ?

6 गतिविधि आधारित पाठ्यचर्या आकल्प की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं ?

7 विषय केन्द्रित तथा विस्तृत क्षेत्र पाठ्यक्रम आकल्प की क्या सीमाएं हैं ?

8 मूल एवं गतिविधि आधारित पाठ्यक्रम आकल्प की सीमाओं का वर्णन कीजिये ?

9 पाठयक्रम प्रारूप से आप क्या समझते हैं ?

9.9 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

- **Agarwal, J.C.(1990):** Curriculum Reforms in India,Daoba House, Delhi.
- **Burner, J.S.(1960/1977):** The Process of Education,Harward University press.
- **Singh, A.K. and Singh A.K. (2000):** The Psychology of Personality, Motilal Banarasi Das, Patna.
- **Pathak P.D.:** Educational Psychology.
- **Sharma, Ram chandra:** Modern Methods Of Curriculum Organization, Book Enclave, Jaipur 2002.

इकाई 10

पाठ्यक्रम निर्माण : विभिन्न मॉडल एवं पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त

(Different Models and Principles of Curriculum Construction)

इकाई की संरचना(Structure of the Unit)

10.0 उद्देश्य (Objectives)
10.1 प्रस्तावना (Introduction)
10.2 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum Development)
10.3 पाठ्यक्रम निर्माण के मॉडल (Model of Curriculum Development)
10.4 टेलर मॉडल ; (Taylor Model)
10.5 टाबा मॉडल (taba Model)
10.6 सेलर और अलैग्जेंडर मॉडल (Saylor and Alexander Model)
10.7 सारांश(Summary)
10.8 संदर्भ ग्रन्थ (References)

10.0 उद्देश्य (Objectives

इस इकाई में पाठ्यक्रम निर्माण करते समय किन-किन सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिये तथा पाठ्यक्रम विकास के कुछ कतिपय प्रतिमानों की चर्चा की गई है । एक शिक्षक के रूप में आप पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे और आवश्यकता पड़ने पर पाठ्यक्रम विकसित करने में अपनी कुशलता, दक्षता व कौशलों का उपयोग कर पायेंगे ।

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य। हो जायेंगे कि-

- पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों से अवगत हो जायेंगे तथा उन्हें अपने शब्दों में स्पष्ट भी कर पाएंगे।
- पाठ्यक्रम विकास के विविध उपागमों का उल्लेख कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम निर्माण के कतिपय प्रमुख मॉडलों की चर्चा कर सकेंगे तथा इनको तकनीकी और गैर-तकनीकी मॉडलों में वर्गीकृत कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख मॉडलों की विशेषताओं को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम विकास सम्बन्धी पढ़े गये मॉडलों की तुलना कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम विकास के मॉडल सम्प्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम विकास के कतिपय मॉडल्स को आरेख चित्र की सहायता से स्पष्ट कर पायेंगे।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा मनुष्य के जीवन की आधार शिला है । इसके द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है तथा इसकी सहायता से ही व्यक्ति अपनी जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति करता है। शिक्षा व्यक्ति को सुसभ्य, सुसंस्कृत एवं सामाजिक प्राणी बनाती है । वह उसके व्यक्तित्व को निखार कर उसकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करती है ।

मनुष्य औपचारिक तथा अनौपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करता है । शिक्षा के औपचारिक रूप की शाला 'पाठ्यक्रम' है । शाब्दिक रूप से देखें तो पाठ्यक्रम का अर्थ पढ्ने योग्य विषय. वस्तु की व्यवस्था है । जैसा कि आप जानते हैं-केरीकुलम अंग्रेजी का शब्द है जिसकी उत्पत्ति लेटिन भाषा के 'कुर्रेर' शब्द से हुई है । जिसका अर्थ है दौड़ का मैदान । अत: पाठ्यक्रम वह साधन है जिसके द्वारा शिक्षा एवं जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति होती है । यह अध्ययन का निश्चित एवं तर्कपूर्ण क्रम है, जिसके माध्यम से शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का विकास होता है तथा वह नवीन ज्ञान एवं अनुभवों को ग्रहण करता है ।

सैमुअल के अनुसार "पाठ्यक्रम में शिक्षार्थी के वे समस्त अनुभव समाहित होते हैं जिन्हें वह कक्षा-कक्ष में, प्रयोगशाला में, पुस्तकालय में, खेल के मैदान में, विद्यालय में सम्पन्न होने वाली अन्य पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा तथा अपने अध्यापकों एवं साथियों के साथ विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से प्राप्त करता है ।"

शिक्षा के विकास पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि आदिकाल में शिक्षा का स्वरूप पूर्णरूप से अनौपचारिक था । विद्यार्थी वास्तविक जीवन के अनुभवों से सीखता था । वास्तविक व प्रत्यक्ष अनुभव, दूसरों के अनुभव व ज्ञान तथा निरीक्षण, शिक्षा ग्रहण करनें में अमूल्य योगदान रखते थे ।

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ एक तो सीखे जाने वाले ज्ञान की मात्रा में वृद्धि हुई और दूसरी ओर जीवन में विविधता आने से मानव की व्यस्तता में वृद्धि हुई । प्रगतिशील समाज में शिक्षा को विधिवत व क्रमबद्ध बनाने का प्रयास किया गया । अत: पाठ्यक्रम उन शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन बना । पाठ्यक्रम का निर्माण कई सिद्धान्तों पर आधारित होता है ।

पाठ्यक्रम प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था तथा प्रणाली को सुव्यवस्थित करता है । समाज की शैक्षिक आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये पाठ्यक्रम का निर्माण तथा विकास किया जाता है । पाठ्यक्रम के अभाव में शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति असंभव है ।

पाठ्यक्रम के आधार पर ही शिक्षक कक्षा-शिक्षण हेतु उपयुक्त शिक्षण-विधियों को चयन करता है । कक्षा-शिक्षण में क्या पढ़ाना है? (अर्थात्, विषय-वस्तु) क्यों पढ़ाना है? (अर्थात् 'शैक्षिक उद्देश्य) तथा कैसे पढ़ाना है? (अर्थात् शिक्षण-विधियाँ/प्रविधियाँ/शिक्षण कौशल) आदि बातें पाठ्यक्रम से सीधा सम्बन्ध रखती हैं । पढ़ाने के उपरान्त मूल्यांकन द्वारा यह पता लगाया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति किस सीमा तक हुई अथवा कहाँ पर असफलता अथवा कठिनाईयों का सामना करना पड़ा? कौनसी विषय-वस्तु विद्यार्थियों के स्तरानुकूल थी अथवा

नहीं, उपयुक्त विधियों का चयन किया गया अथवा नहीं? इन सब बिन्दुओं का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पाठ्यक्रम से सम्बन्ध है ।

अत: पाठ्यक्रम निर्माण करते समय निर्माणकर्ता को विभिन्न कारकों को ध्यान में रखना होता है । पाठ्यक्रम के विकास के सम्बन्ध में अलग-अलग विद्वानों ने अपनी-अपनी सोच के अनुसार पाठ्यक्रम विकास के मॉडल प्रतिपादित किये हैं । उनमें से कतिपय मॉडलों का अध्ययन इस इकाई में करेगें ।

10.2 पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त (Principles of Curriculum Construction)

शिक्षा के विकास पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि आदिकाल से शिक्षा का स्वरूप पूर्ण रूप से अनौपचारिक था । बालक जीवन से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करता था, परिवार व गुरूकुल में रहकर अपने जीवन के उद्देश्य तलाशता था । बालक प्रत्यक्ष रूप से अपने अनुभवों के आधार पर सीखता था अपने से बडे, ज्ञानी व अनुभवी व्यक्तियों की गाथा सुनकर भी वह शिक्षा ग्रहण करता था । लेकिन इस प्रकार की शिक्षा में वर्तमान में प्रदान की जा रही शिक्षा जैसा स्वरूप नहीं था । यह शिक्षा अपनी तरीके की विशिष्ट शिक्षा थी जो किसी नियमों से बंधी हुई नहीं थी । मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ हमारे ज्ञान में दिनोंदिन वृद्धि होती चली गई तथा साथ-साथ मनुष्य के रहन-सहन, आचार-विचार में भी परिवर्तन आने लगा । मनुष्य विभिन्न कार्यो में व्यस्त रहने लग गया, परिणामस्वरूप शिक्षा के प्राचीन स्वरूप में भी बदलाव आना स्वाभाविक था ।

अत: वर्तमान समय में बालक के सर्वांगीण विकास हेतु विद्यालय चलाये जा रहे हैं, जहाँ उन्हें निश्चित समय में निश्चित विषय-वस्तु का ज्ञान प्रदान किया जाता है । इस हेतु 'पाठ्यक्रम' का निर्माण किया जाता है ।

पाठ्यक्रम में वे सभी अनुभव सम्मिलित रहते हैं जिन्हें वह विद्यालय में या विद्यालय से बाहर रहकर प्राप्त करता है । इन अनुभवों को इस प्रकार एक कार्यक्रम के रूप में व्यवस्थित तथा नियोजित किया जाता है जिससे वह छात्रों के मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, भावात्मक, आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास को अग्रेषित कर सकें ।

पाठ्यक्रम विषय-वस्तु तक सीमित न रहकर शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करने में सहायता करता है, इससे बालकों की रूचियों, आकांक्षाओं व सामाजिक अपेक्षाओं को भी सम्मिलित किया जाता है ।

पाठ्यक्रम का विकास व निर्माण करते समय बहुत सी बातों का ध्यान रखना होता है ।

जैसा कि हम जानते हैं पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है, शैक्षिक उद्देश्य ही पाठ्यक्रम के स्वरूप का निर्धारण करते हैं । इस प्रकार । शैक्षिक उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है ।

वास्तव में देखा जाये तो पाठ्यक्रम का स्वरूप ऐसा होना चाहिये जो सामाजिक आवश्यकताओं, प्रचलित मूल्यों एवं समय की माँग को पूरा करने वाला हो । बालकों का

सर्वांगीण विकास भी तभी संभव हो सकता है जब पाठ्यक्रम उनमें उपयुक्त जीवन कौशलों को विकसित कर सकने में सहायता करे ।

वैसे तो पाठ्यक्रम निर्माण के बहुत सारे सिद्धान्त हो सकते हैं परन्तु यहाँ पर हम उन प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन करेगें जो किसी भी पाठ्यक्रम को निर्मित व विकसित करने हेतु अति आवश्यक होते हैं । ये कतिपय सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :-

1. बाल केन्द्रित (child Centred)

पाठ्यक्रम का विकास बालक के विकास हेतु किया जाता है अत: पाठ्यक्रम बाल-केन्द्रित होना चाहिये, अर्थात् बालक की मानसिक आयु उसकी रूचियाँ, उसकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर आधारित होनी चाहिये ।

2. लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Flexibility)

पाठ्यक्रम लचीला होना चाहिये अर्थात् आवश्यकतानुसार इसमें फेर-बदल करने की गुंजाइश होनी चाहिये ।

पाठ्यक्रम को अन्तिम उत्पाद (Final Product) के रूप में नहीं मानना चाहिये, अपितु यह समझना आवश्यक है कि यह उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन मात्र है । अत: इसमें विष सामग्री आवश्यकतानुसार समय-समय पर बदली जानी चाहिये ।

3. क्रिया का सिद्धान्त (Principle of Activity)

पाठ्यक्रम क्रिया केन्द्रित होना चाहिये । यह हम जानते हैं कि बालक' करके ही किसी कार्य को सीखते हैं । इसके अतिरिक्त बालक स्वभावत: ही क्रियाशील होते हैं । उनमें काफी ऊर्जा होती है । अत: इस सक्रियता और ऊर्जा का उपयोग समाजोपयोगी कार्यो में लगाने हेतु उन्हें उचित परामर्श व सलाह की आवश्यकता होती है । जो पाठ्यक्रम द्वारा आसानी से पूरी की जा सकती है ।

अत: शिक्षा को क्रिया तथा अनुभवों के सिद्धान्त के अनुरूप होना चाहिये।

4. जीवन से सम्बद्धता का सिद्धान्त (Principle of Living with life)

विद्यालय समाज का लघु रूप होता है । छात्र को विद्यालय में भी वैसा ही अनुभव करवाना चाहिये, जैसा वह विद्यालय के बाहर समाज में करेगा । अर्थात् पाठ्यक्रम का सम्बन्ध छात्र के वास्तविक जीवन से होना चाहिये ।

5. रूचि का सिद्धान्त (Principle of Interest)

पाठ्यक्रम बालक की रूचि के अनुसार भी होना चाहिये । इसमें पाठ्यवस्तु व अन्य क्रियाओं का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार होना चाहिये कि बालक में अध्ययन करने में रूचि जागृत हो सके ।

6. संरक्षणता का नियम (Principle of Conservation)

पाठ्यक्रम निर्माण करते वक्त इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि वह हमारी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता एवं गौरव को दर्शाने वाला हो तभी हम अपनी सभ्यता और संस्कृति का संरक्षण कर पायेंगे अन्यथा आने वाली पीढ़ी इसे समझ नहीं पायेगी ।

7. सह-सम्बन्धता का सिद्धान्त (Principle of Correlation)

पाठ्यक्रम में दिया जाने वाला ज्ञान विभिन्न विषयों से सह सम्बन्धित होना चाहिये क्योंकि जीवन से सम्बन्धित ज्ञान कई घटनाओं से आपस में जुड़ा होता है । अत: यदि यह बात पाठ्यक्रम में परिलक्षित होगी तो विषय-वस्तु को समझने में सरलता रहेगी ।

8. अभिप्रेरणा का सिद्धान्त (Principle of Motivation)

पाठ्यक्रम ऐसा हो जो विद्यार्थियों को प्रेरणा प्रदान कर सके । पाठ्यक्रम निर्माण करते समय मनोवैज्ञानिक तत्वों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है ।

9. विविधता का सिद्धान्त (Principle of variety)

छात्रों की व्यक्तिगत विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का विकास करना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक बालक का मानसिक स्तर, रूचियाँ, योग्यताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं ।

10. प्रजातान्त्रिक धारणा का सिद्धान्त (Principle of Democratic Concept)

पाठ्यक्रम का विकास करते समय प्रजातान्त्रिक मूल्यों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये । आज के विद्यार्थी कल के भावी नागरिक हैं । अत: प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों से अवगत होना आवश्यक है।

11. उपयोगिता का सिद्धान्त (Principle of Utility)

पाठ्यक्रम का विकास करते समय यह ध्यान रखा जाना अति आवश्यक है कि यह पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के लिये कितना उपयोगी सिद्ध होगा? यदि पाठ्यक्रम में उपयोगी विषयवस्तु का चयन नहीं किया गया है तो वह विद्यार्थियों के लिये व्यर्थ है । वे उसमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पायेंगे । अत: छात्रों की आवश्यकतानुसार उसे बनाने का प्रयास करना चाहिये ।

12. विकास का सिद्धान्त (Principle of Development)

पाठ्यक्रम का निर्माण करते वक्त विद्यार्थियों के विकास के विभिन्न स्तरों को जानना बहुत आवश्यक है । पाठ्यक्रम विद्यार्थियों के विकास के क्रम में ही लिखा जाना चाहिये ।

13. खाली समय के सदुपयोग का सिद्धान्त (Principle of use of Lesire time)

एक अच्छे पाठ्यक्रम का यह गुण होता है कि उसमें बालकों के खाली समय के लिये भी विभिन्न अभ्यास व कौशल सिखाने का प्रयोजन रखा जाता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम की अवधारणा समझते हुए यह उल्लेख करिए कि उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण/ विकास करते समय आप किन-किन बिन्दुओं का ध्यान रखेंगे और क्यों?
2. पाठ्यक्रम विकास के उपयोगिता के सिद्धान्त' से क्या अभिप्राय है? अपने उत्तर की पुष्टि उदाहरण देकर करें।

10.3 पाठ्यचर्या विकास के मॉडल (Model of Curriculum Development)

अब तक आपने पाठ्यक्रम के सम्प्रत्यय एवं परिभाषा को पढ़ा है । आपने यह भी जान लिया है कि पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं? अब आप पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न मॉडलों का अध्ययन करेंगे ।

पाठ्यक्रम प्रतिमान (Model) का अर्थ पाठ्यक्रम के स्वरूप से है । वील्ड ने पाठ्यक्रम मॉडल की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है

"किसी आदर्श लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पाठ्यक्रम के स्वरूप का निर्धारण या इस कार्य के लिये दिशा निर्देशन की प्रक्रिया के स्वरूप के निर्धारण को 'पाठ्यक्रम प्रतिमान' कहा जा सकता है ।"

पाठ्यक्रम प्रतिमान का स्वरूप शैक्षिक लक्ष्यों पर आधारित होता है । समय परिवर्तन एवं सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के लक्ष्यों में भी परिवर्तन होता रहता है । इसलिये पाठ्यक्रम विकास के प्रतिमान भी बदलते रहते हैं ।

एक अवधारणा के अनुसार पाठ्यक्रम विकास के मॉडलों को तकनीकी अर्थात् वैज्ञानिक और गैर-तकनीकी अर्थात् गैर वैज्ञानिक के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है । तकनीकी मॉडल के पक्ष में वे शिक्षाविद् हैं जो विषय-वस्तु केन्द्रित उपागम को महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि दूसरी ओर ऐसे शिक्षाविद् जो शिक्षार्थी-केन्द्रित उपागम को महत्व देते हैं । वे गैर-तकनीकी मॉडल को मान्यता देते हैं ।

निम्न रेखाचित्र द्वारा तकनीकी एवं गैर-तकनीकी मॉडल्स को भली प्रकार से समझा जा सकता है

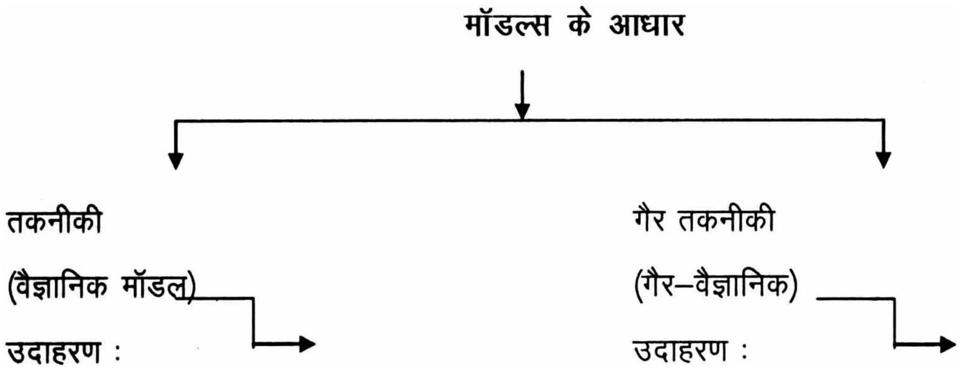

मॉडल्स के आधार

वैज्ञानिक मॉडल/तकनीकी मॉडल	गैर-तकनीकी/गैर-वैज्ञानिक मॉडल
(a) Taba Model (टाबा मॉडल)	1. विन्स्टीन-फिन्टनी मॉडल। (Weinsteen-Fanteeny Model)
(b) Taylor Model (टेलर मॉडल)	2. मुक्त कक्षा मॉडल

(c) सेलर और अलैग्जेण्डर मॉडल
(Saylerand Alexander Model)

(open class model)

3. रोजर्स का अन्र्तवैयक्तिक सम्बन्ध मॉडल (Rogers inter personal related model)

(d) हनकिन्स मॉडल (Hunkins Model)

(e) मिल्लर एवं सैलर मॉडल
(Miller and Seller Model)

(f) (गुडलैड मॉडल) (Goodlad Model)

10.4 टेलर मॉडल (Taylor's Model)

टेलर का मॉडल तकनीकी /वैज्ञानिक उपागम पर आधारित मॉडल है । इनके अनुसार पाठ्यक्रम का विकास करते समय निर्माणकर्ता को निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखना 'चाहिये, जो किसी भी पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख बिन्दु है । ये बिन्दु निम्नलिखित है :-

1. विद्‌यालय का (के) प्रयोजन
2. इन प्रयोजनों (उद्देश्यों) से सम्बन्धित शैक्षिक अनुभव
3. इन शैक्षिक अनुभवों का संगठन
4. इन प्रयोजनों की प्राप्ति के लिये मूल्याँकन

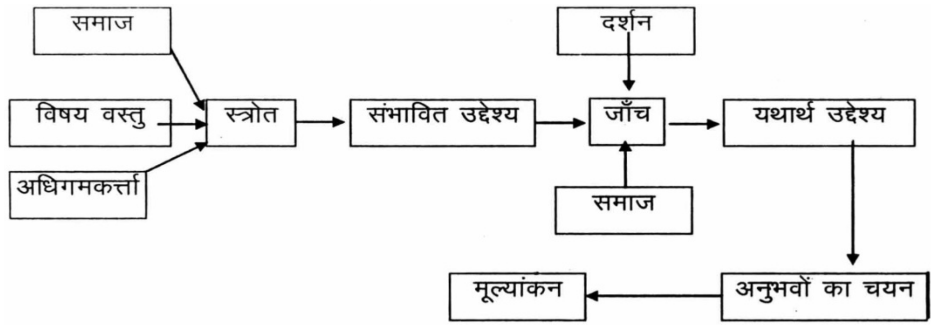

रेखा चित्र - 10.1 टेलर का पाठ्यचर्या विकास मॉडल

उपरोक्त रेखाचित्र से टेलर द्‌वारा प्रतिपादित पाठ्यचर्या विकास मॉडल को समझा जा सकता है । पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें संभावित उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है। हम यह भी जानते हैं कि यह उद्देश्य हम तीन प्रमुख स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर निर्मित करते हैं । यह प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित है

(i) समाज (ii) विद्‌यार्थी

(ii) विषय वस्तु

जो उद्देश्य हम इन स्त्रोतों से प्राप्त करेंगे वे सामान्य उद्देश्य होंगे । हमें इन सामान्य उद्देश्यों को विशिष्ट अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में परिवर्तित करना होगा । इस कार्य हेतु हम शिक्षा के दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों व नियमों व शिक्षण सूत्रों को भी ध्यान में रखेंगे । तत्पश्चात जब हम इन सामान्य उद्देश्यों को विशिष्ट अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में परिवर्तित कर देंगे तब हम उनकी प्राप्ति के लिये उचित एवं उपयुक्त अधिगम अनुभवों का चयन कर सकते

हैं । यदि हम अवबोधात्मक उद्देश्य की प्राप्ति करवाना चाहते हैं तो कक्षा-शिक्षण में हमें उसे ध्यान में रखकर ही शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया (Teaching Learning) करवानी होगी ।

उपयुक्त अधिगम अनुभव देने के पश्चात विद्यार्थियों की समझ की जाँच हेतु मूल्यांकन किया जाता है । यह मूल्यांकन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान भी हो सकता है और शिक्षण समाप्त करने के बाद भी किया जा सकता है । इसे मौखिक व लिखित दोनों रूपों में सम्पन्न करवाया जा सकता है ।

मूल्यांकन के द्वारा हमें प्रतिपुष्टि Feedback प्राप्त होती है जिसमें हमें सूचना मिलती है कि हमने जो उद्देश्य निर्धारित किये थे उन्हें प्राप्त करने में हमें कितनी सफलता मिली?

10.5 टाबा का माडल (Taba ModelI)

वैज्ञानिक उपागम पर आधारित यह मॉडल हिल्डा टाबा (Hilda Taba) द्वारा प्रतिपादित किया गया है । यह मॉडल **Hilda Taba** Comprehensive Evaluation Curriculum Model अर्थात् हिल्डा टाबा का व्यापक मूल्यांकन पाठ्यक्रम प्रतिमान भी कहलाता है । हिल्डा टाबा पाठ्यक्रम के प्रारूप को विकसित करने में मूल्यांकन की भूमिका को महत्वपूर्ण मानती है । यहाँ पर मूल्यांकन का अर्थ शिक्षण आयाम से है, परीक्षण से नहीं । बी.एस.ब्लूम **B.S.Bloom** ने मूल्यांकन शब्द का प्रयोग किया है । ब्लूम ने मूल्यांकन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है - **"Evaluation is the process of gathering and interpreting evidence on the changes in behavior of all the students as they progress through school."**

"विद्यालयों में छात्रों की प्रगति हेतु उनके व्यवहार के सम्बन्ध में प्रमाणों को एकत्रित करने तथा उनका अर्थापन करने की प्रक्रिया मूल्यांकन कहलाती है ।"

टाबा ने अपने व्यापक मूल्यांकन पाठ्यक्रम प्रतिमान Comprehensive Evaluation Curriculum Model के अन्तर्गत चार प्रमुख सोपानों का उल्लेख किया है जिन्हें प्रतिमान के रेखाचित्र में प्रदर्शित किया गया है-

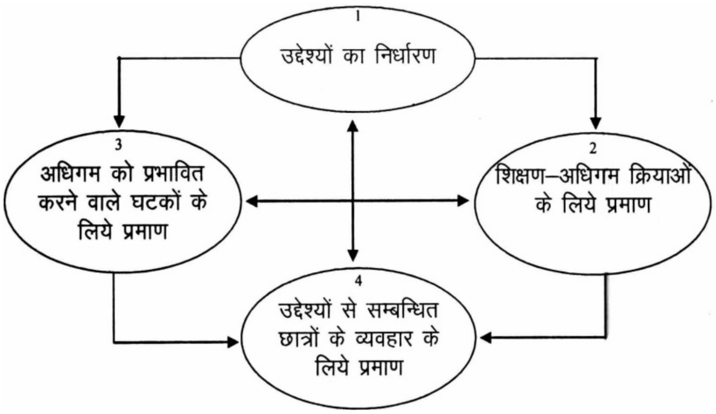

रेखा चित्र10.2: हिल्डा टाबा का पाठ्यक्रम प्रतिमान

1. प्रथम सोपान-उद्देश्यों का निर्धारण Identification of objectives

इस सोपान के अन्तर्गत विद्यार्थियों के मानसिक स्तर एवं विषय-वस्तु की प्रकृति के अनुरूप अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है । विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों जैसे ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, सृजनात्मक एवं प्रत्यक्षीकरण उद्देश्यों से सम्बन्धित अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है ।

2. द्वितीय सोपान-शिक्षण अधिगम क्रियाओं के लिए प्रमाण Evidence for/on Teaching Learning operation

जब प्रथम सोपान के अन्तर्गत अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का निर्धारण हो जाता है, तब द्वितीय चरण में उन उद्देश्यों को किस तरह से प्राप्त किया जा सकता है ? इस पर चर्चा की जाती है । इस सोपान के अन्तर्गत विषय-वस्तु की प्रकृति एवं विद्यार्थियों के कक्षा स्तर को ध्यान में रखकर समुचित शिक्षण विधियों, प्रविधियों, शिक्षण-कौशलों एवं अनुदेशनात्मक सहायक सामग्री; "Supporting teaching learning material" आदि का चयन किया जाता है, जिससे शिक्षक जब वह पाठ्यक्रम कक्षा-शिक्षण में पढाये तो अधिगम हेतु प्रभावी अधिगम परिस्थितियात्र विकसित / उत्पन्न हो सके तथा विद्यार्थी अधिक से अधिक लाभान्वित होकर अधिगम-अनुभव प्राप्त कर सके ।

3. तृतीय सोपान-अधिगम को प्रभावित करने वाले घटकों के लिये प्रमाण:(Evidence on factors affecting learning)

इसके अन्तर्गत अधिगम को प्रभावित करने वाले घटकों पर विचार-विमर्श किया जाता है अर्थात् वे कौन-कौन से कारक हैं जिनसे कक्षा-शिक्षण करते समय अधिगम प्रभावित हो सकता है । उदाहरण के लिये-यदि कक्षा का वातावरण प्रजातान्त्रिक हो तो विद्यार्थी अपने आप को भय मुक्त महसूस करता है । अन्य उदाहरण के रूप में हम देखते हैं कि यदि कक्षा में शिक्षक विद्यार्थियों को सही उत्तर देने पर सकारात्मक पुनर्बलन देता है, उसे प्रोत्साहित करता है तो अधिगम प्रभावी होता है । ऐसे ही अन्य कई कारक है जिन्हें अपनाकर विद्यार्थियों के अधिगम अनुभवों को प्रभावी, रोचक एवं स्थायी बनाया जा सकता है ।

दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग यदि शिक्षक द्वारा सहायक अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में किया जाता है । तब भी अधिगम प्रभावी व रूचिकर होता है । ।

4. चतुर्थ सोपान-उद्देश्यों से सम्बन्धित छात्रों के व्यवहारों के लिए प्रमाण:(Evidence on pupil behaviour pertaining objective)

अन्तिम सोपान के अन्तर्गत पाठ्यक्रम की सार्थकता एवं उपादेयता की जाँच प्रथम सोपान में निर्धारित किये गये उद्देश्यों की दृष्टि से की जाती है । अर्थात् यह परखा जाता है कि पाठ्यक्रम विकास करते समय जो अनुदेशनात्मक उद्देश्य निर्धारित किये गये थे, क्या उन्हीं के अनुकूल विद्यार्थियों को कक्षा-शिक्षण में शिक्षक द्वारा अधिगम-अनुभव प्रदान किये गये अथवा नहीं ? क्या अधिगम की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले घटकों / कारकों पर विचार-विमर्श किया गया या नहीं ।

इस प्रकार परीक्षण का स्वरूप उद्देश्य केन्द्रित होता है । अत: विद्यार्थियों में उचित प्रकार का व्यवहारगत परिवर्तन दृष्टिगत हो इसके लिये प्रमाणों का संकलन किया जाता है । इन प्रमाणों के आधार पर पाठ्यक्रम का सुधार व विकास किया जाता है ।

हिल्डा का मानना है कि पाठ्यक्रम निर्माण में उन लोगों की भागीदारी अवश्य होनी चाहिये जो वास्तव में इसका उपयोग करते हैं । क्योंकि इसके पीछे उनकी दृष्टि यह थी कि यदि पाठ्यक्रम का उपयोग करने वाले शिक्षकों की सहभागिता पाठ्यक्रम निर्माण करते वक्त होगी तो तैयार पाठ्यक्रम ज्यादा व्यवहारिक व उपयोगी बन पायेगा ।

टाबा के अनुसार शिक्षकों को अपने विद्यार्थियों के लिये स्वयं शिक्षण-सामग्री तैयार करनी चाहिये । उन्हें परम्परागत निगमनात्मक (Inductive approach) उपागम के स्थान पर आगमनात्मक उपागम (Deductive approach) अपना कर विशिष्ट से सामान्य का शिक्षण सूत्र अपनाना चाहिये ।

कई विद्वानों ने हिल्डा टाबा; **(Hilda Taba)** के आधारभूत पाठ्यक्रम मॉडल में सात सोपानों का वर्णन किया है जो निम्नलिखित हैं-

1. आवश्यकताओं की सूची बनाना अर्थात् निर्धारण करना ।
2. उद्देश्यों का निर्माण/निर्धारण ।
3. विषय-वस्तु का चयन ।
4. विषय-वस्तु का संगठन ।
5. अधिगम अनुभवों का चयन ।
6. शिक्षण अनुभवों का संगठन तथा
7. मूल्यांकन

प्रत्येक सोपान के लिये शिक्षकों को विशिष्ट निवेश जुटाने पड़ते हैं ।

यद्यपि टाबा के मॉडल में बहुत सी अच्छाइयाँ है किन्तु आलोचकों के अनुसार इस मॉडल में कतिपय दोष भी हैं जो निम्नलिखित हैं:-

- इस मॉडल में शिक्षकों से बहुत अधिक अपेक्षाएँ हैं हर शिक्षक पाठ्यक्रम विकास में निपुण नहीं होता ना ही प्रत्येक शिक्षक प्रभावी अधिगम हेतु अधिगम अनुभवों को प्रदान कर सकता है ।
- शिक्षकों के पास पाठ्यक्रम निर्माण के लिये अतिरिक्त समय नहीं होता है ना ही उनकी भागीदारी आवश्यक समझी जाती है ।
- इस मॉडल में विद्यार्थियों को एक विशेष तकनीकी प्रक्रिया से गुजर कर अधिगम अनुभव प्राप्त करने होते हैं जो असंभव नहीं अपितु मुश्किल है ।

10.6 सेलर-अलैग्जेंडर मॉडल (Saylor and Alexander Model)

सेलर एवं अलैग्जेंडर द्वारा प्रस्तावित मॉडल पाठ्यक्रम आयोजन का प्रक्रिया प्रतिमान **(Process Model of curriculum Planning by Saylor and Alexander)** कहलाता है । इन्होंने पाठ्यचर्या-विकास का एक व्यवस्थित मॉडल प्रस्तुत किया जिसे चित्र 10.3 में दर्शाया गया है ।

जैसा कि चित्र से स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम निर्माण में सर्वप्रथम पाठ्यक्रम के लक्ष्य, उद्देश्य एवं क्षेत्र निश्चित किये जाते हैं । इन्हें निर्धारित करने के लिये छात्रा/विद्यार्थियो सामाजिक मूल्य, संरचना एवं मांग, विद्यालयों के लक्ष्य एवं कार्य, ज्ञान की प्रकृति, अधिगम, प्रक्रिया आदि को ध्यान में रखना होता है ।

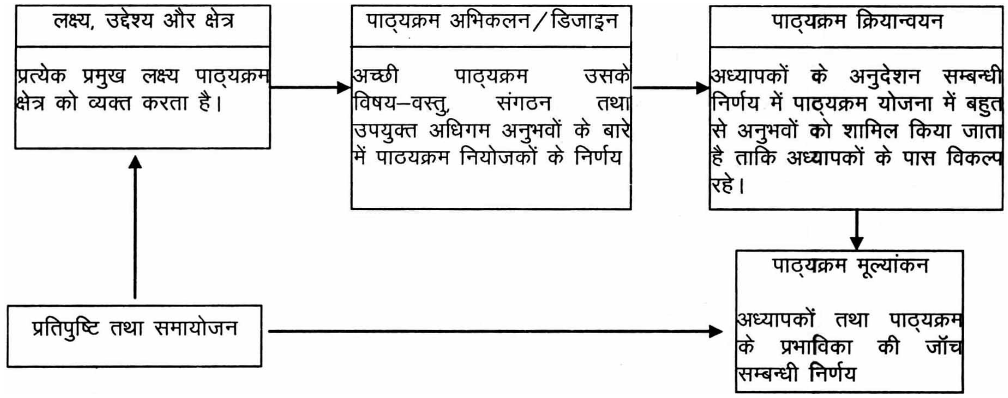

रेखा चित्र 10.3 : सेलर अलैग्जेंडर मॉडल

ये पाठ्यक्रम के उद्देश्य निर्धारण के प्रमुख तत्व हैं । इनकी सहायता के बिना पाठ्यक्रम के उद्देश्य निर्धारित करना असंभव है । ये तत्व निर्माणकर्ता का मार्गदर्शन करते हैं । तत्पश्चात् पाठ्यक्रम आयोजक विभिन्न कार्यात्मक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षाविदों की सहायता से पाठ्यक्रम की विषय वस्तु, विषय वस्तु के संगठन तथा उपयुक्त अधिगम-अनुभवों के बारे में निर्णय लेते हैं । पाठ्यक्रम की विषय वस्तु का चयन एवं संगठन कर लेने के उपरान्त इस बात पर चर्चा की जाती है कि इसका क्रियान्वयन कैसे करना है । ये निर्णय राष्ट्रीय स्तर, विद्यालय स्तर तथा कक्षा-स्तर पर लिये जाते हैं ।

मूल्यांकन से प्रति पुष्टि मिलती है जिसके आधार पर पाठ्यक्रम में संशोधन किया जाता है ।

10.7 सारांश (Summary)

प्रस्तुत इकाई के सारांश के रूप में हम सम्पूर्ण इकाई के अन्तर्गत पढ़े हुये मुख्य बिन्दुओं का पुन: स्मरण करेंगे और इस पुनरावृत्ति से हम सम्पूर्ण इकाई को पुन : अवलोकित करेंगे कि अब तक इस खण्ड की इस इकाई में हमने क्या-क्या पढ़ा व सीखा?

इस इकाई में हमने पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में अध्ययन किया । इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम विकास के मॉडल से क्या अभिप्राय है? पाठ्यक्रम विकास के मॉडल कितने प्रकार के होते हैं? इसके अन्तर्गत हमने तकनीकी एवं गैर-तकनीकी मॉडल्स के विषय में जानकारी प्राप्त की । उनमें से कुछ मॉडल्स का जैसे टेलर, टाबा, अलैग्जेण्डर आदि द्वारा प्रस्तावित मॉडल्स का विस्तार से अध्ययन किया ।

मूल्यांकन प्रश्न(Evaluation Question)

1. विद्यालयी पाठ्यक्रम निर्माण करते समय किन बातों का विशेष ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है?

2. विद्यालय पाठ्यक्रम के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए ।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ(References)

1. Bhatt, B.D. and Sharma, S.R. Principles Curriculum Construction, Kanishka Publishing House,Delhi 1992
2. Leese Joseph et al : The Teacher in Curriculum Making,New York, Harper And Raw ,1961
3. National Policy of Education : Ministry of Human Resource Development, New Delhi, Govt. of India,1986
4. Nicholls, Aurdrey et al: Developing a Curriculum: A Practical Guide, London, George Allen and Unwin,1978
5. Patel A.S. and Lulla B.P.(ed.) : Curriculum improvement in Secondary Education, Baroda CASE M.S. University,1965
6. Pillai K.S.: Curriculum and Standards,Trivandrum,Kala Niketan,1972
7. Sharma R.A: Curriculum Development (Hindi) Meerut Loyal Book Depot 1997

इकाई 11

पाठ्यक्रम मूल्यांकन : मूल्यांकन की अवधारणा, आवश्यकता एवं महत्त्व

(Curriculum Evaluation :Concept of Evaluation, Need and Importance)

इकाई की रूपरेखा (Structure of the Unit)

11.0 उद्देश्य (Objectives)
11.1. प्रस्तावना (Introduction)
11.2. पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन (Curriculum and Evaluation)
11.3. पाठ्यक्रम मूल्यांकन का सम्प्रत्यय (Concept of Curriculum Evaluation)
11.4. पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता (Need of Curriculum Evaluation)
11.5. पाठ्यक्रम मूल्यांकन का महत्व (Importance of Curriculum Evaluation)
11.6. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्त्रोत (Source of Curriculum Evaluation)
11.7. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्वरूप (Forms of Curriculum Evaluation)
11.8. पाठ्यक्रम मूल्यांकन की पद्धतियाँ (Methods of Curriculum Evaluation)
11.9. सारांश (Summary)
11.10. संदर्भ ग्रन्थ (References)

11.0 उद्देश्य (Objectives)

पाठ्यक्रम संरचना को सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक प्रासंगिकता में देखना अति आवश्यक हो गया है, जिससे कि पूर्व निर्धारित राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्ति के लिए प्रभावी प्रयास किये जा सकें । पाठ्यक्रम सिद्धान्त प्रसंग आधारित होते हैं किन्तु क्रियाशीलता में उसका अध्ययन होना चाहिए । अत: यह आवश्यक हो जाता है कि पाठ्यक्रम सम्बन्धी प्रक्रिया में पाठ्यक्रम मूल्यांकन को उचित स्थान किया जाये और परिणाम स्वरूप प्राप्त पृष्ठपोषण (Feed back) द्‌वारा उसमें उत्कृष्टता लाने के हर संम्भव प्रयास किये जायें । इस इकाई की समाप्ति के पश्चात् आप अधोलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे -

पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे ।
पाठ्यक्रम मूल्यांकन को परिभाषित कर सकेंगे ।
पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता एवं महत्व से परिचित हो सकेंगे ।
पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्त्रोतों का वर्णन कर सकेंगे ।
पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्वरूप को समझ सकेंगे ।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन की पद्धतियों का वर्णन कर सकेंगे ।

11.1 प्रस्तावना ((Introduction)

किसी भी राष्ट्र की विद्यालयी पाठ्यक्रम उसके संविधान की भाँति उसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है । पाठ्यक्रम जनमानस की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं को परिलक्षित करता है तथा समाज एवं राष्ट्र के सामाजिक चिंतन को प्रतिबिम्वत करता है । इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति उन सामाजिक, आर्थिक, लोकतान्त्रिक एवं राजनैतिक तथ्यों पर आधारित होती है जिसके द्वारा संविधान की आवश्यकताओं को शिक्षा द्वारा प्रगतिशील राष्ट्र बनाया जा सके । उदाहरण के लिए हमारा भारतीय संविधान एक लोकतान्त्रिक समाज के निर्माण की आकांक्षा रखता है तथा एक एकीकृत समाज का निर्माण करना चाहता है । यह संवैधानिक आवश्यकतायें राष्ट्रीय शिक्षानीति में भी परिलक्षित होती है और शिक्षा द्वारा इनके मूल्यों को समस्त विद्यार्थियों में विकसित किया जाता है । विद्यालयी शिक्षा पाठ्यक्रम इस कार्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि पाठ्यक्रम का प्रत्यक्षत: सम्बन्ध अध्यापक, शिक्षण तथा विद्यालयों से है जिसके द्वारा यह सैद्धान्तिक अवधारणाओं को व्यावहारिक गति प्रदान करता है । अब आप पाठ्यक्रम, शिक्षक, शिक्षण, विद्यालयों तथा मूल्यांकन के सम्बन्ध की कल्पना कीजिए तथा स्पष्ट करने का प्रयास भी करें ।

11.2 पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन (Curriculum and Evaluation)

पाठ्यक्रम समस्त अधिगम अनुभवों का समूह है । जिसे छात्र अधिगम प्रक्रिया के रूप में ग्रहण करते हैं तथा जिसे विद्यालय अथवा विद्यालय प्रणाली द्वारा नियोजित एवं संचालित किया जाता है । यह समस्त संरचना पूर्व निर्धारित शैक्षिक लक्ष्यों पर आधारित होती है जिसका सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्था से होता है । पाठ्यक्रम प्रक्रिया छात्र के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिये आयोजित की जाती है । पाठ्यक्रम प्रक्रिया स्वयं में गतिशील एवं परिवर्तनशील होती है और इसे अनेक तत्व प्रभावित करते हैं । पाठ्यक्रम प्रक्रिया व्यापक होती है इसीलिये इसका सम्बन्ध शिक्षक, अनुदेशन, शिक्षण-सामग्री, विद्यालयी वातावरण एवं मूल्यांकन से होता है । कुछ विद्वान पाठ्यक्रम का सह सम्बन्ध, शैक्षिक उद्देश्य तथा मूल्यांकन से जोड़कर इन्हें मिलाकर एक प्रक्रिया मानते हैं । **प्रोफेसर वील्डर (1967)** ने निम्न चित्र द्वारा इस प्रकार का सह-सम्बन्ध स्पष्ट किया जिसको आज भी पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लिये उपयुक्त समझा जाता है-

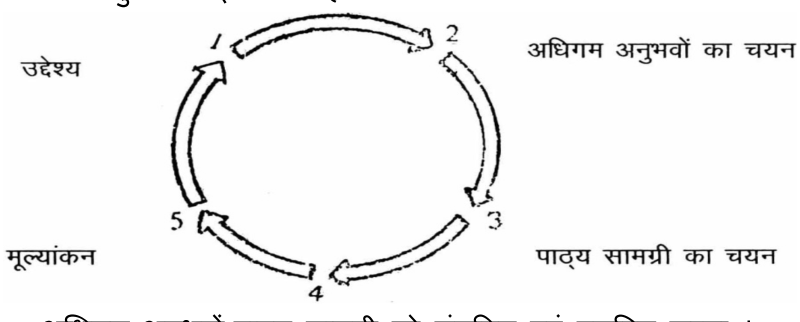

अधिगम अनुभवों,पाठ्य सामग्री को संगठित एवं एकत्रित करना ।

मूल्यांकन का अर्थ कक्षा-शिक्षण में दिये गये अनुभवों का प्रभाव जानना है । इसके साथ-साथ मूल्यांकन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुये हैं, इनका ज्ञान करना भी होता है, कक्षा-शिक्षण में जो अधिगम अनुभव आयोजित किये गये, वे कितने प्रभावशाली थे, इसका भी परीक्षण मूल्यांकन द्वारा होता है । मूल्यांकन एक प्रविधि है, जिसके द्वारा विकसित मूल्यों को जांचा जाता है तथा छात्रों को उसके आधार पर योग्यता श्रेणी में स्थान दिया जाता है। इस प्रविधि के कुछ आवश्यक तत्व निम्न प्रकार हैं-

प्रथम चरण में मूल्यांकन कब व कैसे किया जायेगा? यह स्पष्ट करना आवश्यक है ।

मूल्यांकन के लिये उपयुक्त उपकरण का चयन करना ।

चयनित उपकरण द्वारा अधिगम उपलब्धियों को मापना अर्थात् शिक्षक चयनित उपकरण का प्रयोग करके छात्रों की अधिगम उपलब्धि की जानकारी प्राप्त कर सकेगा जिससे प्रत्येक छात्र के अधिगम स्तर का आभास हो सके ।

चतुर्थ चरण में छात्रों की अपेक्षित मूल्यांकन की प्राप्त अधिगम उपलब्धि से की जा सकेगी ।

यह सर्वविदित है कि शिक्षण का मुख्य उद्देश्य छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन लाना है । यह परिवर्तन वांछित दिशा में होना चाहिए तथा सर्वांगीण भी । इनमें संज्ञानात्मक (Cognitive) भावात्मक (Affective) एवं मनोगत्यात्मक (Psychomotor) पक्ष सम्मिलित है । जब कक्षा शिक्षण इस संदर्भ में, किया जाता है तो मूल्यांकन, शिक्षण अधिगम का एक महत्वपूर्ण एवं एकीकृत भाग बन जाता है ।

विगत दशकों में शिक्षा अनुसंधान का एक नवीन क्षेत्र सामने आया है, जिसे पाठ्यक्रम मूल्यांकन (Curriculum evaluation) के नाम से जाना गया है । इस लेख में यह आवश्यक होगा कि आप पाठ्यक्रम मूल्यांकन को समझ सकें ।

11.3 पाठ्यक्रम मूल्यांकन का सम्प्रत्यय (Curriculum Evaluation)

पाठ्यक्रम मूल्यांकन एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है, जिसके द्वारा पाठ्यक्रम का अपेक्षित प्रभाव, छात्रों की अपेक्षित उपलब्धि तथा संसाधनों के सही उपयोग का आभास होता है । पाठ्यक्रम मूल्यांकन सन् 1960 के पश्चात् शैक्षिक जगत में प्रयोग में आने लगा । **एजूकेशन एन्साइक्लोपीडिया में पालहर्ड (1969)** ने स्पष्ट किया है कि पाठ्यक्रम मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों, विषय-वस्तु अनुदेशन सामग्री का अधिगम एवं शिक्षण के लिये उपयोग तथा समय एवं व्यय के उपयोग का आभास होता है । सामान्यत: पाठ्यक्रम मूल्यांकन का मुख्य कार्य पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता तथा व्यक्ति एवं समाज पर प्रभाव का पता लगाना है।

स्क्रीवेन (1967) के अनुसार पाठ्यक्रम मूल्यांकन एक विधिवत की जाने वाली प्रक्रिया है जिससे शैक्षिक उद्देश्यों की उपलब्धि के प्रमाण प्राप्त किये जाते है ।

प्रीतम सिंह ने पाठ्यक्रम मूल्यांकन के तीन मुख्य कार्य स्पष्ट किये हैं, जो निम्न हैं -

(i) निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संसाधनों का सही-सही उपयोग करना ।

(ii) नवीन पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों में अपेक्षित ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति का विकास करना है?

(iii) पाठ्यक्रम विकास हेतु कार्य में ली गई प्रविधि की प्रभावात्मकता ज्ञात करना ।

11.4 पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता (Need of Curriculum Evaluation)

यदि किसी विशिष्ट स्तर की पाठ्यचर्या में बहुत समय तक सुधार नहीं किया जाता है तो क्या होगा? आसानी से विचार कर इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है । यह पुराना हो जायेगा, क्षेत्र विशेष (सम्बन्धित विषय) की नवीन घटनाओं को इसमें स्थान प्राप्त नहीं हो पायेगा परिणामस्वरूप यह प्रभावी व कुशल नहीं होगा । अब प्रश्न यह उठता है कि एक प्रभावी एवं कुशल पाठ्यक्रम के विकास के लिए हमें क्या करना चाहिए? उत्तर स्वरूप हमें प्रचलित पाठ्यक्रम का समय-समय पर मूल्यांकन करते रहना चाहिए जिससे कि इसे अधिक प्रासंगिक बनाने के लिए इसमें बदलाव किये जा सकें । इसलिए एक पाठ्यक्रम के मूल्यांकन की आवश्यकता, विषय में उत्पन्न होती है । यदि किसी क्षेत्र विशेष में समय-समय पर विकास कार्य होते हैं और इन परिवर्तनों को सम्मिलित नहीं किया जाता है तो विद्यार्थी क्षेत्र विशेष की वास्तविकताओं को नहीं जान पायेंगे । अत: हाल की घटनाओं के समावेश तथा पाठ्यक्रम की संरचना में उन्हें उपयुक्त स्थान प्रदान करने की आवश्यकता है । यह वैज्ञानिक विश्लेषण पाठ्यक्रम मूल्यांकन होगा यदि इसे युक्ति युक्त रूप से किया जाय । एक पाठ्यक्रम, पेपर पर देखने में अच्छी लग सकता है लेकिन शिक्षार्थी की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुये वास्तविक उपलब्धि बेहतर नहीं मानता । उदाहरण के लिए माध्यमिक स्तर के शिक्षार्थी को स्तर पर पढ़ाये जाने वाले विषय के पढ़ाने के ढंग के बारे में कई शिकायतें हो सकती है । हम किस प्रकार पाठ्यक्रम कार्यान्वयन की प्रभावशीलता में सुधार ला सकते हैं जिससे कि माध्यमिक स्तर पर अपेक्षित स्तर की प्राप्ति की जा सके । पाठ्यक्रम मूल्यांकन अभ्यास पाठ्यचर्या के परिशोधन और प्रभावशीलता को उन्नत करने में हमारी सहायता करेगा ।

एक पाठ्यक्रम की कुशलता को बढ़ाने हेतु शिक्षा प्रणाली निर्गत और आगत का विश्लेषण करना होगा और विश्लेषण के फलस्वरूप प्राप्त आवश्यक संशोधन करने होंगे । ऐसा पाठ्यक्रम मूल्यांकन को सम्पन्न करके किया जा सकता है ।

11.5 पाठ्यक्रम मूल्यांकन का महत्व (Importance of Curriculum Evaluation)

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि हमें पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता क्यों होती हैं? इस प्रश्न का सीधा सा उत्तर छात्र के अधिगम में सुधार और इस प्रकार शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर बल देता है । पाठ्यक्रम मूल्यांकन के मुख्य प्रयोजन अधोलिखित हैं -

11.5.1 नवीन पाठ्यक्रम का विकास -

यदि आप उच्च माध्यमिक स्तर पर एक व्यावसायिक पाठ्यक्रम हेतु नवीन पाठ्यचर्या का विकास करना चाहते हैं तो एक अलग प्रणाली द्वारा वर्तमान पाठ्यक्रम का मूल्यांकन हमारी उभरती आवश्यकता के लिए लाभकारी होगा । इस हेतु प्रक्रिया होगी कि प्रचलित पाठ्यक्रम को हमारी नयी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए इसमें काँट-छाँट की जाए क्योंकि बहुधा योजना प्रक्रम में फैसले बेहद मनमाने ढंग से होते हैं । परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम के बोझिल होने का डर बना रहता है । नवीन पाठ्यक्रम के विकास पर वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने के लिए विद्यमान पाठ्यचर्या का मूल्यांकन करना आवश्यक है ।

11.5.2 विद्यमान पाठ्यक्रम को अद्यतन करना -

एक पाठ्यचर्या की कुशलता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि किसी पाठ्यक्रम में समाज के साथ हो चुके अव्यावहारिक विचारों, प्रक्रियाओं आदि को हटाया जाय और पाठ्यक्रम में प्रचलित समसामयिक परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाय । विषयवस्तु अथवा प्रक्रियाओं को शामिल करने अथवा विलोपन के बारे में वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने के लिए पाठ्यक्रम मूल्यांकन का उपयोग आवश्यक होगा ।

11.5.3 पाठ्यक्रम की समीक्षा -

शैक्षिक नीति योजना आयोजकों और निर्णय करने वाले की पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन पर तुरन्त प्रतिपुष्टि की आवश्यकता हो तो सभी सम्बद्ध उद्देश्यों की प्रभावी प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार उसमें संशोधन किये जा सकें ।

11.5.4 पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता की जाँच -

किसी पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने के लिए उसको अल्प तथा दीर्घ कालीन उद्देश्यों को प्राप्ति के सम्बन्ध में, पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का प्रयोग आवश्यक होगा । यह मूल्याकंन प्रमाणीकरण के प्रयोजन के लिये विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम के मूल्यांकन से भिन्न है । विभेद है कि पाठ्यक्रम का मूल्यांकन अधिक व्यापक है और इसमें शिक्षार्थी मूल्यांकन के अतिरिक्त शिक्षार्थियों में पाठ्यक्रम के विभिन्न अंगों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में निर्मित भावनाएँ भी शामिल है ।

पाठ्यक्रम मूल्यांकन, अध्यापकों और निर्णयकर्ताओं की पाठ्यक्रम तथा इसके विकास और कार्यान्वयन पर वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने में सहायता कर सकता है । इसमें कोई संदेह नहीं है, कि यह किसी पाठ्यक्रम मूल्यांकन कार्य का प्रमुख प्रयोजन है, मूल्यांकन के परिणामों का उपयोग भविष्य में किये जाने वाले शैक्षिक प्रयास को उन्नत करने में किया जा सकता है अन्यथा पाठ्यक्रम मूल्यांकन के किसी प्रयोग का कोई अर्थ नहीं है । प्रशासकों, नीति-निर्माताओं, शिक्षकों, माता-पिता तथा शिक्षार्थी भी उन तरीकों से सम्बन्धित हैं जिनके द्वारा किसी विद्यालयी पाठ्यक्रम को कार्यान्वित किया जा रहा है जिनके पास इसे उत्तरदायी बनाने के बहुत से कारण है । यह मात्र पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रक्रिया है । जो पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन

के स्तर पर शीघ्र प्रतिपुष्टि प्रदान कर सकती है । इसलिए इन कारणों से पाठ्यक्रम मूल्यांकन की प्रक्रिया महत्वपूर्ण बन जाती है ।

11.6 पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्त्रोत (Source of Curriculum Evaluation)

पाठ्यक्रम से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लिए विद्यालयी पाठ्यक्रम के बारे में जहाँ-जहाँ से सूचना एकत्र की जा सकती है वे सभी पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्त्रोत कहे जा सकते हैं । यथा-शिक्षार्थी, शिक्षक, विषय विशेष के ज्ञाता, पाठ्यक्रम विशेषज्ञ, नीति निर्माता आदि हैं । प्रमुख स्त्रोतों का विवरण अद्योलिखित है-

11.6.1 शिक्षार्थी -

एक विशेष पाठ्यक्रम के शिक्षार्थी इस कारण से प्रमुख एवं अधिक आवश्यक सूचना के स्त्रोत हैं कि अभीष्ट पाठ्यक्रम किस प्रकार प्रासंगिक है और किस प्रकार इसे कार्यान्वित किया जा रहा है । एक विशेष पाठ्यक्रम में अध्ययनरत शिक्षार्थियों पाठ्यक्रम मूल्यांकन हेतु पाठ्यक्रम सम्बन्धी विस्तृत सूचनायें दो प्रकार से एकत्रित की जा सकती हैं - **प्रथम** यह पता करके कि क्या शिक्षार्थियों ने वास्तव में अभीष्ट निर्गत विनिर्देशन प्राप्त किये हैं और क्या वे इस बात का अहसास करते हैं कि उन्हें पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति हो गयी है । इस प्रकार की सूचना सामान्यत: मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा एकत्रित की जाती है । **द्वितीय** - शिक्षार्थियों से यह मालूम करके कि वे कहाँ तक यह समझते हैं कि उन्होंने पाठ्यक्रम विशेष के उद्देश्यों की प्राप्ति की है । शिक्षार्थियों से प्राप्त यह सूचना गुणात्मक प्रकार की है क्योंकि यह शिक्षार्थियों के अनुभव पर आधारित है और ये पाठ्यक्रम में सुधार हेतु अधिक मूल्यवान हैं । इस प्रकार की मूल्यवान सामग्री का एकत्रीकरण उन शिक्षार्थियों से भी कर सकते हैं जो कक्षा उत्तीर्ण कर जा चुके हैं और वह पाठ्यक्रम कार्यान्वयन से अधिगम कर चुके हैं ।

11.6.2 शिक्षक -

पाठ्यक्रम मूल्यांकन विद्यालय के शिक्षकों द्वारा भी किया जाना चाहिए क्योंकि हम शिक्षक इस दृष्टि से पाठ्यक्रम के भाग हैं कि हम कक्षा में पाठ्यक्रम को पढ़ाने का कार्य करते हैं और इसी कारण हम पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना प्रदान कर सकते हैं । शिक्षक पाठ्यक्रम मूल्यांकन के बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधन है । साथ ही वे शिक्षक भी जो वर्तमान में विषय को पढ़ा नहीं रहे लेकिन जिन्हें विषयवस्तु का पर्याप्त ज्ञान है और जिनके पास विशेष पाठ्यक्रम की पृष्ठभूमि की सूचना है, ऐसे शिक्षक भी पाठ्यक्रम मूल्यांकन में सहायक हो सकते हैं । बशर्ते शिक्षक के पास पाठ्यचर्या की समीक्षा के लिए अपेक्षित कुशलता प्राप्त हो । इस पाठ्यक्रम के उद्देश्य में से एक उद्देश्य आपकी इस योग्यता के विकास में सहायक होना भी है ।

11.6.3 विषय विशेष के ज्ञाता अथवा विषय विशेषज्ञ -

पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन पर विशेष रूप से अनुशासन की दृष्टि से यह आवश्यक ही है कि इस क्षेत्र के अन्य विषय विशेषज्ञों के विचारों पर उनको संगत और विश्वसनीय मानकर विचार किया जाय । विषय विशेषज्ञ अन्य वर्गों जैसे क्षेत्र में कार्यरत अथवा स्वनियोजित विद्वान व्यक्ति भी हो सकता है । क्योंकि विशेषज्ञ क्षेत्रीय परिस्थितियों के सम्बन्ध में मुख्य सूचनायें देंगे जो पाठ्यचर्या मूल्यांकन की दृष्टि से अधिक ' मूल्यवान साबित होगी ।

11.6.4 पाठ्यक्रम विशेषज्ञ -

पाठ्यचर्या विशेषज्ञ पाठ्यचर्या विकास हेतु शिक्षार्थियों की दृष्टि से अति उपयोगी जानकारी आधुनिक तकनीक के बारे में दे सकते हैं । वर्तमान में किसी सोद्देश्य पाठ्यचर्या में यह स्पष्ट किया जाने लगा है कि शिक्षार्थी पाठ्यचर्या विशेष के अन्त तक क्या करने योग्य हो सकेंगे अर्थात् पाठ्यक्रम के उद्देश्य अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन (Desired behavioural change or learning out comes) के रूप प्रारम्भ में ही स्पष्टत: लिख दिये जाते हैं । ' केवल इतना हो नहीं बल्कि किन परिस्थितियों में उन्हें यह आचरण करना होगा और त्रुटियों की स्वीकृति का संतुलन क्या होगा । पाठ्यचर्या विशेषज्ञों ने प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसलिए पाठ्यचर्या मूल्यांकन में इनका योगदान अपरिहार्य हो जाता है।' अत: पाठ्यचर्या विशेषज्ञ पाठ्यचर्या मूल्यांकन हेतु जानकारी के अच्छे स्त्रोत हैं ।

11.6.5 समुदाय -

पाठ्यक्रम मूल्यांकन हेतु स्थानीय समुदाय में एक विशिष्ट पाठयक्रम का शिक्षित व्यक्ति जानकारी प्रदान करने के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत के रूप में कार्य कर सकता है । स्थानीय समुदाय की पाठ्यक्रम सम्बन्धी जरूरतें पाठ्यचर्या को प्रासंगिक तथा आवश्यकता आधारित अथवा अनुपयोगी बना सकती हैं । समुदाय की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं के आधार पर ही संशोधित पाठ्यचर्या समाजीकृत और जिम्मेदार नागरिक विकसित कर समुदाय के उद्देश्य की अधिकतम प्राप्ति कर सकेगी ।

11.6.6 शैक्षिक नीति निर्माता -

राष्ट्रीय स्तर की शीर्ष शैक्षिक निकाय यथा- केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सी.बी.एस.सी.) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.), राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय (एन.ओ.एस.), राज्य स्तरीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड में प्रतिष्ठित पदों पर आसीन नीति निर्माता भी पाठ्यचर्या मूल्यांकन हेतु जानकारी के अच्छे स्त्रोत हैं । अपने पदों के कारण इन्हें अर्थ व्यवस्था कृषि एवं शिक्षा आदि की अच्छी जानकारी रहती है जिसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सम्बन्ध विद्यालयी पाठ्यक्रम से होता है । इसलिए शैक्षिक नीति-नियामक निकायों में प्रतिष्ठित पदों पर आसीन विद्वान पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लिए महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं।

11.6.7 विरत छात्र समूह -

विरत छात्र समूह से तात्पर्य ऐसे शिक्षार्थियों से है जो किसी एक विशिष्ट पाठ्यक्रम की पढ़ाई बीच में ही छोड़ कर जा चुके हैं वे भी पाठ्यक्रम मूल्यांकन हेतु उपयोगी स्त्रोत बन सकते हैं । इस प्रकार के शिक्षार्थी पाठ्यक्रम के उन कारकों की ओर संकेत कर सकते हैं जो उनके द्वारा पाठ्यक्रम छोड़ने के लिए उत्तरदायी साबित हुये। पाठ्यक्रम से अलग हुये इन शिक्षार्थियों हेतु एक नैदानिक परीक्षा आयोजित कर वर्तमान पाठ्यक्रम द्वारा उत्पन्न भ्रान्ति के सम्बन्ध में मूल्यवान जानकारी प्राप्त हो सकती है जो पाठ्यक्रम संशोधित करने में अहम भूमिका का निर्वाह कर सकती है ।

11.7 पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्वरूप (Forms of Curriculum Evaluation)

पाठ्यक्रम मूल्यांकन के विभिन्न स्वरूप प्रचलन में है जो मूल्यांकन प्रक्रिया को व्यापक क्रियाकलाप वाली बना देते हैं । इनमें से कुछ प्रमुख स्वरूप निम्नलिखित है -

11.7.1 पूर्व परीक्षण/पश्च परीक्षण.

यह पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का बहुतायत रूप से प्रयोग में लाने वाले स्वरूपों में एक है। इसमें परीक्षा का आयोजन शिक्षार्थियों द्वारा पाठ्यक्रम समाप्ति पश्चात् उनके समस्त व्यवहार की जाँच करने के लिए किया जाता है । कभी-कभी परीक्षा हेतु परीक्षण के दो समान्तर रूप जैसे परीक्षण-प्रथम एवं परीक्षण-द्वितीय तैयार कर लिए जाते हैं । इन परीक्षणों में से एक परीक्षण शिक्षार्थियों के पाठ्यक्रम आरम्भ होने से पहले उनके ज्ञान के स्तर का मूल्यांकन करने के लिए ली जाती है । इस पूर्व परीक्षण पर प्राप्त किये गये अंक निर्धारित कसौटी पर अपेक्षित सत्रांत व्यवहार की तुलना में छात्र के स्तर को दर्शाते हैं । इसके बाद शिक्षार्थियों को पूर्व योजनानुसार पाठ्यक्रम अनुभव स्थितियाँ प्रदान की जाती हैं और अन्त में शिक्षार्थियों की द्वितीय परीक्षण ली जाती है । पूर्व परीक्षा और पश्च परीक्षा में प्राप्त अंकों में प्राप्त अन्तर का काल पाठ्यचर्या की प्रभावशीलता सम्बन्धी संकेत बताया जाता है और इस प्रकार यह पाठ्यक्रम के मूल्यांकन का एक तरीका है । यदि पाठ्यचर्या निर्माता की अपेक्षानुसार सुधार ठोस है तो इसे पाठ्यक्रम की सशक्तता को साबित करता है । यदि पश्च परीक्षा अधिकांश शिक्षार्थियों द्वारा अथवा शिक्षार्थियों के एक समूह द्वारा प्राप्त नहीं किये गये तो संकेत मिलता है कि पाठ्यक्रम को संशोधित नहीं किया गया है । पाठ्यक्रम मूल्यांकन की इस पूर्व तथा पश्च परीक्षण के रूप को निम्न आरेखी चित्र द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है -

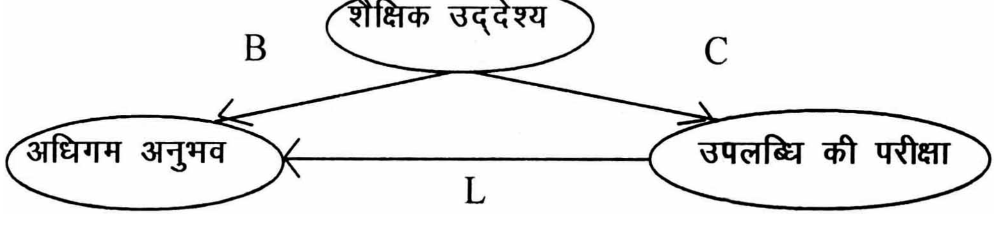

11.7.2 मानक संदर्भित परीक्षण तथा कसौटी संदर्भित परीक्षण (Norm reference and curitirian reference test). किसी एक पाठ्यक्रम का परीक्षण एक पूर्व नियोजित कसौटी जिसे कसौटी संदर्भित परीक्षण कहा जाता है अथवा एक सामान्य वितरण जिसे मानक संदर्भित परीक्षण कहा जाता है । जैसे एक मानक संदर्भित परीक्षण का प्रयोग किया जाता है जहाँ परीक्षण के परिणामों का प्रयोग पाठ्यचर्या के दो सैटों का मिलान करने के लिए किया जाता है । इस प्रकार के परीक्षण के आधार पर पाठ्यचर्या के स्तर को उच्च व निम्न कहा जा सकता है । जबकि कसौटी संदर्भित परीक्षण में पाठ्यक्रम के उद्देश्यों को उनके व्यवहारगत परिवर्तन के रूप में सूचीबद्ध किया जाता है और उन परिस्थितियों को ब्यौरा दिया जाता है जिनमें इस कसौटी का निरीक्षण करना है । इस कसौटी को किस सीमा तक सहिष्णुता देते हुये स्वीकारा जाए इसको भी सूचीबद्ध किया जाता है । पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन से यदि उद्देश्य विनिर्दिष्ट स्तर तक प्राप्त कर लिए जाते हैं तो इससे यह संकेत प्राप्त होता है कि किस सीमा तक पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्राप्त हो गया है । मानक से तुलना करके पाठ्यक्रम का मूल्यांकन उद्देश्यों की प्राप्त के लिए किया जा सकता है ।

11.7.3 संरचनात्मक / निर्माणात्मक मूल्यांकन (Formative evaluation). जब कोई भी विशिष्ट पाठ्यक्रम अपनी प्रारम्भिक या निर्माण की अवस्था में हो और उसका मूल्यांकन कर उसमें सुधार किया जा सके तो इस प्रकार के मूल्यांकन को संरचनात्मक मूल्यांकन कहा जाता है । किसी भी पाठ्यक्रम/शैक्षिक योजना का मूल्यांकन जब उसकी प्रभावशीलता गुणवत्ता, वांछनीयता या उपयोगिता को बढ़ाने के लिए किया जाता है तो वह संरचनात्मक या उपयोगिता मूल्यांकन कहा जाता है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी भी पाठ्यक्रम को अन्तिम रूप देने से पूर्व उसका मूल्यांकन कर उसमें सुधार करने की प्रक्रिया को ही निर्माणात्मक मूल्यांकन कह कर पुकारा जाता है । उदाहणार्थ-यदि किसी विषय विशेष के पाठ्यक्रम के प्रथम प्रारूप का मूल्यांकन यह उद्देश्य निर्धारित कर किया जाता है उसे प्रस्तुत करने एवं उस पर क्रियान्वयन करने से पूर्व उसमें वांछित सुधार कर उसे अधिक आवश्यकता बनाया जाये तो इस प्रकार के मूल्यांकन को हम संरचनात्मक मूल्यांकन कहते हैं । निर्माणात्मक मूल्यांकन पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया के दौरान किया जाता है । निर्माणात्मक मूल्यांकन के परिणाम पाठ्यचर्या के विकास करने वालों को प्रतिपुष्टि प्रदान करते हैं और पाठ्यक्रम में मालूम किये गये दोषों को दूर करने में सहायक होते हैं । इस प्रकार निर्माणात्मक मूल्यांकन पाठ्यक्रम निर्माण में संशोधन के अवसर प्रदान करता है । निर्माणात्मक मूल्यांकन के परिणाम दो क्रियाओं में सहायक हो सकते हैं (प) पाठ्यक्रम के घटकों के चयन और (पप) पाठ्यक्रम के अवयवों का संशोधन । इस दृष्टिकोण में संरचनात्मक मूल्यांकनकर्ता के कार्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

प्रथम- पाठ्यक्रम/शैक्षिक कार्यक्रम योजना के गुण-दोषों के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण एकत्रित करना ।

प्रथम- पाठ्यक्रम/शैक्षिक कार्यक्रम/योजना के गुण-दोषों के सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण एकत्रित करना।

द्वितीय- इन प्रमाणों के आधार पर पाठ्यक्रम की कमियों को सामने रखना ।

तृतीय- इन कमियों को दूर करके पाठ्यक्रम को अधिक प्रभावकारी रूप देने के लिए सुझाव प्रस्तुत करना ।

11.8 पाठ्यक्रम मूल्यांकन की पद्धतियाँ (Methods of Curriculum Evaluation)

पाठ्यक्रम मूल्यांकन बाह्य अभिकरण अथवा आन्तरिक (वे जो पाठ्यक्रम की योजना तथा विकास कार्य से सम्बन्धित हैं) अथवा दोनों वर्गो द्वारा कराया जा सकता है ।एक विस्तृत तथा वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन प्राप्त करने के लिए बाह्य तथा आन्तरिक व्यक्तियों के संयोजन को वरीयता दी जानी चाहिए । मूल्यांकन की पद्धतियां प्रश्नावली आधारित मूल्यांकन से असंरचित साक्षात्कार पर आधारित मूल्यांकन तक विभिन्न प्रकार की हो सकती है । सूचना के संकलन की विधि मूल्यांकन के उद्देश्य पर निर्भर कर सकती है । जब हमको पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन के अधिक गुणात्मक वर्णन की आवश्यकता है तो असंरचित अथवा संरचित अभिमतों का प्रयोग किया जा सकता है । जब हमको तैयार की जा रही पाठ्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के बारे में गुणात्मक सामग्री की आवश्यकता है तो एक जाँच-सूची का भी प्रयोग किया जा सकता है । इसी प्रकार मूल्यांकन के प्रयोजन और मूल्यांकन के स्तर को ध्यान में रखते हुए अर्थात् क्या मूल्यांकन विकास के स्तर और कार्यान्वयन के स्तर पर किया जा रहा है, कई अन्य तकनीक प्रयोग में लाई जा सकती है । पाठ्यक्रम मूल्यांकन योजना स्तर पर अधिकतर रोजगार विश्लेषण अथवा कार्य विश्लेषण तक सीमित है । इसी प्रकार विषय वस्तु विश्लेषण जो बाद में किया जाता है उसको भी निर्माणात्मक मूल्यांकन की सहायता की आवश्यकता है । इन क्रियाओं को सामान्यत: स्कूलों में प्रयोग में नहीं लाया जाता और इस तरह पाठ्यक्रम में कई कमियाँ आ जाती हैं । एक अच्छी तैयार की गई स्कूली पाठ्यक्रम में योजना स्तर पर एक मूल्यांकन चक्र भी निहित होता है ।

11.8.1 पाठ्यक्रम विकास के दौरान मूल्यांकन -

पाठ्यक्रम के विकास के दौरान मुख्य कार्यो में से एक कार्य पाठ्यक्रम के माध्यम से प्राप्त किए जाने वाले विशिष्ट उद्देश्यों की सूची तैयार करनी है । यदि एक बार सूची तैयार हो जाती है तो इसे मूल्यांकन चक्र से निकलना होता है । इस सूची को कार्यरत अध्यापकों को उनके विचार जानने, उसमें अतिरिक्त कुछ सम्मिलित करने, व हटाने के लिए दिया जा सकता है । कार्यरत अध्यापकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों जैसे प्रोडक्ट के भावी नियोक्ता, अगले उच्च ग्रेड के अध्यापक, भावी विद्यार्थियों के समूह, रोजगार, नियोजक तथा प्रशासकों इत्यादि के समूहों से सूचना यह जाँच करने के लिए ली जा सकती है कि क्या उनके ग्रेड का प्रवेश व्यवहार निर्गत विनिर्देशनों के अनुरूप है । मूल्यांकनकर्ताओं से संकलित प्रतिपुष्टि पर आधारित उद्देश्यों को संशोधित किया जा सकता है ।

द्वितीय कार्य जिसे पाठ्यक्रम के विकास के दौरान मूल्यांकन प्रयोग की सहायता की आवश्यकता है वह शिक्षण सामग्री है जिसे उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तैयार किया गया है । विद्यार्थियों के एक समूह पर इस सामग्री का परीक्षण करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों के

अनुभव से उनकी शिक्षा प्राप्ति उनके अधिगम में आयी समस्याएँ व कठिनाइयों की जानकारी प्रतिपुष्टि में मिल सके । लघु नमूने की एक क्षेत्रीय जाँच एक नमूने से पर्याप्त मूल्यांकन सूचना प्राप्त करने के लिये आदर्श है । इसका प्रयोग सामग्री के और अधिक सुधार के लिए किया जा सकता है । शिक्षा सामग्री के सन्निहित मूल्यांकन प्रयोगों में संकलित आकड़े शिक्षा सामग्री को संशोधित करने के काम भी लाए जा सकते हैं । यहाँ पाठ्यचर्या सामग्री का आशय उन सभी शिक्षा सामग्रियों से है जिसमें पाठ्यपुस्तकें, स्व-शिक्षा पाठ, श्रव्य और दृश्य कार्यक्रम, शिक्षक नियम पुस्तकें, नियत प्रोजेक्ट कार्य इत्यादि सम्मिलित है । इस प्रकार पाठ्यक्रम विकास के दौरान अपनायी गयी मूल्यांकन पद्धतियों की कठोर परीक्षा और सम्भवत: कठिन परीक्षा द्वारा एकत्रित आँकड़ो पर आधारित अधिक संशोधन की आवश्यकता है ।

11.8.2 पाठ्यक्रम कार्यान्वयन के दौरान मूल्यांकन -

पाठ्यक्रम का परीक्षण और पाठ्यक्रम सामग्री का यथावत संशोधन होने के बाद यह आवश्यक है कि अध्यापकों और प्रशासकों को पाठ्यक्रम के उचित कार्यान्वयन के लिए अभिमुख और प्रशिक्षित किया जाए । परिचायक अथवा सहायक पाठ्यक्रमों के बिना पाठ्यचर्या को कार्यान्वित नहीं किया जाना चाहिए, इससे नयी सामग्री का असन्तोषजनक ढंग से प्रयोग हो सकता है । किसी पाठ्यक्रम के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए सम्बंधित कर्मचारी वर्ग का प्रशिक्षण तथा सभी आवश्यक सुविधाओं तथा संसाधनों का प्रावधान आवश्यक है ।

पाठ्यक्रम को क्रियान्वित किये जाने तथा पाठ्यक्रम के प्रत्येक परिचालन के बाद मूल्यांकन आवश्यक है । इस अवस्था में मूल्यांकन का प्रयोजन दोहरा (क) स्कूलों में पाठ्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु आवश्यक सहायता के क्षेत्रों को मालूम करना तथा (ख) उत्पाद अर्थात् शिक्षित व्यक्ति की गुणवत्ता को नियंत्रण में रखना । इस अवस्था में एकत्र की जाने वाली आवश्यक सूचना में निम्नलिखित सभी सम्मिलित हैं।

(i) वर्तमान स्थिति - भारतीय विद्यालयों में कार्यान्वित किये जा रहे विभिन्न विषयों की पाठ्यचर्या के छुटे हुए पक्षों को ज्ञात करने के लिए पाठ्यचर्या योजना के अनुसार पाठ्यचर्या के सभी पहलुओं का अध्ययन करना जरूरी है । एक जाँच सूची जिसमें उद्देश्यों के सभी लक्षण तथा पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु शिक्षण अधिगम प्रक्रिया आरम्भ करने के लिये विद्यार्थियों की आवश्यक विशिष्टता, पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन के लिये अध्यापक की आवश्यक विशिष्टतायें, विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आधारभूत धारणायें कि किस प्रकार से शिक्षण और अधिगम होना चाहिये, पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक अतिरिक्त सामग्री, समय संबंधी आवश्यकताओं के संबंध में पाठ्यक्रम का आयोजन तथा विभिन्न क्रियाकलापों तथा सामग्री को प्रक्रियागत करने की कर्मपूर्वक व्यवस्था, पाठ्यक्रम के कार्यान्वयन की पद्धतियां तथा विद्यार्थियों के कार्य निष्पादन के मूल्यांकन को पाठ्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के क्रियान्वयन में असंगतियां अथवा अन्तराल का अनुमान लगाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है ।

(ii) पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता- पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता निर्धारित करने में निर्णायक प्रश्न है कि किस सीमा तक विद्यार्थी अपने मानक प्राप्त करते हैं अथवा उन उद्देश्यों को प्राप्त

करते हैं जिनका वर्णन पाठ्यक्रम योजना में किया गया है । इस प्रकार पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता यह दर्शाती है कि क्या पाठ्यक्रम, सामाजिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ है ।

सामान्यत: यह कम ही होता है कि समस्त विद्यार्थी विषय वस्तु के सभी उद्देश्यों को प्राप्त करें अत: यहाँ विचार योग्य प्रश्न है कि क्या अपेक्षित न्यूनतम संख्या में विद्यार्थी कसौटी के अनुसार निर्दिष्ट न्यूनतम संख्या में उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं? कार्यक्रम की प्रभावशीलता को आंकने की कसौटी को नियोजकों तथा पूर्व-विद्यार्थियों द्वारा प्रदान की गई प्रतिपुष्टि का सहारा लेना चाहिए ।

(iii) कार्यक्रम की स्वीकार्यता- पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता का अनुमान लगाने के अतिरिक्त इसकी स्वीकार्यता का अनुमान लगाना भी आवश्यक है । यहाँ स्वीकार्यता का अर्थ है कि लोग जो कार्यक्रम के कार्यान्वयन से सम्बंधित हैं इसे पसंद करते हैं अथवा नहीं । कार्यक्रम की स्वीकार्यता में अंतर्दृष्टि डाल कर स्कूल के विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा पर्यवेक्षकों/प्रशासकों के विचार मालूम करने चाहिये ।

(iv) कार्यक्रम की दक्षता- प्रभावशीलता तथा दक्षता अभिव्यक्तियाँ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाती है । पाठ्यक्रम की दक्षता यह संकेत देता हैं कि क्या पाठ्यक्रम अधिक किफायती ढंग से न्यूनतम लागत, समय तथा शक्ति द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकी है । प्रभावी पाठ्यक्रम से यह सुनिश्चित किया जाता है कि पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हुई है चाहे समय व धन किसी मात्रा में लगा हो । प्रभावी और दक्ष पाठ्यक्रम यह सुनिश्चित करता है कि उद्देश्य कम से कम साधनों, प्रयत्न तथा धन द्वारा किये जाएँ । दक्षता का अर्थ शक्ति तथा संसाधनों के उत्पाद और निवेश के बीच अनुपात से है । एक मशीन की कार्य कुशलता को पूर्णत: आंकना बहुत सरल है परन्तु किसी सामाजिक व्यवस्था जैसे शिक्षा में कार्यक्रम की कार्यकुशलता को निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है । एक शैक्षिक कार्यक्रम की वैधता का आकलन नि:सन्देह बहुत कठिन है । नियंत्रित परीक्षणों से काफी मदद मिल सकती है किन्तु महत्त्वपूर्ण परिवर्तिताओं को नियंत्रित करना बडा कठिन है । फिर भी कार्यक्रमों का अनुमान अन्य कार्यक्रमों के उपलब्ध परिणामों के प्रकाश में लाना बहुत महत्त्वपूर्ण है । कार्यक्रम की दक्षता के विचार से जो मुख्य प्रश्न पूछे जाते हैं वे इस प्रकार हैं-

क्या कार्यक्रमों के परिणाम उनमें कुल संसाधनों पर किये गये व्यय को उचित ठहराते हैं?

क्या सौंपा गया पाठ्यक्रम पिछले पाठ्यक्रम से अधिक दक्ष है ?

क्या विद्यार्थी के समक्ष शिक्षक के समय अथवा सामग्री और संसाधनों का व्यर्थ ही उपयोग हुआ है?

क्या उपकरण तथा कर्मचारी वर्ग का कम प्रयोग हुआ?

किस प्रकार सौंपे गये कार्यक्रम की दक्षता को बढ़ाया जा सकता है?

11.9 सारांश (Summary)

किसी भी राष्ट्र की विद्यालयी पाठ्यक्रम उसके संविधान की भाँति इसकी आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है । पाठ्यक्रम जनमानस की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को परिलक्षित करती है तथा समाज व राष्ट्र के सामाजिक चिन्तन को प्रतिबिम्बित करती है । पाठ्यक्रम समस्त अधिगम अनुभवों का समूह है जिसे शिक्षार्थी अधिगम प्रक्रिया के रूप में ग्रहण करते हैं तथा विद्यालय एवं विद्यालय प्रणाली द्वारा नियोजित एवं संचालित किया जाता है ।

पाठ्यक्रम एक व्यापक प्रक्रिया है जिसे शिक्षार्थी. के वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के लिए आयोजित किया जाता है । इसका सम्बन्ध शिक्षक, अनुदेशन, शिक्षण सामग्री, विद्यालय वातावरण एवं मूल्यांकन से भी होता है । कुछ विद्वान पाठ्यक्रम का सहसम्बन्ध शैक्षिक उद्देश्य तथा मूल्यांकन से जोड़कर एक प्रक्रिया मानते हैं ।

पालहर्ड (1969) के अनुसार पाठ्यक्रम मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों, विषयवस्तु, अनुदेशन सामग्री का अधिगम एवं शिक्षण के लिए उपयोग तथा समय एवं व्यय के उपयोग का आभास होता है ।

प्रीतम सिंह ने पाठ्यक्रम मूल्यांकन के तीन प्रमुख कार्य बताये हैं-

(i) निर्धारित शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संसाधनों का सही उपयोग करना । नवीन पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों में अपेक्षित ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति का विकास करना । पाठ्यक्रम विकास हेतु कार्य में ली गयी प्रविधि की प्रभावशीलता का पता लगाना ।

एक प्रभावी एवं कुशल पाठ्यक्रम के विकास के लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम का समय-समय पर मूल्यांकन करते रहना चाहिए जिससे कि इसे अधिक 'प्रासंगिक बनाने के लिए इसमें बदलाव किये जा सके । इसलिए एक पाठ्यक्रम की कुशलता को बढ़ाने हेतु शिक्षा प्रणाली निर्गत और आगत का विश्लेषण करना होगा और विश्लेषण के फलस्वरूप प्राप्त आवश्यक संशोधन करने होंगे जिन्हें पाठ्यक्रम मूल्यांकन के आधार पर किया जा सकता है और यही पाठ्यक्रम मूल्यांकन की आवश्यकता है । इसी आवश्यकता के कारण पाठ्यक्रम मूल्यांकन महत्वपूर्ण भी है । क्योंकि पाठ्यक्रम मूल्यांकन के द्वारा निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किये जाते हैं- (i) नवीन पाठ्यक्रम का विकास (ii) विद्यमान पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाना । (iii) पाठ्यक्रम की समीक्षा (iv) पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता की जाँच ।

पाठ्यक्रम से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित पाठ्यक्रम मूल्यांकन के लिए विद्यालयी पाठ्यक्रम के विषय में जहाँ-जहाँ से सूचना एकत्र की जा सकती है वे सभी पाठ्यक्रम मूल्यांकन के स्त्रोत कहे जा सकते हैं । प्रमुख स्त्रोत का विवरण निम्नलिखित है - (1) शिक्षा (2) शिक्षक (3) विषय विशेषज्ञ (4) पाठ्यक्रम विशेषज्ञ (5) समुदाय (6) शैक्षिक नीति नियामक निकाय (7) विरत छात्र समूह

पाठ्यक्रम मूल्यांकन के विभिन्न स्वरूप प्रचलन में हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं- (1) पूर्व परीक्षण/पश्च परीक्षण (2) मानक संदर्भित परीक्षण तथा कसौटी संदर्भित परीक्षण (3) संरचनात्मक/निर्माणात्मक मूल्यांकन

पाठ्यक्रम मूल्यांकन की पद्धतियों के अन्तर्गत एक विस्तृत तथा वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करने के लिए बाह्य तथा आन्तरिक निकायों के को वरीयता प्रदान की जानी चाहिए । पाठ्यक्रम मूल्यांकन की निम्न पद्धतियाँ प्रमुख रूप से कार्य में लायी जाती है -

प्रथम - पाठ्यक्रम विकास के दौरान मूल्यांकन इसके अन्तर्गत एक प्रमुख कार्य पाठ्यक्रम के द्वारा प्राप्त किये जाने वाले विशिष्ट उद्देश्यों की सूची तैयार करना और दूसरा कार्य वह शिक्षक सामग्री है जिसे उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु तैयार किया गया हैं । विद्यार्थियों के एक समूह पर इस सामग्री का परीक्षण करना चाहिए जिससे शिक्षार्थियों के अनुभव से उनकी शिक्षा प्राप्ति, उनके अधिगम में आयी समस्याओं व कठिनाई को जानकर प्रतिपुष्टि मिल सके ।

द्वितीय - पाठ्यक्रम कार्यान्वयन के दौरान मूल्यांकन इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम को क्रियान्वित किये जाने तथा पाठ्यक्रम के प्रत्येक परिचालन के बाद मूल्यांकन आवश्यक है । इस अवस्था में मूल्यांकन का प्रयोजन दोहरा है - (अ) विद्यालयों में पाठ्यक्रम के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु आवश्यक सहायता के क्षेत्रों को मालूम करना और (व) शिक्षित व्यक्ति की गुणवत्ता को नियन्त्रण में रखना । इस अवस्था में एकत्रित की जाने वाली आवश्यक सूचनाओं में प्राय: निम्न सूचनायें सम्मिलित होती हैं-(1) वर्तमान स्थिति (2) पाठ्यक्रम की प्रभावशीलता (3) कार्यक्रम की स्वीकार्यता (4) कार्यक्रम की दक्षता ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन का क्या तात्पर्य है?
2. पाठ्यक्रम मूल्यांकन को परिभाषित करते हुये इसकी आवश्यकता की चर्चा कीजिए ।
3. पाठ्यक्रम मूल्यांकन का क्या महत्व है?
4. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के विभिन्न स्त्रोतों का सविस्तार वर्णन कीजिए ।
5. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या कीजिए ।
6. पाठ्यक्रम मूल्यांकन की पद्धतियाँ कौन-कौन सी हैं? सविस्तार वर्णन कीजिए ।

11.10 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. **Bhatt, B.D. and Sharma,(1992):** Principles of Curriculum Construction, Kanishka Publishing House, Delhi.
2. **Doll, R.C. (1995):** Curriculum Improvement, Allyn and Bacon, Boston.
3. **Lewy, Arich (1977) ed:** Hand Books of Curriculum Evaluation, International institute for educational Planning,UNSCO,Paris.
4. **Lynn Erickson.H. (1998):** Concept based Curriculum and Instruction, Corwin Press, Inc., A Sage Publication company, Thousand Qaks, California.
5. **Malhotra, M.M. (1905) :** Curriculum Evaluation AND Renewal,CPSC Publication, Mamila.

6. **Sten House, Lawrence (1976):** An Introduction to Curriculum Research and Development, Herinenn Educational Books Ltd. London.

इकाई12

पाठ्यक्रम मूल्यांकन के प्रतिमान पाठ्यक्रम विकास के मुद्दे एवं प्रवृत्तियाँ एवं भारत में पाठ्यक्रम अनुसंधान

Models of Curriculum Evaluation Issues and Trends in Curriculum Development and Curriculum Research in India

इकाई की संचरना(Structure of the Unit)

12.0 उद्देश्य (Objectives)

21.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 पाठ्यक्रम मूल्यांकन के प्रतिमान (Model of Curriculum Development)

12.3 पाठ्यक्रम विकास के मुद्दे (Issues of Curriculum Development)

12.4 पाठ्यक्रम विकास की प्रवृत्तियाँ (Trends in Curriculum Development)

12.5 पाठ्यक्रम विकास एवं भारत में अनुसंधान (Curriculum Development and Research in India)

12.6 पाठ्यचर्या अनुसंधान से संबंधित प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Curriculum Development))

12.7 सारांश (Summary)

12.8 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

12.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पाठ्यक्रम मूल्यांकन के प्रतिमानों की चर्चा कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम में प्रमुख मुद्दों एवं प्रवृत्तियों को पहचान सकेंगे।
- भारत में हुए पाठ्यक्रम सम्बन्धी अनुसंधानों पर चर्चा कर सकेंगे।
- अनुसंधानों से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को पहचान सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पाठ्यक्रम मूल्यांकन के विभिन्न प्रतिमानों यथा टेलर का प्रतिमान, रोबर्ट ई.स्टेक का प्रतिमान, स्टफलबीन का प्रतिमान, मुखोपाध्याय का प्रतिमान, मेटफेसल माइकल का प्रतिमान एवं एकीकृत पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रतिमान आदि का वर्णन किया गया है । समाज की वर्तमान आवश्यकताओं के आधार पर पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाता

है। कुछ सम्प्रत्यय एवं अभ्यास समय के साथ अनुपयोगी हो जाते हैं जिन्हें पाठ्यक्रम से हटा देना चाहिए तथा नवीन मुद्दों व प्रवृत्तियों के आधार पर नए सम्प्रत्ययों व अभ्यासों का समावेश करना चाहिए । इस दृष्टि से इस अध्याय में पाठ्यक्रम से सम्बन्धित प्रमुख मुद्दों एवं प्रवृत्तियों का भी समावेश किया गया है । निर्मित पाठ्यक्रम अध्यापक द्वारा क्रियान्वित पाठ्यक्रम में अन्तर रह जाता है । अत: इस अन्तर को दूर करने एवं पाठ्यक्रम की क्रिया क्षमता को बढ़ाने की दृष्टि से इसके सभी कारकों का विश्लेषण आवश्यक है । अत: अनुसंधान के माध्यम से इसके निर्माण प्रक्रिया के विभिन्न चरणों जैसे उद्देश्य निर्धारण, अधिगम अनुभवों का चयन, विषयवस्तु चयन,अधिगम अनुभव तथा विषयवस्तु संगठन व समाकलन एवं मूल्यांकन में सुधार व परिवर्तन किया जाता'है । इस दृष्टि से प्रस्तुत इकाई में पाठ्यक्रम विकास से सम्बन्धित अनुसंधान एवं अनुसंधान से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को प्रस्तुत किया गया है ।

12.2 पाठ्यक्रम मूल्यांकन के प्रतिमान (Model of Curriculum Development)

विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा पाठ्यक्रम मूल्यांकन के प्रतिमानों को विकसित किया गया है जिनमें निम्न वर्णित का हम अध्ययन करेंगे-

1. टेलर प्रतिमान (Tyler's Model):- पाठ्यक्रम मूल्यांकन का सर्वाधिक प्रचलित प्रतिमान टेलर द्वारा 1950 में प्रतिपादित किया गया । उन्होंने अपनी पुस्तक में पाठ्यक्रम से सम्बन्धित निम्नलिखित चार आधारभूत प्रश्न बताए हैं जिनके उत्तर का प्रयास किसी भी पाठ्यक्रम से सम्बन्धित व्यक्ति को करना चाहिए-

1. विद्यालय को किन शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए?
2. इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कौनसे शैक्षिक अनुभव प्रदान किए जाने चाहिए?
3. इन शैक्षिक अनुभवों को कैसे प्रभावकारी तरीके से व्यवस्थित कर सकते हैं?
4. ये उद्देश्य प्राप्त कर लिए गए हैं, इसे हम कैसे निर्धारित कर सकते हैं?

उपर्युक्त प्रश्नों के आधार पर प्रतिपादित प्रतिमान उद्देश्यों-विषयवस्तु व्यवस्था एवं विधि-मूल्यांकन पर आधारित हैं ।

टेलर के अनुसार शिक्षा एक प्रक्रिया है जिसके तीन केन्द्र बिन्दु शैक्षिक उद्देश्य, अधिगम अनुभव एवं उपलब्धि की परीक्षा है । टेलर के प्रतिमान को निम्न रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है-

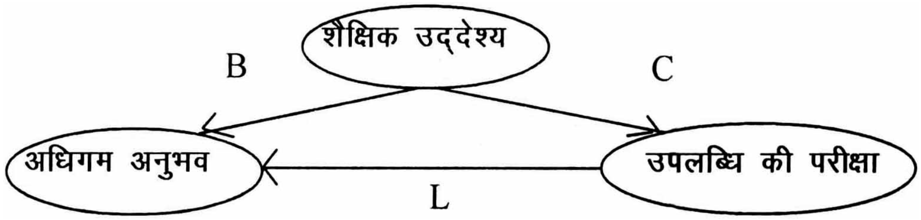

प्रदर्शित प्रतिमान में “C' अक्षर मूल्यांकन का प्रतीक है । इसी प्रकार अक्षर 'B' द्वारा पाठ्यचर्या में सुझाए गए उद्देश्यों एवं अधिगम अनुभवों और वास्तविक विद्यालयी परिस्थिति में अनुभवों के मध्य के सम्बन्ध को प्रदर्शित किया गया है । इसी प्रकार 'L' अक्षर के माध्यम से वास्तविक अधिगम अनुभवों एवं शैक्षिक उपलब्धियों के मध्य के सम्बन्धों की परीक्षा को प्रदर्शित किया गया है । यह प्रतिमान अधिगमकर्ता या अधिगमकर्ताओं के समूह के उपलब्धि स्तर का मूल्यांकन करता है । मूल्यांकन द्वारा पूर्व निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में असफलता प्रदर्शित करने का अर्थ विषयवस्तु के चयन, व्यवस्थापन, शिक्षण की विधियों आदि का अनुपयुक्त होना है ।

2. रोबर्ट ई. स्टेक काउन्टेन्स प्रतिमान (Robert E. Countenance Model):- स्टेक ने 1969 में पाठ्यक्रम मूल्यांकन को तीन रूपों परिस्थितियाँ (antecedent, हस्तांतरण (transaction) एवं उत्पाद (outcomes) के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है । यहाँ परिस्थितियों का अर्थ पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों यथा समय या अन्य स्रोतों से है । हस्तांतरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसमे शिक्षक व विद्यार्थी शिक्षण-अधिगम सम्बन्धी क्रियाएँ करते हैं । इसी प्रकार यही उत्पाद शब्द का अर्थ अधिगमकर्ता की उपलब्धियों, पाठ्यक्रम का अधिगमकर्ता की अभिवृत्ति पर पड़ने वाले प्रभाव एवं अध्यापक के शिक्षण अनुभवों से है । स्टेक के इस प्रतिमान को निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता

पद	सूचना के प्रकार	विधियाँ
1. परिस्थितियाँ	1. संस्थागत पृष्ठभूमि 2. स्रोत 3. प्रशासकों व अभिभावकों की अभिवृद्धि 4. उपलब्ध परीक्षाएँ 5. पाठ्यचर्या की विषयवस्तु 6. शिक्षार्थियों का ज्ञान व कौशल	1. समय सारणी 2. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें 3. साक्षात्कार
2. हस्तांतरण	अध्यापक 1. भूमिका ग्रहण करना 2. समय एवं स्रोतों का उपयोग 3. विद्यार्थियों से सम्पर्क	1. क्रियाविधि का लेखांकन 2. कक्षा का अवलोकन
	विद्यार्थी 1. ज्ञानात्मक प्रक्रिया 2. रुचि 3. समय का उपयोग	1. अध्यापक द्वारा स्वयं का आलेख 2. विद्यार्थी द्वारा स्वयं

		का आलेख
3. उत्पाद	1. विद्यार्थी की उपलब्धियाँ 2. विद्यार्थी की अभिवृत्ति 3. अध्यापक की अभिवृत्ति 4. संस्था के अन्य भागों पर प्रभाव	1. परीक्षा एवं लिखित कार्य 2. प्रश्नावलियाँ 3. साक्षात्कार

3. स्टफलबीम का सी.आई.पी.पी. प्रतिमान:- Stufflebeam's CIPP model स्टफलबीम ने 1971 में एक प्रतिमान विकसित किया जिसे सी.आई.पी.पी. प्रतिमान के रूप में जाना जाता है और जो विषयवस्तु अदा, प्रक्रिया व प्रदा का मूल्यांकन करता है । इसके प्रथम तीन पद निर्माणात्मक (Formative) मूल्यांकन से एवं अन्तिम पद संकल्पनात्मक या समाकलनात्मक (Summative) मूल्यांकन से सम्बन्धित है । स्टफलबीम द्वारा प्रयुक्त किए गए पद निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किए जा सकते हैं:-

1. विषयवस्तु मूल्यांकन (Content Evaluation)- शैक्षिक उद्देश्यों के चयन को औचित्य प्रदान करने के लिए, इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम मूल्यांकनकर्ता उस वातावरण का अध्ययन करता है जिसमें पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन किया जाता है । यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिससे सामाजिक परिवर्तनों के अनुरूप पाठ्यचर्या के उद्देश्यों में परिवर्तन किया जा सके ।

2. अदा मूल्यांकन (Input Evaluation)- अदा मूल्यांकन का उद्देश्य पाठ्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नैतिक एवं मानवीय स्रोतों, समय एवं बजट का अधिकतम उपयोग कैसे किया गया, देखना है । इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों की पूर्व शिक्षा, उपलब्धियां एवं अपेक्षाएँ भी सम्मिलित होती हैं ।

3. प्रक्रिया मूल्यांकन (Process Evaluation)- उत्पाद की गुणवत्ता इसी घटक पर निर्भर करने के कारण यह सम्पूर्ण प्रतिमान का सबसे अहम घटक है । यह पाठ्यक्रम क्रियान्वयन के निर्णयों को प्रदर्शित करता है । स्टफलबीम ने इस मूल्यांकन की निम्नलिखित तीन व्यूह रचनाएँ बताई हैं:-

क. प्रक्रिया की संरचना में कमियों का पता लगाना या पूर्वानुमान करना- इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम के असफल होने के कारणों (तार्किक) या स्रोतों (आर्थिक) का पता लगाने का प्रयास किया जाता है।

ख. पाठ्यक्रम निर्णयों के लिए सूचनाएँ प्रदान करना- पाठ्यक्रम के वास्तविक क्रियान्वयन से पूर्व परीक्षणों द्वारा विभिन्न क्रियाओं के सम्बन्ध में निर्णय लिए जाते हैं ।

ग. प्रक्रिया का आलेख निर्मित करना- इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम की विषयवस्तु अनुदेशन व्यूह रचना, समय आदि की योजना का आलेख तैयार किया जाता है ।

घ. उत्पाद मूल्यांकन (Product Evaluation)- इसके अन्तर्गत एकत्रित आंकडों के आधार पर निर्धारित किया जाता है कि पाठ्यचर्या निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल है अथवा असफल । इसके पश्चात ही उसकी निरन्तरता, परिवर्तन या समाप्त करने के सम्बन्ध में निर्णय लिया जाता है ।

4. मुखोपाध्याय का प्रतिमान (Mukhopadhya's model)- इस प्रतिमान के दो स्तर हैं- प्रथम स्तर निर्माणात्मक मूल्यांकन से सम्बन्धित है और द्वितीय स्तर पुनरावलोकन से सम्बन्धित है । इसे निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित किया जा सकता है-

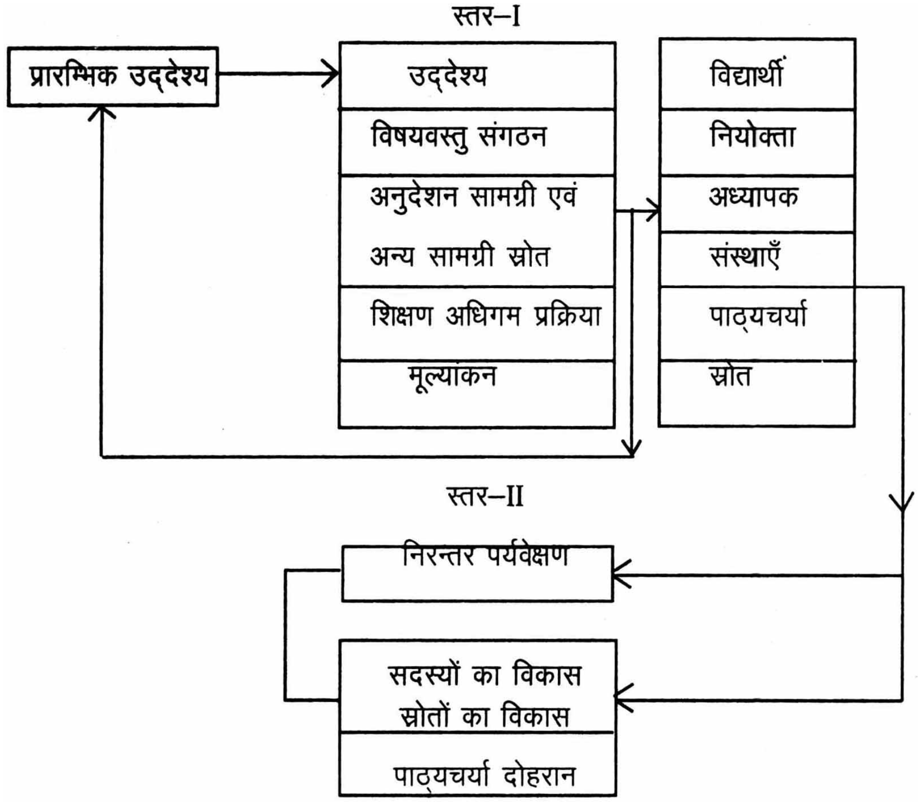

पाठ्यचर्या मूल्यांकन प्रतिमान

5. मेटफेसल माइकल मूल्यांकन प्रतिमान (Metpessel-Michael's Evaluation Model)-

1. मेटफेसल माइकल द्वारा 1960 मे यह प्रतिमान प्रतिपादित किया गया जिसके निम्न आठ पद हैं- 1. मूल्यांकनकर्ता को अध्यापकों, विशेषज्ञों, संस्था के सदस्यों, विद्यार्थियों, नागरिकों आदि सभी को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शैक्षिक समुदाय में सम्मिलित करना चाहिए ।

2. मुख्य लक्ष्यों एवं विशिष्ट उद्देश्यों को विकसित कर. उन्हें सामान्य से विशिष्ट के पद से मिलाकर क्रमानुसार व्यवस्थित करना चाहिए ।

3. पाठ्यक्रम कार्यक्रम के निष्पादन हेतु विशिष्ट उद्देश्यों को सम्प्रेषित एवं क्रियान्वित रूप में लिखना चाहिए ।

4. मूल्यांकन हेतु आवश्यक उपकरणों को प्रयुक्त किया जाना चाहिए ।

5. पाठ्यक्रम कार्यक्रम के क्रियान्वयन को समय-समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिए ।

6. सांख्यिकी के माध्यम से एकत्रित आकड़ों का विश्लेषण किया जाना चाहिए ।

7. पाठ्यक्रम के दर्शन को प्रदर्शित करते हुए मूल्यों. एवं मापदण्डों के आधार पर आँकडों की व्याख्या करनी चाहिए । ।

8. प्राप्त सूचनाओं के आधार पर पाठ्यक्रम के तत्वों, लक्ष्यों, उद्देश्यों, अनुभवों आदि की निरन्तरता एवं सुधार के सम्बंध में सिफारिश की जानी चाहिए ।

मेटफेसल- माइकल प्रतिमान

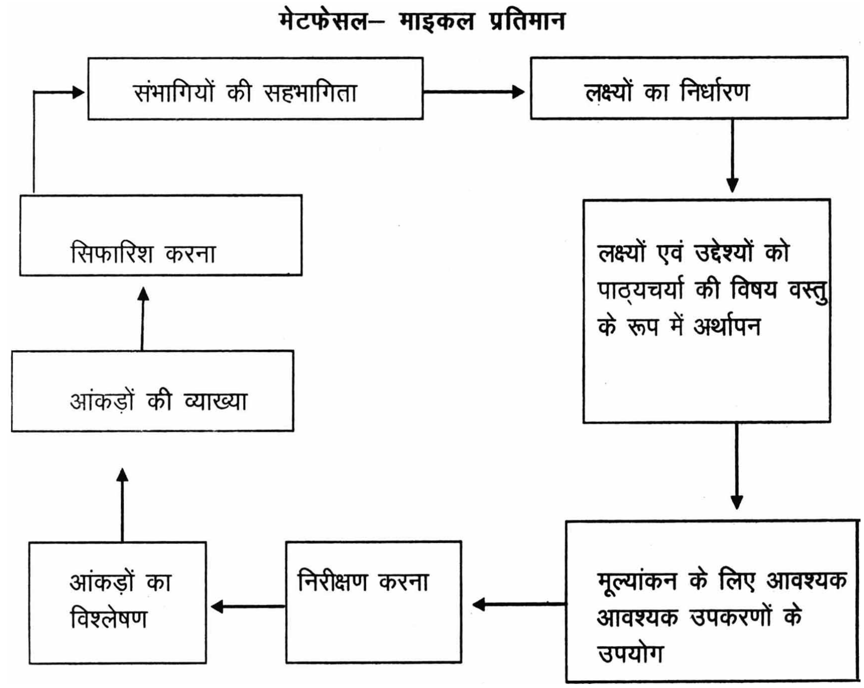

6. **एकीकृत पाठ्यक्रम मूल्यांकन प्रतिमान (Integrated Curriculum Evaluation Model)-**प्रो. प्रमोद कुमार सिगला एवं प्रोफेसर ए. बी. गुप्ता द्वारा यह प्रतिमान दिया गया है इस प्रतिमान के निम्न तीन चरण है-

1. उद्देश्यों का मूल्यांकन (Objectives Evaluation)
2. तंत्र का मूल्याकंन (System Evaluation)
3. विशिष्ट मूल्यांकन (Esoteric Evaluation)

1. उद्देश्यों का मूल्यांकन- उद्देश्यों का मूल्यांकन यह ज्ञात करने के लिए महत्वपूर्ण है कि-

1. क्या उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते है?
2. क्या वे संस्था के लक्ष्यों के अनुरूप परिभाषित किए गए हैं?
3. क्या वे समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित किए गए हैं ।

मूल्यांकन के पश्चात् प्राप्त उद्देश्य सफल अनुदेशन (Instnaction) कार्यक्रम को प्रदर्शित करते है जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उद्देश्यों को प्राप्त करने पर पाठ्यक्रम को लागू किए जाने की सिफारिश की जा सकती है । परन्तु उद्देश्यों की प्राप्ति में कहीं भी संदिग्धता होने पर पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन किया जाता है ।

2. तंत्र मूल्यांकन ((System Evaluation)

पाठ्यचर्या का क्रियान्वयन एक तंत्र के अन्तर्गत होता है जिसमें अदा, प्रक्रिया, पर्यावरण, (जिसमें वह कार्य करता है) तथा प्रदा, चार पद होते हैं ।

अदा (Input)- इसके अन्तर्गत अधिगमकर्ता की रूचि, अभिक्षमता पूर्व आवश्यक योग्यता व्यवहार, बौद्धिक क्षमता एवं योग्यता, सम्मिलित की जाती है । शिक्षक की क्षमता, योग्यता एंव प्रशिक्षण के अतिरिक्त मानवीय, भौतिक, सूचनात्मक एवं आर्थिक स्त्रोतों की उपलब्धता, पुस्तकालय की उपलब्धता एवं इन्टरनेट की सुविधा भी अदा के अन्तर्गत आते हैं ।

प्रक्रिया (Process)- इसके अन्तर्गत पाठ्यवस्तु **(Syllabus)** का विस्तार, सिद्धांत व व्यवहार की एकरूपता, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ताओं की भूमिका स्त्रोतों की उपयुक्तता एवं उपयोगिता, अधिगमकर्ता को उपलब्ध कराए जाने वाले विभिन्न प्रकार के अधिगम अनुभव, शैक्षिक योजना एवं उसका क्रियान्वयन तथा छात्र मूल्यांकन तंत्र की उपयुक्तता को सम्मिलित किया जाता है ।

प्रदा (Output)- इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियाँ एवं व्यक्तित्व विकास को, विद्यार्थियों को उनकी योग्यता के अनुसार मिलने वाले रोजगार की स्थिति को एवं विद्यार्थियों की कार्यशैली के प्रति नियोक्ताओं के संतुष्टि स्तर को सम्मिलित किया गया है ।

पर्यावरण (Environment)- इसके अन्तर्गत शिक्षक वर्ग का अभिप्रेरणा स्तर, संस्था में मिलने वाली स्वतंत्रता, उत्तरदायित्वों और शक्तियों का वितरण तंत्र में पारदर्शिता, प्रबन्धन एवं प्रशासन में नमनीयता, गतिशील एवं दूरदर्शी नेतृत्व, स्वच्छ एवं स्वस्थ कार्यकारी पर्यावरण आते हैं ।

3. असामान्य या विशिष्ट मूल्यांकन (Esoteric Evaluation)

इसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या सहगामी एवं अतिरिक्त पाठ्यचर्या गतिविधियाँ, रोजगार सुधार के प्रयास, शोध एवं विकास के प्रयास, अन्य संस्थाओं से संबंध, संस्था सदस्यों को अद्यतन करना, आधुनिक उपकरणों से परिचय कराना आदि आता है । इसमें स्वअध्ययन को बढ़ावा देना, शिक्षण-अधिगम व्यूहरचना में नवाचार, पाठ्यचर्या को निरन्तर विकसित करना, परामर्श एवं निर्देशन, सामुदायिक अन्त: क्रिया एवं कमजोर वर्गो की सहायता को सम्मिलित किया जाता है ।

निष्कर्ष -1. इस प्रतिमान में पाठ्यक्रम1 मूल्यांकन के तीन पक्ष-उद्देश्य, तंत्र एवं विशिष्ट प्रयास हैं जो कि किसी भी संस्था द्वारा किए जाते हैं ।

2. मूल्यांकनकर्ता विभिन्न स्त्रोतों से विभिन्न मूल्यांकन उपकरणों को प्रयुक्त कर सूचनाएँ एकत्र करता है ।
3. मूल्यांकनकर्ता मूल्यांकन की वैधता एवं विश्वसनीयता को सिद्ध करता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न(Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम मूल्यांकन के किसी एक प्रतिमान को स्पष्ट कीजिये।
   Explain any one Model of Curriculum Evaluation.

2.	सी.आई.पी.पी. प्रतिमान में अदा एवं प्रक्रिया मूल्यांकन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिये। Clear the concept of input Evaluation & Process Evaluation in CIPP model.	

12.3 पाठ्यक्रम के मुद्दे (Issues in Curriculum Development)

पाठ्यक्रम नियोजकों व अध्यापकों को पाठ्यचर्या विकास से सम्बन्धित निम्नलिखित मुद्दे को दृष्टिगत करना चाहिए-

1. असंगत पाठ्यक्रम (Irrelevent Curriculum)

2. आधुनिक पाठ्यक्रम (Modern Curriculum)

1. असंगत पाठ्यक्रम (Irrelevent Curriculum):-असंगत पाठ्यक्रम का अर्थ उस पाठ्यक्रम से है जो समाज व विद्यार्थियों की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं हों, जो उनके भविष्य की दृष्टि से अनुपयोगी हो तथा आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता हो । अत: पाठ्यक्रम के विकास के समय विद्यार्थी की मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं तकनीकी आवश्यकताओं को ध्यान रखना चाहिए । असंगत पाठ्यक्रम को दो प्रकारों स्थिर एवं सतही पाठ्यचर्या से विभक्त कर सकते हैं:-

अ. स्थिर पाठ्यक्रम (Static Curriculum) - स्थिर पाठ्यचर्या से तात्पर्य ऐसी पाठ्यक्रम से है जो सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तित नहीं होती । जिसमें भविष्य की आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं की अवहेलना की जाती है अर्थात् उसमें लचीलापन नहीं होता।।

ब. सतही पाठ्यक्रम (Superficial Curriculum) - सतही पाठ्यचर्या का अर्थ उस पाठ्यचर्या से है जिसमें दिए गए तथ्य और आँकड़े छात्रों के लिए पुराने, अर्थहीन और अनावश्यक हो गए हों । इस प्रकार की पाठ्यक्रम छात्रों की शक्ति एवं उनके समय को व्यर्थ करती है ।

2. आधुनिक पाठ्यक्रम (Modern Curriculum)-समाज में निरन्तर होने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तनों एवं विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधानों के कारण समाज की शिक्षा से अपेक्षाएँ परिवर्तित हो रही है । समाज की विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु एवं परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नवीनतम ज्ञान एवं नए अध्ययन क्षेत्रों का पाठ्यक्रम में समावेश आवश्यक हो गया है । ऐसी पाठ्यक्रम छात्र केन्द्रित होने के साथ-साथ मूल्य केन्द्रित भी होती है । वर्तमान पाठ्यचर्या में जिन आधुनिक क्षेत्रों को सम्मिलित किया जा सकता है वे निम्नलिखित हैं:-

- बहु सांस्कृत्क्रि शिक्षा
- अन्तर्सांस्कृतिक शिक्षा
- यौन शिक्षा
- जनसंख्या शिक्षा

- नशीली दवाओं का दुरूपयोग
- व्यावसायिक शिक्षा,
- पर्यावरण शिक्षा
- आपदा प्रबन्धन
- समुदाय स्वास्थ्य शिक्षा
- मानवाधिकार शिक्षा
- विशेष शिक्षा

अध्ययन के इन क्षेत्रों पर वर्तमान एवं भविष्य दोनों की दृष्टि से ध्यान देने की आवश्यकता है ।

12.4 पाठ्यक्रम (Trends in Curriculum Development)

"सूचना क्रान्ति के इस युग में जबकि समाज में तीव्र ' गति से परिवर्तन हो रहे हैं, मूल्यांकन के आधार पर पाठ्यक्रम का विकास निरन्तर की जाने वाली प्रक्रिया है । समाज की परिवर्तित आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम नियोजक को विषयवस्तु एवं शिक्षण प्रक्रिया में परिवर्तन कर पाठ्यक्रम को प्रभावी एवं प्रासंगिक बनाने का प्रयास करना चाहिए । 20वीं शताब्दी में विश्व के लगभग सभी समाजों में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और प्रौद्योगिकीय परिवर्तन हुए हैं, जिनके प्रत्युत्तर में पाठ्यक्रम विद्यालय के एक गतिशील कारक के रूप में भावी छात्रों को भावी आवश्यकताओं के प्रति सचेत करती है । भविष्य के लिए पाठ्यचर्या का नियोजन करते समय निम्न तत्वों पर विचार करना चाहिए-

1. समाज में कौन-कौनसे परिवर्तन हो रहे हैं?
2. परिवर्तनों के कारण शैक्षिक उद्देश्यों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है?
3. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम में क्या परिवर्तन किए जाने चाहिए?
4. क्या ये परिवर्तन भविष्य के लिए युवाओं को तैयार करने में सहायक सिद्ध होंगे?

अत: पाठ्यक्रम के विकास में नवीन प्रवृत्तियों को दृष्टिगत करना आवश्यक है ।

1. भूमण्डलीकरण (Globalization)- भूमण्डलीकरण उस व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करता है, जहाँ देश की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं । यह जीवन के विविध पक्षों के विश्वव्यापी समायोजन की एक प्रक्रिया है । भूमण्डलीकरण का सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव हमारी संस्कृति एवं सभ्यता पर पड़ रहा है । मानव जीवन के सभी पक्ष अर्थात् उसका रहन-सहन, चिन्तन, खान-पान, वेशभूषा आदि इससे प्रभावित हो रहे हैं । उसके आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि पक्ष भी इससे अछूते नहीं हैं । अत: परिवर्तित परिस्थितियों' के साथ समायोजन करने के लिए छात्रों को विश्व में होने वाले परिवर्तनों की मात्रा और गति को समझने में समर्थ होना चाहिए । इसके लिए निर्णय क्षमता, समस्या-समाधान, सृजनशीलता, मौलिक. चिन्तन जैसे क्रिया-उन्मुख कौशलों को विद्यार्थियों में विकसित किए जाने की आवश्यकता है । ये कौशल पाठ्यचर्या विकास में विषयवस्तु के निर्धारण एवं प्रस्तुतीकरण में सहायक होते हैं । विभिन्न समस्याएँ समाज में नवीन आवश्यकताओं को जन्म देती है जो नवीन पाठ्यक्रम के विकास या प्रचलित पाठ्यक्रम को अद्यतन करने का आधार बनती हैं ।

2. संचार प्रौद्योगिकी (Information Technology)- सूचना क्रांति के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम की विषयवस्तु को एक नया आधार मिलता है और शिक्षण प्रक्रिया एवं विषयवस्तु प्रस्तुतीकरण के लिए नवीन शिक्षण विधियाँ विकसित की जा रही हैं । अभिक्रमित अधिगम, टीचिंग मशीन, रिकॉर्डर मूवी कैमरा, वीडियोटेप आदि अनेक उपकरणों का प्रयोग बढ़ रहा है जिनकी सहायता से शिक्षार्थी अधिक तीव्रता से सीख सकते हैं, पुनर्बलन और पुन: पुष्टि कर सकते हैं । इनमें शिक्षार्थी को स्वयं अपनी गति से सीखने की सुविधा भी मिलती है । रेडियो, दूरदर्शन, संचार उपग्रहों का भी प्रयोग बढ़ रहा है । स्पष्ट है कि अधिगम निवेश में हो रहे इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम का संचालन अधिक वैज्ञानिक व व्यवहारिक हो रहा है ।

3. अंतर्विषयी विषयवस्तु (Interdisciplinary Content)- विभिन्न विषयों की विषयवस्तु को अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा यथार्थवादी ढंग से समझने के लिए अंतर्विषयी दृष्टिकोण आवश्यक है । उदाहरण के लिए पर्यावरण अभियांत्रिकी एवं ऊर्जा अभियांत्रिकी अंतर्विषयी कार्यक्रम हैं । पर्यावरण अभियांत्रिकी में एयर क्वालिटी कंट्रोल, वाटर सप्लाई, वेस्ट वाटर डिस्पोजल, स्टार्म वाटर मैनेजमेंट, सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट और हजार्डस वेस्ट मैनेजमेंट सम्मिलित हैं । इसी प्रकार ऊर्जा अभियांत्रिकी में सिविल मेकेनिकल, माइनिंग, और केमीकल अभियांत्रिक जैसे विभिन्न क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाता है । इससे मानव समाज की अनेक समस्याओं का समाधान विषयों के मध्य की बाधाओं को दूर करके किया जा सकता है । इस प्रकार अंतर्विषयी पाठ्यचर्याओं में स्वायत्त विषयों तथा क्षेत्रों के रूप में परम्परावादी अविच्छिन्न विभाजन के अनुसार स्वीकार नहीं किया गया है ।

4. शिक्षा का व्यवसायीकरण (Vocationalisation of Content)- वर्तमान समय में शिक्षा का संबंध व्यक्ति को सुसंस्कारी बनाने के स्थान पर जीविकोपार्जन के योग्य बनाने का हो गया है । इसी कारण शिक्षा का संबंध उत्पादन एवं व्यवसाय के साथ बड़ी तीव्रता और गहनता के साथ जुड़ता जा रहा है । अत: पाठ्यक्रम को अधिक रोजगारोन्मुखी बनाना होगा । विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा के लिए एक पृथक या समानान्तर पाठ्यक्रम तैयार करने की माँग बढ़ती जा रही है जो नए रोजगारों के लिए युवकों को प्रशिक्षित करने में सहायक हो सकती है । निम्नलिखित कारणों से देश में व्यापक व्यावसायिक पाठ्यक्रम तैयार करने के प्रयास चल रहे हैं:-

1. विद्यालयों को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए मानव शक्ति के प्रशिक्षण के केन्द्र के रूप में मान्यता दी जा रही है ।
2. व्यवसायोन्मुखी शिक्षा गरीबी उन्मूलन एवं जीवन की गुणवत्ता के उन्नयन का साधन है ।
3. उपयोगितावादी शिक्षा की संकल्पना ने रोजगार आधारित पाठ्यचर्या संबंधी जागरूकता और माँग को बढ़ा दिया है ।

5. शिक्षा का उदारीकरण (Liberalization of Education)- शिक्षा क्षेत्र में मध्यवर्ग के बालकों के अधिकाधिक संख्या में प्रवेश के फलस्वरूप एवं औद्योगिक क्रांति विज्ञान एवं तकनीकी के विकास के परिणामस्वरूप पाठ्यचर्या में उदार विषयों का स्थान क्रमश: वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषय लेते चले गए । शिक्षालयों द्वारा इस प्रकार से शिक्षक एवं विद्यार्थी

तकनीकी दृष्टि से तो सम्पन्न बन गए परन्तु मानवीय एवं चारित्रिक गुणों की दृष्टि से उनका पतन प्रारम्भ हो गया । अत: पाठ्यचर्या में तकनीकी एवं व्यावसायिक तथा उदार विषयों का सन्तुलित समावेश किया जाना आवश्यक समझा जा रहा है । उदारवादी रटन्त शिक्षा के स्थान पर विषय की समझ एवं आत्माभिव्यक्ति पर बल देते हैं । उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी में मौलिक चिन्तन करने की क्षमता उत्पन्न करना है तथा यह शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी पक्षपात के मिलनी चाहिए ।

6. शैक्षिक संस्थाओं के संगठनात्मक प्रतिमान में परिवर्तन (Change in] Organizational Model of Educational Institutions)- शिक्षा के सार्वभौमीकरण पर बल देने और उसकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए औपचारिक शिक्षा पद्धति के विकल्प तथा अनिवार्य अनुपूरक के रूप में दूरस्थ और मुक्त शिक्षा पद्धति को बल मिला है । परिणामस्वरूप 'बिना दीवारों का विश्वविद्यालय', 'खुला विश्वविद्यालय', 'यूनिवर्सिटी ऑन द एयर' 'पत्राचार विद्यालय' अंशकालीन, सायंकालीन विद्यालयों के रूप में अनेक अनौपचारिक शिक्षण संस्थाएँ अस्तित्व में आ रही है । दूरस्थ शिक्षा की पाठ्यक्रम शिक्षार्थी की आवश्यकताओं व सुविधाओं के अनुरूप तथा लचीली होती है । यह पाठ्यक्रम प्रिंट और इलैक्ट्रोनिक मीडिया द्वारा विद्यार्थी को घर बैठे उपलब्ध हो जाती है और वह स्वअध्ययन तथा स्वक्रिया द्वारा अधिगम करता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम विकास संबंधी किन्ही चार प्रवृत्तियों को स्पष्ट करो।
   Explain any four trends in curriculum development.
2. पाठ्यक्रम विकास पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करें।
3. Explain the effects of Globalization on curriculum development.
4. सतही एवं स्थिर पाठ्यक्रम में क्या अंतर है?
   What is the difference between static and superficial curriculum?

12.5 पाठ्यक्रम विकास एवं भारत में अनुसंधान (Curriculum development and Research In India)

पाठ्यक्रम में अनुसंधान को समझने के लिए हमें निम्न प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करने होंगे-

1. पाठ्यक्रम में क्या परिवर्तन किया जाए?
2. पाठ्यक्रम में परिवर्तन क्यों किया जाए?
3. पाठ्यक्रम में परिवर्तन कैसे किया जाए?

प्रश्नों का समाधान करने पर ही पाठ्यक्रम छात्रों की मनोवैज्ञानिक अभिरुचियों और परिवर्तनशील तथा विकासशील सामाजिक आवश्यकताओं की दृष्टि से उपयुक्त बनी रहती है अन्यथा अनुसंधान के अभाव में असंगत पाठ्यक्रम के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।

पाठ्यक्रम अनुसंधान के प्रमुख क्षेत्र (Main Areas of Curriculum Research)- पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया को पाँच सोपानों में विभक्त किया गया है:

1. लक्ष्य व उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of Aims & Objectives)
2. अधिगम अनुभवों का चयन (Selection of Learning Experience)
3. विषयवस्तु का चयन (Selection of Content)
4. अधिगम अनुभव तथा विषयवस्तु का संगठन व समाकलन (Organization & Integration of Learning Experience and Content)
5. मूल्यांकन (Evaluation)

अत: अनुसंधान कार्य के लिए ये ही उपयुक्त क्षेत्र है ।

लक्ष्य एवं उद्देश्यों का निर्धारण (Determination of Aims & Objectives) - एडगर फोरे (Edgare Foure) की अध्यक्षता में यूनेस्को द्वारा 1972 में गठित शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग द्वारा प्रस्तावित रिपोर्ट, "लर्निंग टू बी : द वर्ल्ड ऑफ एजुकेशन टुडे एण्ड टुमारो" के अन्तर्गत बदलते परिवेश के अनुरूप निम्नलिखित शैक्षिक उद्देश्य बताए हैं-

1. वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षमता का विकास
2. व्यक्ति की मौलिकता एवं सृजनात्मक क्षमता का विकास
3. समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास
4. व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं नैतिक पक्षों का विकास

इसके पश्चात् आगामी चुनौतियों को देखते हुए जनवरी, 1996 में फ्रांस के पूर्व वित्त मंत्री जैकस डेलर **(Jacques Delors)** की अध्यक्षता में '21 वीं शताब्दी के लिए शिक्षा" पर एक आयोग का गठन किया गया जिसकी सिफारिशों के आधार पर शिक्षा सम्बन्धी नीतियों एवं क्रियान्वयन में परिवर्तन किया जा सके । आयोग ने निम्न क्षेत्रों में अध्ययन किया :-

1. अधिगम प्रक्रिया के उद्देश्य
2. शिक्षा एवं संस्कृति
3. शिक्षा एवं नागरिकता
4. शिक्षा एवं विकास
5. कार्य एवं नियुक्ति
6. शिक्षा, शोध एवं विज्ञान

उपर्युक्त के आधार पर शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय डेलर के अनुसार निम्नलिखित समस्याओं और तनावों का भी ध्यान रखना चाहिए जिनका सामना 21 वीं शताब्दी में समाज को करना है

1. भूमण्डलीकरण एवं स्थानीय के मध्य का विवाद
2. सार्वभौमीकरण एवं व्यक्तिगत के मध्य का विवाद
3. परम्परावादी एवं आधुनिकता के मध्य का विवाद
4. वृहद्कालीन एवं अल्पकालीन सम्बन्धताओं का विवाद

5. प्रतियोगिता की आवश्यकता एवं सभी के लिए समान अवसर का विवाद
6. ज्ञान का अत्यधिक विस्तार एवं मानव की अर्जन क्षमता के मध्य का विवाद
7. आध्यात्मिकतावाद एवं भौतिकवाद के मध्य का विवाद

उपर्युक्त विवादों का/तनावों का सामना करने के लिए तथा पहले से अधिक परिवर्तित, जटिल तथा परस्पर निर्भर विश्व में समायोजन हेतु अधिक ज्ञान, कौशल एवं अभिव्यक्ति की आवश्यकता होगी । इसके लिए आयोग ने शिक्षा के निम्न चार स्तम्भ बताए हैं:- ।

1. जानने के लिए सीखना (Learning to Know)
2. करने के लिए सीखना (Learning to do)
3. साथ रहने के लिए सीखना (Learning to live together)
4. होने/बनने के लिए सीखना (Learning to be)

उपर्युक्त सिफारिशों के आधार पर विश्व के विभिन्न देशों की शैक्षिक नीतियों, योजनाओं एवं क्रियान्वयन पर प्रभाव पड़ा । परिणामस्वरूप मुकेश अम्बानी एवं कुमार मंगलम बिड़ला की शिक्षा पुनर्निर्माण सम्बन्धी 2000 की रिपोर्ट में भारत में शिक्षा का लक्ष्य प्रतियोगी पर सहयोगी ज्ञान आधारित समाज का निर्माण करना रखा गया । विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कार्य योजना 2000 में विद्यालयी पाठ्यक्रम के उद्देश्य अधिगमकर्ता में ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता, समझ, कौशलों का विकास, सकारात्मक अभिवृद्धि, मूल्य एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित आदतों का निर्माण रखे गए ।

2005 में गठित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम फ्रेमवर्क के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:-

1. लोकतंत्रात्मक मूल्यों यथा समानता; स्वतंत्रता, पंथनिरपेक्षता आदि का विकास करना ।
2. स्वतंत्र चिन्तन करने की क्षमता का विकास करना ।
3. ज्ञान के विकास की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनने तथा सीखने की इच्छा का विकास करना ।
4. समाज के प्रति उत्तरदायित्व के निर्वहन की क्षमता का विकास करना ।
5. रचनात्मक क्षमता के विकास के अवसर प्रदान करना ।

इस प्रकार निरन्तर उद्देश्यों में परिवर्तन आ रहा है, जो विभिन्न संस्थाओं किए गए अनुसंधानों का परिणाम है ।

2. **विषयवस्तु (Content)-** परिवर्तित उद्देश्यों के आधार पर पाठ्यक्रम की विषयवस्तु में एवं उसके प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया में अनुसंधान कार्यों के आधार पर तीव्रता से परिवर्तन आ रहा है । सूचना क्रांति के परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के नवीन विषय प्रकाश में आए हैं तथा विज्ञान व तकनीकी उन्नति के कारण शिक्षण प्रक्रिया में इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव बढ़ा है।

3. **मूल्यांकन (Evaluation)-** स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने परीक्षा प्रणाली में सुधार को गहनता से लिया और निरन्तर व व्यापक मूल्यांकन

का सम्प्रत्यय दिया । आयोग ने आन्तरिक मूल्यांकन, उद्देश्यों का परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण एवं मनोवैज्ञानिक बैटरी के निर्माण पर बल दिया । माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने बाह्य परीक्षाओं को कम करने तथा आन्तरिक परीक्षणों को बढ़ाने तथा अंकों के स्थान पर प्रतीकों का उपयोग करने पर बल दिया । सन् 1964-66 के शिक्षा आयोग ने मूल्यांकन को निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया बताया तथा अंकों के स्थान पर ग्रेड्स का एवं प्रश्न बैंक के उपयोग पर बल दिया । इस प्रकार इस क्षेत्र में विभिन्न आयोगों, शिक्षा नीतियों द्वारा एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क 2000 एवं 2005 द्वारा विभिन्न अनुसंधानों के आधार पर परिवर्तन हेतु सुझाव दिए गए । यह क्षेत्र अपेक्षाकृत नवीन क्षेत्र है जिसमें अधिक अनुसंधान किए जाने की आवश्यकता है ।

12.6 पाठ्यक्रम अनुसंधान संबंधित प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Curriculum Research)

अनुसंधान से संबंधित निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्रचलित है :-

1. शिक्षा के स्तर से सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Steps of Education):- शिक्षा के विभिन्न स्तरों विद्यालय पूर्व शिक्षा, प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर, उच्च माध्यमिक स्तर एवं उच्च शिक्षा स्तर पर पाठ्यक्रम विकास से सम्बन्धित अनुसंधान किए जाते हैं ।

2. अधिगम के क्षेत्र से सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Areas of Learning):- भाषा पाठ्यक्रम में अनुसंधान-1988 तक पाठ्यक्रम अनुसधान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र था । परन्तु बुच के सर्वे के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्तमान में इस क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों में निरन्तर कमी आ रही है । इसके अतिरिक्त गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान में अनुसंधान किए जा रहे हैं परन्तु कार्य अनुभव, व्यावसायिक तकनीकी एवं कृषि शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा में, जनसंख्या शिक्षा, मूल्य शिक्षा एवं सामान्य पाठ्यक्रम में अनुसंधान कार्यो को अधिक बढ़ाना चाहिए ।

3. पाठ्यक्रम के तत्त्वों से सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Components of Curriculum):- उद्देश्य एवं विषयवस्तु पर, अधिगम अनुभवों पर, पाठ्यपुस्तकों पर, मूल्यांकन, शिक्षक प्रतिक्रिया, विकासात्मक नीतियाँ, निर्देशन मॉड्यूल, पाठ्यचर्या निर्माण एवं मूल्यांकन के प्रतिमानों पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है ।

4. अनुसंधान विधियों से सम्बन्धित प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Research Methodology:- पाठ्यक्रम के क्षेत्र में किए जा रहे अनुसंधान की विधियों में भी भिन्नता है । इस क्षेत्र में सर्व विधि द्वारा सर्वाधिक 50% शोधकार्य किए जा रहे हैं । प्रयोगात्मक विधि द्वारा अनुसंधान किया जा रहा है । मूल्यांकन अध्ययन, एवं विकासात्मक अध्ययन भी किए जा रहे हैं । कुछ अवलोकन आधारित अध्ययन भी किए जा रहे हैं ।

5. अनुसंधान उपकरणों के सम्बन्ध में प्रवृत्तियां (Trends Related to Research Tools):-

पाठ्यक्रम के क्षेत्र में 50% कार्य प्रश्नावली द्वारा किए जा रहे हैं । साक्षात्कार, अवलोकन एवं व्यक्तिवृत्त अध्ययन द्वारा भी अनुसंधान किया जा रहा है ।

6. दूरस्थ शिक्षा के सम्बन्ध में प्रवृत्तियाँ (Trends Related to Distance Education):- भारत में दूरस्थ शिक्षा का सम्प्रत्यय विगत तीन दशकों से प्रचलित है अत: इस क्षेत्र में अनुसंधान 1971 से प्रारम्भ हुए । यह एक नवीन क्षेत्र है जिसमें अधिक अनुसंधान कार्य अपेक्षित है ।

12.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के आरम्भ में हमने पाठ्यक्रम मूल्यांकन से सम्बन्धित प्रतिमानों की चर्चा की । इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम विकास से सम्बन्धित मुद्दों के रूप में असंगत पाठ्यक्रम में स्थिर व सतही एवं आधुनिक पाठ्यक्रम की चर्चा की । पाठ्यक्रम विकास से सम्बन्धित विभिन्न प्रवृत्तियों भूमण्डलीकरण, संचार प्रौद्योगिकी, अंतर्विषयी विषयवस्तु, शिक्षा का व्यावसायिकरण, शिक्षा का उदारीकरण एवं शैक्षिक संस्थाओं के संगठनात्मक प्रतिमान में परिवर्तन पर चर्चा की ।

इस इकाई में पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अनुसंधान के क्षेत्रों में मुख्यत: उद्देश्य निर्धारण का क्षेत्र, विषयवस्तु का क्षेत्र एवं मूल्यांकन के क्षेत्र पर चर्चा की गई । इसके अतिरिक्त अनुसंधान से सम्बन्धित विभिन्न प्रवृत्तियों, शिक्षा के स्तर, अधिगम के क्षेत्र, पाठ्यचर्या के तत्वों, अनुसंधान विधियों, अनुसंधान उपकरण एवं दूरस्थ शिक्षा पर चर्चा की गई ।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अनुसंधान के दो क्षेत्रों को विस्तार से बताएं ।
   Explain two areas in Research related to Curriculum.
2. पाठ्यक्रम से सम्बन्धित अनुसंधान की दो प्रवृत्तियों को विस्तार से बताएं ।
   Write any two Trends research related to Curriculum.

12.8 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. Agrawal,J.C.(1990)	:	Curriculum Reforms in India Doaba House, Delhi.
2. D,,Warwick(1975)	:	Curriculum Structure & Design University of London Press.
3. Gordon,Peter(1976)	:	The Study of the Curriculum, Basts Ford Academic and Educational Ltd.
4. IGNOU(1992)	:	Curriculum Development for distance Education (ES-316), Blocks 1 & 2, New Delhi.
5. J.Dewey(1966)	:	The child & the Curriculum. The School & Society, Phoenix USA.

6. कौशिक,श्यामलाल:राजस्थान (1977) : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
7. Kelly,A.V.(1984):The Curriculum : Theory & Practice,Paul Chapman Publishing.
8. Lawton, Denis, Gordon Peter : Theory & Practice of Curriculum studies.
9. Laxmi S.(1989) : Innovations in Education, Sterling Publisher Private Limited.
10. Mamidi,M.R. and Ravishankar`s (1984) : Curriculum Development and Education Technology, Sterling Publisher, New Delhi.

इकाई 13

विभिन्न शिक्षा आयोगों के अनुसार पाठ्यक्रम विकास के सम्बन्ध में सिफारिशें/सुझाव

(Suggestions/Recommendation related to Curriculum Development according to Different Education Commissions)

इकाई की संरचना (structure of Unit)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Curriculum)

13.3 पाठ्यक्रम का महत्व (Importance of Curriculum

13.4 पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर (Difference between Curriculum and Syllabus)

13.5 पाठ्यक्रम निर्माण के आधार (Bases of Curriculum Construction)

13.6 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (Outline of National Curriculum)

13.7 विभिन्न आयोगों की सिफारिशें (Recommendation of Different Commission)

13.7.1 प्राचीन काल में - वैदिक काल, बौद्धकाल, इसाई मिशनरी के प्रयास, मैकाले का प्रयास, हण्टर आयोग

13.7.2 आधुनिक काल - डी. राधाकृष्णन आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग, कोठारी शिक्षा आयोग, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986, राममूर्ति कमीशन

13.8 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2002 का सार (Summary of Outline of National Curriculum)

13.9 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2005 का सार (Summary of Outline of National Curriculum 2005)

13.10 सारांश (Summary)

13.11 संदर्भ ग्रन्थ (References)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- पाठ्यक्रम के अर्थ का प्रत्यास्मरण कर सकेंगे ।
- पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर कर सकेंगे ।

- पाठ्यवस्तु का महत्व व पाठ्यक्रम निर्माण के आधारों व सिद्धान्तों को समझ सकेंगे ।
- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे ।
- प्राचीन काल से वर्तमान 'काल. तक पाठ्यक्रम के विकास के विविध पक्षों को समझ सकेंगे।
- विभिन्न शिक्षा आयोगों द्वारा पाठ्यक्रम विकास हेतु की गई अभिशंसाओं व सिफारिशों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा- 2002 एवं 2005 के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे ।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप पूर्णतया बाल केन्द्रित हो गया है । शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है । शिक्षा के इस महत्वपूर्ण उद्देश्य हेतु पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण कड़ी एवं आधार होता है । पाठ्यक्रम का निर्माण मनोविज्ञान के आधार पर करने हेतु विद्यार्थियों की रूचि, इच्छाओं, प्रवृत्तियों, क्षमताओं, अभिवृत्तियों, मनोवृत्तियों को ध्यान में रखकर किया जाता है, क्योंकि आज यह बात स्पष्ट है कि बालक पाठ्यक्रम के लिए नहीं वरन् पाठ्यक्रम बालक हेतु है ।

मुनरो - "पाठ्यक्रम में वह सभी क्रियाऐं सम्मिलित है। जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यालय में उपयोग करते हैं ।"

(Curriculum Include all those activities which are utilized by the school to attain the aim of Education) -**Monroe**

13.2 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Curriculum)

पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी शब्द Curriculum का हिन्दी रूपांतरण है । Curriculum शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द Currere से हुई है, जिसका अर्थ है 'दौड़ का मैदान' (Race Course) । इस प्रकार पाठ्यक्रम से आशय बालक के लिए उस दौड के मैदान के समान है, जिसमें दौड़ते हुए वह शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है । पाठ्यक्रम के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए निम्न परिभाषायें उपयोगी हैं-

पाठ्यक्रम की परिभाषा -

"पाठ्यक्रम में वह सभी क्रियाऐं सम्मिलित हैं, जिनका हम शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विद्यालय में उपयोग करते हैं।

- मुनरो

(Curriculum Include all those activities which are utilized by the school to attain the aim of Education.)

Monroe

पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैद्धान्तिक विषयों से नहीं हैं जो विद्यालय में परम्परागत रूप से पढ़ाये जाते है । अपितु इसमें अनुभवों की वह सम्पूर्णता भी निहित होती है, जिनको

बालक विद्‌यालय, कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला तथा खेल के मैदान एवं शिक्षकों और छात्रों के असंख्य, अनौपचारिक सम्पर्को से प्राप्त करता है । इस प्रकार विद्‌यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्‌यक्रम बन जाता है, जो छात्रों के सभी पक्षों को प्रभावित करता है तथा उनके संतुलित व्यक्तित्व विकास में सहायता देता है ।"

- माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1952

(Curriculum does not mean only the academic subjects traditionally taught in school but it includes the tatality of experiences that pupil receives throught the manifold activities that go in the school class room,library,laboratory,workshop, play ground and in the numerous informal contacts between teacher and pupils.In the sense the whole life of the school becomes the Curriculum which can touch the life of the students at all points and help in the evolutions of balanced personality)

-Secondary Education Commission Report 1952

"पाठ्‌यक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभवों का सार समझना चाहिए।" - **फ्रोबेल**

(Curriculum should be conceived as an epitome of the rounded whole of the knowledge and experience of an human race.)

Frobel

"पाठ्‌यक्रम में व्यापक रूप में सम्पूर्ण विद्‌यालय वातावरण निहित है । इस वातावरण में विद्‌यालय द्‌वारा छात्रों को प्रदान किये जाने वाले समस्त कोर्स, पाठन क्रियाऐं तथा समुदाय आते हैं ।"

- रूडयार्ड एवं क्रानबर्ग

(Curriculum in its broader sense includes that complete school environment involving all the courses activities, reading and associations furnished to the pupils in the school)

-Rudyard and Kroneberg

"कलाकार (शिक्षक) के हाथ में पाठ्‌यक्रम वह साधन है, जिससे वह पदार्थ (शिक्षक) को अपने आदर्श (उद्‌देश्य) के अनुसार अपने स्टूडियो (विद्‌यालय) में ढाल सके ।"

- कनिंघम

(Curriculum is a tool in the hands of the artist (teacher)to mould his material (pupil)according to his ideal (objectives) in his studio(school))

-Cunningham

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि शिक्षण-प्रक्रिया के महत्वपूर्ण घटक शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्‌यचर्या है । पाठ्‌यक्रम शिक्षण-लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन है ।

13.3 पाठ्यक्रम का महत्व (Importance of Curriculum)

शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है जिसमें तीन महत्वपूर्ण घटक होते हैं-शिक्षक, शिक्षार्थी व पाठ्यक्रम । शिक्षक शिक्षार्थी के मध्य होने वाली अंतःक्रिया में पाठ्यक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । इसके माध्यम से ही अध्यापक शिक्षक के उद्देश्यों की प्राप्ति कर पाने में सफल हो जाता है । शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में पाठ्यक्रम की महत्ता निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है -

1. **उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (For Achievement of Aims)-** शिक्षा का मूल उद्देश्य बालक की अन्तर्निहित शक्तियों को बाहर निकालना व उनका सर्वांगीण विकास करना है । इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के लिए पाठ्यक्रम एक साधन के रूप में क्रिया करता है । शिक्षक पाठ्यक्रम के इर्द-गिर्द ही शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करता है ।

2. **शिक्षा प्रक्रिया के नियोजन के लिए (For Planning of Educational Process)-** शिक्षा की प्रक्रिया के सफल संचालन हेतु शिक्षक नियोजन की प्रक्रिया को अपनाता है । विद्यालयी क्रियाओं की सम्पूर्ण व्यवस्था पाठ्यक्रम द्वारा ही निर्धारित की जाती है ।

3. **आवश्यकता की संतुष्टि के लिए (For Satisfaction of Needs)-** व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली प्रत्येक क्रिया उद्देश्य आधारित होती है अर्थात् व्यक्ति उन्हीं क्रियाओं को करने में रूचि रखता है जिससे उसकी आवश्यकता को संतुष्टि मिलती है । पाठ्यक्रम बालक को वर्तमान व भविष्य दोनों कालों में संतुष्टि प्रदान करने का प्रभावी साधन है ।

4. **कार्यकुशलता के लिए (For Work Efficiency)-** पाठ्यक्रम के द्वारा सम्पूर्ण क्रियाओं को सही ढंग से उद्देश्यों के आधार पर नियोजित कर लिया जाता है, जिससे समय एवं श्रम का दुरूपयोग नहीं होता है व बालक की कार्य कुशलता में अपेक्षित वृद्धि होती है ।

5. **मूल्यांकन के लिए (For Evaluation)-** शिक्षा की प्रक्रिया उद्देश्यों से आरम्भ होकर मूल्यांकन पर समाप्त होती है । पाठ्यचर्या के आधार पर अध्यापक अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का मूल्यांकन करता है । समान स्तर वाले बालकों का मूल्यांकन करने का सबसे सरल साधन व आधार पाठ्यक्रम ही होता है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसके महत्त्व को समझाइए।
2. विभिन्न शिक्षा -शास्त्रियों द्वारा पाठ्यक्रम की दी गई परिभाषाओं में से किन्ही तीन को लिखिए।

13.4 पाठ्यक्रम एव पाठ्यचर्या मे अंतर(Difference between Curriculum and Syllabus)

पाठ्यक्रम शब्द का प्रयोग भ्रमवश कभी-कभी सिलेबस या पाठ्यचर्या के अर्थ में कर लिया जाता है । पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम की एक व्यवहारिक रूपरेखा मात्र होती है, जबकि पाठ्यक्रम विस्तृत एवं व्यापक होती है । पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा इसके क्षेत्र को व्यापक एवं विस्तृत बनाती है । बालक द्वारा कक्षा कक्ष के अन्दर व बाहर जो भी अनुभव एवं

ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसे पाठ्यक्रम कहते है । जबकि शिक्षक की सुविधा के लिए जब विषय-वस्तु को व्यवस्थित किया जाता है, तो उसे पाठ्य विवरण (Syllabus) कहा जाता है । पाठ्यक्रम में सभी बौद्धिक विषय, विविध हस्तकौशल, शिल्प, खेलकूद व तकनीकी कौशल सम्पादित किए जा सकते हैं अर्थात कक्षा कक्ष, पुस्तकालय, खेल का मैदान, प्रयोगशाला, श्रव्य दृश्य शाला व विद्यालय प्रांगण में प्राप्त किये जाने वाले सभी अनुभव एवं ज्ञान समाहित होते हैं ।

"पाठ्यक्रम में वह सभी वस्तुएँ आती है जो बालकों के उनके माता पिता एवं शिक्षकों के जीवन से गुजरती हैं । पाठ्यक्रम उन सभी चीजों से बनता है जो सीखने वालों को काम करने के घण्टों से घेरे रहती है । वास्तव में पाठ्यक्रम को गतिमान वातावरण कहा जाता है ।"

- कैसवेल

(The Curriculum is all that goes in the lives of children, Their parents and teachers. The Curriculum is made up of everything that surrounds the learner in all his working hours,infact the Curriculum has been described as the environment in motion)

-Caswell

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या में अंतर स्पष्ट कीजिये ।

13.5 पाठ्यक्रम निर्माण आधार (Bases of Curriculum Construction)

पाठ्यक्रम निर्माण समाज, देश, काल व परिस्थिति की माँग के अनुसार किया जाता है । देश व समाज की माँग के अनुरूप बदलती परिस्थिति में पाठ्यक्रम का निर्माण होने पर ही शिक्षा के मूल उद्देश्य बालक के सर्वांगीण विकास एवं अन्तर्निहित शक्तियों को बाहर निकाल पाना सम्भव होता है । नागरिक शास्त्र विषय के पाठ्यक्रम निर्माण के निम्न आधार हैं -

1. दार्शनिक आधार (Philosophical Basis)- पाठ्यक्रम निर्माण का प्रमुख आधार दर्शन होता है । प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा पाठ्यक्रम के निर्माण पर प्रभाव डालती है । शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ है । उनमें मुख्य विचारधारा निम्न हैं -

(क) **आदर्शवाद एवं पाठ्यक्रम-** प्लेटो ने कहा कि पाठ्यक्रम मानव विचारों, भावों, आदर्शो व मूल्यों पर आधारित हो । रॉस ने कहा कि पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें छात्रों के मनोवैज्ञानिक स्तर को ध्यान में रखकर तीन श्रेणियों में विभक्त कर देना चाहिए । उसी के आधार पर विषय को समाविष्ट किया जाना चाहिए । यह विषय व श्रेणी निम्न है :

1. ज्ञान (Cognition) भाषा, गणित
2. अनुभूति (Affection) संगीत, कला
3. क्रिया (Conation) गृह विज्ञान, विज्ञान

आदर्शवाद का लक्ष्य सभ्यता एवं संस्कृति का ज्ञान कराना है । वह अपने पाठ्यक्रम को इसी लक्ष्य पर आधारित करता है ।

(ख) **प्रकृतिवादी-** रूसो व हरबर्ट स्पेन्सर ने कहा कि व्यक्ति स्वभाव से ही व्यक्तिवादी होता है । इस कारण पाठ्यक्रम में ऐसे विषय समाविष्ट किये जायें जो बालक की विभिन्न अवस्थाओं में होने वाली आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकें । प्रकृतिवादी दर्शन धर्म तथा नैतिकता के बन्धनों को तोड़कर बालक की मूल प्रवृत्तियों को स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित करना चाहता है । यह पाठ्यक्रम में खेलकूद, व्यायाम, पर्यटन, भूगोल, विज्ञान आदि को समाहित करने पर बल देता है।

(ग) प्रयोजनवाद के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण क्रियाशीलता, उपयोगिता व अभिरुचियों के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए । उनके अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जो वर्तमान आवश्यकताओं को पूर्ण करें व भविष्य के लिए उपयोगी हो । पाठ्यक्रम में लचीलापन व क्रियाशीलता हो और उसके प्रति बालक की अभिरूचि हो ।

(घ) यथार्थवाद पुस्तकीय व साहित्यिक ज्ञान की अपेक्षा बालक के विकास के लिए भौतिक विज्ञान व व्यवहारिक ज्ञान को महत्वपूर्ण मानते हैं । उनके अनुसार बालक को दिया जाने वाला ज्ञान उपयोगी हो व जीवन की वास्तविकता परिस्थितियों में आवश्यकताओं व समस्याओं में समायोजन कर सके ।

अंत में हम कह सकते है कि पाठ्यक्रम निर्माण पर दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव पड़ता है ।

2. ऐतिहासिक-आधार (Historical Basis)- इतिहास भूतकालीन घटनाओं का एक व्यवस्थित व महत्वपूर्ण स्त्रोत होता है । इतिहास में भूतकालीन घटनाओं, तिथियों, अनुभवों व परिस्थितियों का उल्लेख होता है, जिसके आधार पर नये निर्णय एवं अनुभवों को क्रियान्वित करने में पूर्व में की गई गलत आवृत्तियों से बचा जा सकता है, जिससे समय, श्रम एवं धन की भी बचत सम्भव हो पाती है ।

3. मनोवैज्ञानिक आधार (Psychological)- मनोवैज्ञानिक विचारधारा इस बात पर बल देती है कि शिक्षा बालक के लिए है न कि बालक शिक्षा के लिए । मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत भिन्नता को महत्वपूर्ण आधार मानते हैं अर्थात् उनके अनुसार एक ही आयु स्तर के बालकों में शारीरिक, मानसिक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असमानता पायी जाती है । अत: समान पाठ्यक्रम के आधार पर सभी को शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए । पाठ्यक्रम को बालक की रूचि, अभिरूचि, योग्यता के अनुकूल होना चाहिए । पाठ्यक्रम लचीला एवं गतिशील होना चाहिए ।

4. समाजशास्त्रीय आधार (Sociological Basis)- पाठ्यक्रम निर्माण में समाज की संरचना की अहम् भूमिका रहती है । समाज की संरचना में संस्कृति, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक-स्तर का भी प्रभाव पड़ता है । पाठ्यक्रम निर्माण में समाज विशेष की संरचना उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है । वास्तव में पाठ्यक्रम सामाजिक स्थिति द्वारा ही संचालित होता है । पाठ्यक्रम निर्माण के लिए समाज के मूलभूत विश्वास, आस्थायें, परम्परायें, रीति रिवाज, आकाक्षायें मूल्य भी पाठ्यक्रम निर्माण हेतु महत्वपूर्ण आधार प्रस्तुत करते है ।

5. वैज्ञानिक आधार (Scientific Basis)- इस विचारधारा के प्रवर्तक हरबर्ट स्पेन्सर हैं । इनके अनुसार व्यक्ति का विकास किसी एक क्षेत्र में न होकर सम्पूर्णता के रूप में होना चाहिए और बालक को जीवन की पूर्ण तैयारी हेतु प्रशिक्षित किया जाना चाहिए । यह विचारधारा ये मानती है कि पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए व साहित्यिक विषयों को गौण । इसके लिए स्पेन्सर ने कहा कि - मानव जीवन की प्रथम क्रिया आत्मरक्षा है, जिसके लिए शरीर-विज्ञान एवं स्वास्थ्य-विज्ञान पढ़ाया जाये । दूसरी क्रिया अप्रत्यक्ष रूप से आत्मरक्षा है, जिसके लिए गणित, समाजशास्त्र व जीवविज्ञान पढ़ाया जाये । तीसरी क्रिया संतान रक्षा से सम्बद्ध है, जिसके लिए गृह विज्ञान, शरीर विज्ञान व मनोविज्ञान पढ़ाया जाये । चतुर्थ वर्ग में सामाजिक, राजनैतिक रक्षा से सम्बद्ध क्रियाऐं, जिसके लिए इतिहास, अर्थशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र का अध्ययन कराया जाये । पाँचवें वर्ग में वह क्रियाऐं हों जो कि अवकाश के समय का सदुपयोग करना सिखाती हैं, जिसके लिए साहित्य, कला, संगीत का अध्ययन कराया जाये ।

मूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख आधार कौन- कौन से है ?
2. पाठ्यक्रम निर्माण के दार्शनिक आधार को स्पष्ट किजिए ?

13.6 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (Outline of National Curriculum)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की इन सिफारिशों के बावजूद कि विभिन्न अवस्थाओं में पोषित व विकसित की जाने वाली दक्षताओं व मूल्यों की पहचान की जाए, स्कूली शिक्षा उन परीक्षाओं द्वारा और अधिक परिचालित होती चली गई, जो महज जानकारी से भरी पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होती है । वर्ष 2000 में पाठ्यक्रम की रूपरेखा की समीक्षा के बाद भी पाठ्यक्रम के और परीक्षाओं की तानाशाही के विवादास्पद मुद्दे हल न हुए। यह समीक्षा उस क्षेत्र में हुए सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तनों पर ध्यान देती हैं और नयी सदी के मोड़ पर स्कूली शिक्षा की भावी आवश्यकताओं को संबोधित करने का प्रयास करती हैं । इस प्रयास में अनेक परस्पर संबंधित आयामों को ध्यान में रखा गया है; जैसे- शिक्षा के लक्ष्य, बच्चों का सामाजिक परिप्रेक्ष्य, ज्ञान की प्रकृति, मानव विकास की प्रकृति और मनुष्य की सीखने की प्रक्रिया ।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा को प्राय: गलत समझा गया है मानो यह एकरूपता लाने के लिए प्रस्तावित दस्तावेज हो । जबकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन. पी. ई.) 1986 और प्रोग्राम ऑफ एक्शन (पी. ओ. ए.), 1992 में स्पष्ट किया गया उद्देश्य इसके ठीक विपरीत था । एन. पी. ई. ने नवीन पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तावित की, ताकि वह ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विकास का जरिया बने जिसमें यह सामर्थ्य हो कि वह भारत के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक वातावरण को दृष्टि में रखते हुए अकादमिक घटकों के साथ सामान्य आधारभूत मूल्य भी सुनिश्चित करे । "एनपीई-पीओए ने 14 वर्ष की आयु तक सभी बच्चों का सार्वभौमिक नामांकन

तथा सार्वभौमिक रूप से उन्हें स्कूलों में टिकाए रखने और स्कूलों में शिक्षा की गुणवत्ता में ठोस सुधार के लिए बाल केंद्रित उपागम का विचार प्रस्तुत किया था" (पी.ओ.ए. पृष्ठ 77) । राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा की खासियत पर बल देते हुए पीओए ने एनपीई की इसी दृष्टि को विस्तारित किया है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम से आप क्या समझते है?
2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के संबंध में किस बात पर बल दिया गया?

13.7 विभिन्न आयोगों की सिफ़ारिशें (Recommendation of Different Commission)

13.7.1 प्राचीन काल में- वैदिक काल, बौद्धकाल, ईसाई मिशनरी के प्रयास, मैकाले का प्रयास, हण्टर आयोग :

वैदिक काल के अनुसार-पाठ्यक्रम:- वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करना था । किन्तु कर्म की भी उपेक्षा नही की गई थी । वेदों में आध्यात्मिकता तथा लौकिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान का वर्णन है । यहाँ पर परा तथा अपरा दोनों ही प्रकार की विधाओं का वर्णन पाते हैं । परा विधा जिसका प्रमुख उद्देश्य आध्यत्मिक विकास करना था । धर्म जीव-आत्मा, परमात्मा, पुराण, दर्शन वेद-वेदांग, नीति-शास्त्र आदि का अध्ययन कराती थी तथा अपरा विधा जो प्रमुख रूप से लौकिक जगत से सम्बन्धित थी, अंक शास्त्र आदि से संबंधित थी । बालक. अपने वर्ण के अनुसार किसी एक विषय में विशेष अध्ययन भी करता था । उदा. ब्राह्मण बालक धार्मिक कृत्यों का विशेष अध्ययन करता था तो क्षत्रिय बालक युद्ध विधा से सम्बन्धित किसी एक कला में दक्षता अर्जित करता था । इस प्रकार, वेद कालीन शिक्षा मानव जीवन के तीनों पहलुओं आध्यात्मिक, मानसिक तथा व्यावहारिक का विकास करती थी ।

उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा के अनुसार पाठ्यक्रम -

इस समय की शिक्षा व्यवस्था में मुख्यत: आध्यात्मिक शिक्षा को ही स्थान प्राप्त था, किन्तु आध्यात्मिक विधाओं (परा-विधाओं) का इस युग में पर्याप्त विकास हो चुका था । परा विधा की अनेक नई नई शाखाओं ने जन्म ले लिया था, पहले की अनेक शाखाओं ने अपना पर्याप्त विकास कर लिया था । ये सभी नवीन व प्राचीन शाखाओं अब पाठ्य विषय बन चुकी थी । परा विद्या में इस समय चारों वेद व्याकरण, गणित, दैव विद्या नक्षत्र-विद्या ज्योतिष, शस्त्र-विद्या, नृत्य संगीत, इतिहास पुराण निस्क्तस्त्राद सर्प विद्या आदि प्रचलित थी, आध्यात्मिक विषयों पर बल देते हुए भी लौकिक विषय अपेक्षित नहीं थे । उस समय के पाठ्यक्रम में लौकिक, धार्मिक व आध्यात्मिक विषय विभाजित थे । इस पर तनिक विस्तार से विचार अपेक्षित है ।

पदार्थ के परिज्ञान में शिक्षा कला व्याकरण, निःशक्त छन्द व ज्योतिष का ज्ञान कराया जाता था कालान्तर में इनकी यांत्रिक आध्यात्मिक व दार्शनिक व व्यावहारिक व्याख्या हेतु ब्राह्मण आख्या उपनिषद तथा सूत्र ग्रन्थों की रचना हुई ।

इसी तरह विद्या, कला, विज्ञान-विषयक, पाठ्यक्रम में वेद वेदांगों के अतिरिक्त विषय को सम्मिलित किया गया था । इसकी जानकारी तत्कालीन धार्मिक ग्रन्थों से ही होती है । अर्थव वेद में इतिहास, पुराण गाथा आदि विषयों का उल्लेख मिलता है । ब्रह्म सूत्र में 32 प्रकार की ब्रह्म विद्याओं का उल्लेख है । यथा गायत्री विद्या, आनन्द विद्या, अन्तरादित्य विद्या आकाश विद्या, प्राण विद्या, इन्द्र प्राण विद्या आदि ।

इसी तरह स्त्री शिक्षा विषयक पाठ्यक्रम में बालकों की भाँति बालिकाओं के उपनयन संस्कार के पश्चात धर्म शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता था । लोपामुद्रा विश्वधारा, सिकता तथा धोवा आदि ने ऋषियों की भाँति ऋचाओं की रचना की थी । धार्मिक पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कन्याओं को ग्राहक सम्बंधी शिक्षा दी जाती थी । इसमें कताई, बुनाई, सिलाई, घरेलू उद्योग-धन्धों, संगीत-नृत्य एवं वादन आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी । विशिष्ट व पूरक विषयक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वैदिक व सूत्र साहित्य से सम्बन्धित पूरक साहित्य का सृजन हुआ । वैदिक धार्मिक ग्रन्थों को लिपिबद्ध करके अध्ययन अध्यापन करना अत्यन्त अवांछित समझा जाता था । लौकिक विषयों का पठन-पाठन में पुस्तकों का प्रयोग वर्जित एवं निन्दनीय नहीं था तथापि लेखन आदि की असुविधा वश मौखिक-विधियों का अनुसरण किया जाता था ।

बौद्ध काल के अनुसार पाठ्यक्रमः- बौद्ध काल में बालकों की प्रवृत्ति सम्प्रेषण सिद्धान्त व पाठ्यसामग्री शिक्षण प्रणाली पर आधारित थी बौद्ध विहारी में सर्वप्रथम वर्णमाला तथा संयुक्ताक्षरों से सम्बंधित, द्वादशाध्यापी का अभ्यास कराया जाता था । इसके बाद व्याकरण, शिल्प चिकित्सा, तर्क एवं अध्यात्मक विषयक शिक्षा प्रचलित थी । भिक्षुओं को वेद-वेदांगों को सहित न्याय, वैश्विक, योग तथा सांख्य आदि आध्यात्मिक व धार्मिक विषयों को अध्ययनार्थ प्रोत्साहित किया जाता था । बौद्ध धर्मानुसार भिक्षुओं को शरीराच्छादन परमावश्यक था । प्रारम्भ में ये लोग भस्म वस्त्र शान आदि से प्राप्त करते थे, किन्तु बाद में भिक्षुओं को ही कताई बुनाई आदि की शिक्षा दी गई । जिससे भिक्षुक स्वावलम्बी हुये, साहित्य कला व विज्ञान विषयक पाठ्यक्रमान्तर्गत जातक ग्रन्थों के अनुसार चिकित्सा, धनुर्विद्या, संगीत विद्या, वास्तु विद्या, मन्त्र विद्या, वशीकरण विद्या दी जाती थी । स्त्री विषयक पाठ्यक्रम में चाण्डालों के अतिरिक्त सभी को ज्ञानार्जन की अनुमति प्रदान विषयक पाठ्यक्रम हेतु प्रसिद्ध थे । जिसमें लौकिक अलौकिक एवं व्यावहारिक, आध्यात्मिक विज्ञान एवं कलाओं में प्रविष्ट व्यवस्था थी । इस काल में ऋषि आश्रम विषयक विशिष्ट पाठ्यक्रम प्रचलित था । धार्मिक व लौकिक पाठ्यक्रम में निवृत्ति मूलक कथन व बौद्ध साहित्य में उपलब्ध होते हैं । विनय, सुतन्त व अधिगम आदि धार्मिक विषयों के साथ ही दार्शनिक ग्रन्थों का अनुशीलन करना पड़ता था । लौकिक पाठ्यक्रम बहुमुखी था । आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, तन्त्र विद्या वास्तु विद्या व विधि शास्त्र आदि लौकिक, पाठ्य विषय थे । इसके अतिरिक्त लोकोपयोगी व्यवसायों (शिल्पों) का शिक्षण प्रदान किया जाता था । यथा-वस्त्र, काष्ठ, आभूषण, कम्भ, चर्म, पत्थर, हस्ति दन्त, शिल्प समूह

आदि । पाठ्यपुस्तकों व हस्तलिपियों का वैदिक कालीन की अपेक्षा पर्याप्त विकास हो गया था । महागग्ग के अनुसार लेखन-कला जीविका भी व्यवसाय का साधन था । भिक्षुओं को शब्द, चिकित्सा, शिल्पासन, माध्यमिक एवं हेतु विद्या की शिक्षा दी जाती थी । लिपि के लिए तरहती का प्रयोग किया जाता था । उच्च शिक्षा में बौद्ध धर्म, जैन धर्म, हिन्दू धर्म दर्शन, आध्यात्मिक, तर्कशास्त्र, नक्षत्रपल, गणन विद्या, खगोल विद्या, औषधि विज्ञान, न्यायशास्त्र, शल्य व्यवस्था एवं प्रशासन की शिक्षा दी जाती थी ।

इसाई मिशनरियों के प्रयास : भारतीय इतिहास का आधुनिक काल अंग्रेजों के आधिपत्य काल से माना जाता है । ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना'भारत से व्यापार करने के उद्देश्य से की गई थी, परन्तु प्लासी एवं बक्सर के युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने पर इसके हाथ में शासन के अधिकार भी आ गए । चूंकि उस समय तक इंग्लैण्ड की सरकार शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का दायित्व नहीं समझती थी, अत: शासक बन जाने पर भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया । परन्तु जो इसाई मशिनीरियाँ भारत. में आकर धर्म-प्रचार के कार्य में जुट गई 'थीं, उन्होंने शिक्षा जैसे शक्तिशाली माध्यम को हाथ से नहीं जाने दिया और देश के विभिन्न स्थानों पर मिशन स्कूल खोलने आरम्भ कर दिए । चूंकि इन मिशनरियों का प्रमुख उद्देश्य भारतीयों को ईसाई बनाने व पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगना था । अत: उन्होंने मिशन स्कूलों का आयोजन पाश्चात्य पद्धति पर किया । शिक्षाक्रम में बाइबिल की शिक्षा के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य, इतिहास तथा दर्शन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया ।

मैकाले के अनुसार पाठ्यक्रम : इस संबंध में उन्होंने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया कि सभी पक्षों का यह कथन है कि भारत में विद्यमान विभिन्न भाषाओं में न तो साहित्य का अंश है और न ही उनमें किसी प्रकार के विज्ञान का ही समावेश है । साथ ही जब तक इन भाषाओं का विकास नहीं होता तब तक अन्य किसी विधि से अंग्रेजी भाषा में लिखित मूल्यवान ग्रन्थों का भाषान्तर किया जाना संभव नहीं है । अत: ऐसे लोगों के बौद्धिक विकास के लिए जिनके पास ऊँचे दर्जे की शिक्षा प्राप्त करने के साधन है । प्रचलित भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देना संभव नहीं । इसके लिए किसी अन्य माध्यम की आवश्यकता है । संस्कृत तथा अरबी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के विरूद्ध अपना मत देते हुए मैकाले ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि- 'अच्छे यूरोपीय साहित्य की अलमारी का एक खण्ड ही भारतवर्ष और अरब के सारे देशीय साहित्य के बराबर मूल्यवान है । इसके विपरीत अंग्रेजी भाषा की शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में मैकाले ने अपना मत देते हुए कहा कि यह राजभाषा होने के कारण पूर्वीय देशों में वाणिज्य-व्यवसाय इसी भाषा के माध्यम से होने के कारण तथा भाषा में अनेक भारतीय पारंगत होने के कारण इसे ही शिक्षा का माध्यम बनाया जाना अधिक औचित्यपूर्ण होगा ।

हण्टर कमीशन के अनुसार पाठ्यक्रम : मार्च 1883 में लगभग 600 पृष्ठों का प्रतिवेदन सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, जिसमें निम्न सुझाव थे-

देशी शिक्षा - देशी शिक्षा से कमीशन का आशय भारतवासियों द्वारा भारतीय प्रणाली के आधार पर संचालित विद्यालयों में दी जाती है । इससे इन विद्यालयों की प्रगति के लिए कमीशन ने सिफारिश की । प्राथमिक शिक्षा-कमीशन की जाँच का प्रमुख विषय प्राथमिक शिक्षा था ।

प्राथमिक - शिक्षा के लिए सुझाव दिये गये कि प्राथमिक-शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाना चाहिए। इसके प्रचार-प्रसार तथा सुधार की व्यवस्था करनी चाहिए । पहाड़ी तथा आदिवासियों की शिक्षा में विशेष रूप से प्रगति करनी चाहिए ।

रिपन ने इंग्लैण्ड की काउन्सिलिंग की भाँति भारत में भी प्राथमिक-शिक्षा जिला बोर्ड तथा म्यूनिसिपल बोर्ड को सौंप दी । प्रत्येक राज्य को पाठ्यक्रम निर्धारित करने की स्वतंत्रता देने की आयोग ने सिफारिश की प्राथमिक शिक्षा की अर्थव्यवस्था के लिए स्थानीय प्रशासन संस्थाओं के सम्मुख सुझाव रखा कि वह अपने बजट में से निश्चित राशि प्राथमिक-शिक्षा के लिए पृथक रखे। प्राथमिक शिक्षालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना के सुझाव दिये गये । प्रान्तीय सरकारों से प्राथमिक शिक्षा के व्यय से ही नॉर्मल स्कूल पर व्यय करने को कहा गया ।

माध्यमिक - शिक्षा-आयोग ने सिफारिश की कि सरकार को माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में पूर्णतया निकल आना चाहिए और भारतवासियों को इसका संचालन सौंप देना चाहिए और उसके लिए उदारतापूर्ण अनुदान देना चाहिए ।

उच्च - शिक्षा-आयोग का प्रमुख क्षेत्र प्राथमिक शिक्षा होने के कारण आयोग ने उच्च-शिक्षा के प्रति कोई सुझाव नहीं दिये । इतनी सिफारिश आयोग ने फिर भी की कि कॉलेज को अनुदान देते समय उनकी आवश्यकता को पूर्णरूप से देख लेना चाहिए ।

विशिष्ट - शिक्षा - आयोग ने विशिष्ट क्षेत्रों में संबंधित शिक्षा के संबंध में भी सुझाव प्रस्तुत किये । नारी-शिक्षा, धार्मिक-शिक्षा, मुस्लिम-शिक्षा, पहाडी तथा आदिवासी-शिक्षा, प्रौढ़-शिक्षा आदि पर विचार प्रकट किये गये । हरिजनों इत्यादि की शिक्षा की भी विशिष्ट व्यवस्था की जाने की सिफारिश की गई ।

13.7.2 आधुनिक काल

डॉ. राधाकृष्णन आयोग (1948) के अनुसार पाठ्यक्रम - बी.ए. पास और बी.ए. आनर्स के पाठ्यक्रमों में अन्तर होना चाहिए । स्नातकोत्तर स्तर पर प्रवेश अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिए । पी.एच.डी. की उपाधि के लिए कम से कम दो वर्ष से कुछ अधिक समय तक अनुसंधान करना आवश्यक हो । विज्ञान में अनुसंधान के लिए विशेष अध्यापकों की नियुक्ति की जानी चाहिए । पाठ्यक्रम में सामान्य शिक्षा का समावेश हो परन्तु साथ ही व्यावसायिक शिक्षण की भी विश्वविद्यालयों में सुविधा होनी चाहिए ।

मुदालियर शिक्षा आयोग (1950-52) के अनुसार पाठ्यक्रम- आयोग लचीले पाठ्यक्रम का समर्थक था । अत: उसने ऐसे पाठ्यक्रम की सिफारिश की जो छात्रों की अभिरुचि आवश्यकताओं तथा जीवन से संबंधित किया जा सके । पाठ्यक्रम केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही प्रदान ना करे तथा उन्हें इस योग्य बना दे कि वे अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करना सीखें । आयोग ने जूनियर हाई स्कूल के लिए भाषाएँ, सामाजिक-शिक्षा, सामान्य-विज्ञान, गणित, शिल्प-कला व संगीत तथा शारीरिक-शिक्षा विषयों की सिफारिश की ।

माध्यमिक विद्यालयों के लिए आयोग ने सात समूह बनाये- 1. मानव विज्ञान, 2. विज्ञान, 3. औद्योगिक विषय, 4. वाणिज्य, 5. कृषि, 6. ललित कलाएँ, 7. गृह विज्ञान । इनमें से छात्रों

को कोई सा एक समूह लेना पड़ेगा । इसके अतिरिक्त भाषा, सामान्य विज्ञान, सामाजिक अध्ययन तथा शिल्प विषय सभी छात्रों को अनिवार्य रूप से पढ़ाने पड़ेंगे ।

कोठारी शिक्षा-आयोग के अनुसार पाठ्यक्रम - आयोग ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए निम्नांकित पाठ्यक्रम निर्धारित किया-

1. निम्न-प्राथमिक - एक भाषा (मातृ भाषा या क्षेत्रीय भाषा) गणित, विज्ञान तथा सामाजिक अध्ययन (पर्यावरण का अध्ययन) सृजनात्मक क्रियाएँ, कार्यानुभव, समाज सेवा तथा स्वास्थ्य सेवा ।

2. उच्च-प्राथमिक - दो भाषाएँ, गणित, सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, कला, कार्यानुभव, समाज सेवा, शारीरिक शिक्षा तथा नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा ।

3. निम्न-माध्यमिक - तीन भाषाएँ विज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, कला तथा उच्च प्राथमिक स्तर के अन्य सभी विषय ।

4. उच्च-माध्यमिक - दो भाषाएँ तथा अग्रलिखित में से कोई अन्य तीन-एक अतिरिक्त भाषा, अर्थशास्त्र, नागरिक-शास्त्र, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित, मनोविज्ञान, कला, समाजशास्त्र, भौतिक तथा रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, गृह विज्ञान तथा निम्न माध्यमिक स्तर के अन्य सभी विषय ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 :

शिक्षा की विषयवस्तु को अनेक प्रकार से सांस्कृतिक विषयवस्तु से संबंधित किया जाएगा । बच्चों की सौन्दर्य, संगीत व परिष्कार के प्रति संवेदनशीलता विकसित की जाएगी । शिक्षा द्वारा सार्वभौमिक मूल्यों का विकास किया जाएगा । 1968 की भाषा नीति को सौद्देश्यपूर्ण ढंग से अच्छी पुस्तकों के उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जाएगा । अच्छी विदेशी पुस्तकों को भारतीय भाषाओ में अनुवादित करने के लिए सहायता दी जाएगी । पुस्तकों की गुणवत्ता सुधारने, पाठकों की पठन क्षमता बढ़ाने, सृजनात्मक लेखन को प्रोत्साहित करने व लेखकों के हितों के संरक्षण हेतु कदम उठाए जाएंगे । पुस्तकालयों की दशा सुधारने के प्रयास किये जाऐगें । बच्चों को चिंतन, तर्क, विश्लेषण व तार्किक संश्लेषण में प्रशिक्षण देने के लिए गणित पढ़ाना चाहिए । विज्ञान शिक्षा को इस प्रकार मजबूत बनाया जाएगा कि बच्चों में पृच्छा, सृजनात्मकता, वस्तुनिष्ठता, जिज्ञासा, सौन्दर्यात्मक, संवेदनशीलता, समस्या व समाधान व निर्णय लेने से संबंधित कौशल विकसित हो सकें व दैनिक जीवन के विविध पक्षों से विज्ञान का संबंध जान सकें-शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए परीक्षाओं का उपयोग किया जाएगा। परीक्षा प्रणाली को इस तरह बदला जाएगा कि वह विद्यार्थियों के विकास के मापन का एक विश्वसनीय व वैध तरीका बन सकें तथा वह शिक्षण व अधिगम में सुधार का एक सशक्त साधन बन सके । इसके लिए परीक्षा में संयोग व व्यक्तिनिष्ठता के तत्त्वों को समाप्त किया जाएगा । स्मरण पर कम बल दिया जाएगा । निरन्तर व व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया अपनाई जाएगी । जिसमें शिक्षा के स्कोलेस्टिक व नान स्कोलेस्टिक पक्षों को शामिल किया जाएगा । परीक्षा संचालन में सुधार किया जाएगा ।' माध्यमिक स्तर से ही सेमेस्टर प्रणाली शुरू की

जाएगी । अंकों की बजाय ग्रेड्स, का प्रयोग किया जाएगा व बाह्य परीक्षाओं की अधिकता को कम किया जाएगा ।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 की समीक्षा हेतु गठित राममूर्ति कमीशन (1992) - शिक्षा की विषयवस्तु मे उभयनिष्ठ सांस्कृतिक, विरासत तथा सांस्कृतिक परम्पराओं में विविधता को शामिल किया जाए । देश की एकता व अखण्डता के लिए प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक स्वभाव, लैंगिक समानता, ईमानदारी, साहस, न्याय, जीवों के प्रति आदर, भिन्न संस्कृतियों व भाषाओं के प्रति आदर आदि आवश्यक मूल्य हैं । शिक्षा की प्रक्रिया व विषयवस्तु इनसे अनुप्राणित होनी चाहिए । मूल्य शिक्षा सम्पूर्ण प्रक्रिया व विद्यालयीन वातावरण का अभिन्न अंग होनी चाहिए ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. वैदिककालीन शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम के स्वरूप को लिखिए।
2. उत्तर वैदिककालीन शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम के बारे में अप क्या जानते हैं?
3. बोध कालीन शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यक्रम के किस पक्ष पर बल दिया गया है?

13.8 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2002 का सार (Summary of Outline of National Curriculum, 2002)

भारत एक राष्ट्र के रूप में अपने बच्चों और अशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए नवीन और प्रभावशाली तरीकों की खोज के प्रति निरन्तर प्रयत्नशील है । बिना किसी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक भेदभाव के सभी समुदायों के सभी लोगों की शिक्षा के संदर्भ में किए गए प्रयासों की सफलता पर अब एक गंभीर बहस राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुनर्जीवित की जा रही है । एक मानवोचित, प्रतिबद्ध, सहभागी और उत्पादक नागरिकों से युक्त समाज-रचना की सार्वभौम और प्रबल आकांक्षा के कारण इन प्रयासों की गति तेज हुई है।

भारत को भी चाहिए कि वह अपने शैक्षिक सरोकारों और प्राथमिकताओं की समीक्षा कर उन्हें अद्यतन बनाए । राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख है "नवीन नीति के विभिन्न मानदंडों के क्रियान्वयन की हर पाँच वर्ष में समीक्षा करना अनिवार्य है । क्रियान्वयन की प्रगति और उससे समय-समय पर उभरने वाली दृष्टियों को सुनिश्चित करने के लिए थोड़े-थोड़े अंतरालों पर आकलन करना आवश्यक होगा ।" बारह वर्ष से भी अधिक समय पूर्व राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या: एक रूपरेखा, 1988 नामक दस्तावेज तैयार किया गया था । कार्य योजना, 1992 में स्पष्ट उल्लेख है कि- "मुख्य सरोकारों से जुड़े कुछ मुद्दों, ज्ञान के उत्कर्ष और शिक्षा शास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों पर बढ़ते हुए जोर की दृष्टि से इसका आधुनिकीकरण करने की जरूरत थी । राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन.सी.ई.आर.टी.) को सलाह दी जाएगी कि वह आठवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के पूर्व पाठ्यक्रम में आवश्यक परिवर्तनों की शुरूआत करें ।" नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) के दस्तावेज में भी पाठ्यक्रम की समीक्षाओं उसके उन्नयन के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए इस कार्य को परिषद् द्वारा किए जाने की बात कही गई है । इन

दस्तावेजों से संदेश ग्रहण करने के अतिरिक्त परिषद् भी एक शीर्षस्थ संस्था के रूप में गंभीरता से यह महसूस करती है कि पाठ्यक्रम-निर्माण केवल एक ही बार किया जाने वाला प्रयास नही हैं, बल्कि यह तो एक **सतत्** प्रक्रिया है, जिसे संपूर्ण सामाजिक, शिक्षा शास्त्रीय और सभी स्तरों पर होने वाले अन्य परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील और उत्तरदायी होना होगा । सच पूछा जाए तो पाठ्यक्रम राष्ट्रीय लक्ष्यों को शैक्षिक अनुभवों में रूपान्तरित करने की एक विधि है।

एन.सी.ई.आर.टी. ने राष्ट्रीय संकल्पों को मान्य किया और संपूर्ण विद्यालय शिक्षा के लिए नवीन पाठ्यक्रम-रूपरेखा विकसित करने का दायित्व किया । सितंबर, 1999 में परिषद् ने अपने आंतरिक संकायों के सदस्यों का एक पाठ्यक्रम-समूह गठित करके यह कार्य शुरू किया । इस समूह के परिषद् मुख्यालय के संकाय के प्रत्येक सदस्य और सभी क्षेत्रीय शिक्षा-संस्थानों से परामर्श करके और सिद्धान्तों एवं शोध पर आधारित सामग्री का अध्ययन करके विद्यालय-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा परिचर्चा दस्तावेज तैयार किया । उनके समृद्ध योगदान से आगे चलकर इस दस्तावेज़ को विकसित करने के कार्य में बड़ी मदद मिली ।

जनवरी, 2000 में समाज के विभिन्न वर्गो के प्रतिनिधियों, शिक्षाविदों, विशेषज्ञों, शिक्षकों, विश्वविद्यालय-विभागों, शोध संस्थानों, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं, प्रशासकों और जिस किसी ने कहीं भी इसे प्राप्त करने की इच्छा की, उन सबको यह परिचर्चा दस्तावेज उनके अवलोकन, उनकी टिप्पणियों और उनके सुझावों के लिए भेजा गया । इसके व्यापक स्तर पर वितरण के लिए पूरा दस्तावेज परिषद् के वेबसाइट पर भी पेश किया गया । इस पर पूरे देश में विस्तार और गहराई के साथ बहस और चर्चा कराई गई । क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर तो अनेक संगोष्ठियाँ आयोजित की गई, साथ ही कुछ संगोष्ठियाँ परिषद् ने भी इसी उद्देश्य से करवाई । इनके संस्थानों, स्वैच्छिक संस्थानों, शिक्षक-संगठनों, अभिभावक-शिक्षक संघों, विशेषज्ञ संस्थाओं और यहाँ तक कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं ने भी इस दस्तावेज पर संवाद किया और अपनी टिप्पणियाँ एवं सुझाव प्रस्तुत किए । इन समस्त चर्चाओं, संवादों, संगोष्ठियों आदि से प्राप्त सुझावों और टिप्पणियों का गहराई से अध्ययन किया गया । उनका विश्लेषण किया गया और उसके पश्चात् इस रूपरेखा को अंतिम रूप देने की प्रक्रिया में उनका यथोचित एवं यथास्थान उपयोग किया गया । इस प्रकार यह एक ऐसा समग्र दस्तावेज बना जिसमें पहली बार उच्चतर माध्यमिक स्तर को भी शामिल किया गया ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा, 1988 में जिन मुख्य सरोकारों और चिंताओं को व्यक्त किया गया था, उन पर इस दस्तावेज में भी पुन: जोर दिया गया । भाषा शिक्षण और शिक्षा के माध्यम से जुड़े मुद्दे, सभी स्तरों के लिए कॉमन स्कूल संरचना की आवश्यकता, सामाजिक समरसता से जुड़े केन्द्रीय मुद्दे, पंथनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता और इन सबकी शैक्षिक प्रक्रिया से संबद्धता या प्रासंगिकता-ही वे मुद्दे हैं, जिन्हें इस दस्तावेज में भी शामिल किया गया है । पूर्व के दस्तावेजों में जो अन्य सरोकार प्रस्तुत किए गए थे, उनका भी विस्तार किया गया है । ताकि इन सरोकारों पर आवश्यक और उचित ध्यान दिया जा सके । सामान्य केन्द्रिक तत्व (कॉमन कोर कम्पोनेंट), सतत् और व्यापक मूल्यांकन, स्वतंत्रता और लचीलेपन के तत्व और व्यावहारिक

शिक्षा आदि कुछ ऐसे सरोकार हैं जो पूर्व के दस्तावेजों में भी मौजूद थे । इस रूपरेखा में कुछ नये मुद्दों पर भी विशेष ध्यान देने का प्रयत्न किया गया है, जो न्यूनतम अधिगम स्तर, मूल्य शिक्षा, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग और व्यवस्था के प्रबंधन एवं उसकी जवाबदेही से जुड़े हुए है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा - 2002 से आप क्या समझते हैं?
2. माध्यमिक स्तर पर राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2002 में माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम मे किस पक्ष पर बल दिया गया है?

13.9 राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2005 का सार (Summary of Outline of National Curriculum, 2005)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की कार्यकारिणी मे 14 एवं 19 जुलाई, 2004 की बैठकों में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम को संशोधित करने का निर्णय लिया । यह निर्णय माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा लोकसभा में दिए गए इस वक्तव्य के अनुसरण में लिया गया कि परिषद को यह संशोधन करना चाहिए । इसी क्रम में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा सचिव ने परिषद के निदेशक को एक पत्र लिखा । पत्र में उन्होंने 1993 की 'शिक्षा बिना बोझ के' रिपोर्ट की रोशनी में विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (एन.सी.एफ.एस.ई)-की समीक्षा करने की आवश्यकता व्यक्त की । इन्हीं निर्णयों के संदर्भ में प्रोफेसर यशपाल की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय संचालन समिति और इक्कीस राष्ट्रीय फोकस समूहों का गठन किया गया । इन समितियो में उच्च शिक्षा संस्थानों के प्रतिनिधि, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के अकादमिक सदस्य, स्कूलों के शिक्षक और गैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि सदस्यों के रूप में शामिल हुए । देश के हर हिस्से में इस मुद्दे पर विचार-विमर्श एवं चिंतन किया गया । इसके साथ ही मैसूर, अजमेर, भुवनेश्वर, भोपाल और शिलांग में स्थित परिषद के क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में भी क्षेत्रीय संगोष्ठियों का आयोजन किया गया । राज्यों के सचिवों, राज्यों की शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद और परीक्षा बोर्ड के सदस्यों से विचार-विमर्श किया गया । ग्रामीण शिक्षकों से सुझाव लेने के लिए एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया । राष्ट्रीय और क्षेत्रीय समाचारपत्रों में विज्ञापन दिए गए, जिससे लोग नये पाठ्यक्रम के बारे में अपनी राय दे सकें और बड़ी तादाद में लोगों की प्रतिक्रियाएँ आई ।

संशोधित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम दस्तावेज का आरंभ रवीन्द्रनाथ टैगोर के निबंध "सभ्यता और प्रगति" के एक उद्धरण से होता है, जिसमें कविगुरू हमें याद दिलाते हैं कि सृजनात्मकता और उदार आनंद बचपन की कुंजी है और नासमझ व्यस्क संसार द्वारा उनकी विकृति का खतरा है । आरंभिक अध्याय में स्वतंत्रता के बाद किए गए पाठ्यक्रम में सुधार के प्रयासों की चर्चा की गई है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन. पी. ई), 1986 में यह प्रस्तावित किया गया था कि राष्ट्रीय पाठ्यक्रम को शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था विकसित करने का एक साधन होना

चाहिए, जो भारतीय संविधान में राष्ट्रीय निर्माण के 'दर्शन' को अपनी आधार भूमि माने । कार्ययोजना (पी. ओ ए.), 1992 ने प्रासंगिकता, लचीलेपन और गुणवत्ता के तत्वों पर जोर देते हुए इसके दायरे को थोड़ा और विस्तृत किया ।

सामाजिक न्याय और समानता के संवैधानिक मूल्यों पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष, समतामूलक और बहुलतावादी समाज के आदर्श से प्रेरणा लेते हुए इस दस्तावेज में शिक्षा के कुछ व्यापक उद्देश्य चिन्हित किए गए हैं । इनमें शामिल हैं-विचार और कर्म की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नयी स्थितियों का लचीलेपन ओर रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक प्रक्रियाओं तथा सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता । अगर शिक्षा को जीने के लोकतांत्रिक तरीकों को सुदृढ़ करना है, तो उसे स्कूल में जाने वाली पहली पीढ़ी की उपस्थिति का भी ध्यान रखना ही होगा, जिसका स्कूल में बने रहना उस संविधान के चलते अनिवार्य हो गया है, जिसने आरंभिक शिक्षा को हर बच्चे का मौलिक अधिकार बना दिया है । संविधान के इस संशोधन से हम पर यह जिम्मेदारी आ गई है कि हम सारे बच्चों को जाति, धर्म संबंधी अंतर, लिंग और असमर्थता संबंधी चुनौतियों से निरपेक्ष रहते हुए स्वास्थ्य, पोषण और समावेशी स्कूली माहौल मुहैया 'कराएँ, जो उनको शिक्षा ग्रहण में मदद पहुँचाएँ तथा उन्हें सशक्त बनाएँ । हमारे शैक्षिक उद्देश्यों और शिक्षा की गुणवत्ता में आज गहरी विकृति आ गई है, इसका प्रमाण है यह तथ्य कि शिक्षा बच्चों और उनके माँ-बाप के लिए तनाव और बोझ का कारण बन गई है । इस विकृति को दुरुस्त करने के लिए पाठ्यक्रम के इस दस्तावेज ने पाठ्यक्रम निर्माण के पाँच निर्देशक सिद्धांतों का प्रस्ताव रखा है (1) ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना; (2) पढ़ाई रटन्त प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना; (3) पाठ्यक्रम का इस तरह संवर्धन करना कि वह बच्चों को चहुंमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए, बजाए इसके कि पाठ्यपुस्तक-केन्द्रित बन कर रह जाए; (4) परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाना और कक्षा की गतिविधियों से जोड़ना; और (5) एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य-व्यवस्था के अंतर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हों ।

आरंभिक कक्षाओं के दौरान हमारे सारे शैक्षणिक प्रयास इस बात पर बहुत निर्भर करते हे कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा (ई. सी. ई.) की योजना पेशेवर दक्षता के साथ बनाई जाए और उसको सार्थक विस्तार किया जाए । दरअसल आरंभिक स्कूली पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में कोई भी सुधार पूर्व प्राथमिक-शिक्षा (ई सी. ई) के बहु परिचित्त सिद्धांतों की रोशनी में ही किया जाना चाहिए । अध्याय 2 में ज्ञान की प्रकृति और बच्चों की सीखने की कार्य नीतियों पर चर्चा की गई है, जो अध्याय 3 में दिए गए उन सुझावों का सैद्धांतिक आधार निरूपित करती है, जो पाठ्यक्रम के विभिन्न क्षेत्रों के लिए दिए गए हैं । यह तथ्य कि बच्चा ज्ञान का सृजन करता है, इसका निहितार्थ है कि पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम, एवं पाठ्यपुस्तकें शिक्षक को इस बात के लिए सक्षम बनाएँ कि वे बच्चों की प्रकृति और वातावरण के अनुरूप कक्षायी अनुभव आयोजित करें, ताकि सारे बच्चों को अवसर मिल पाएँ । शिक्षण का उद्देश्य बच्चे के सीखने की सहज इच्छा

और युक्तियों को समृद्ध करना होना चाहिए । ज्ञान को सूचना से अलग करने की जरूरत है और शिक्षण को एक पेशेवर गतिविधि के रूप में पहचानने की जरूरत है, न कि तथ्यों के रटने और प्रसार के प्रशिक्षण के रूप में । सक्रिय गतिविधि के जरिए ही बच्चा अपने आसपास की दुनिया को समझने की कोशिश करता है । इसलिए प्रत्येक साधन का उपयोग इस तरह किया जाना चाहिए कि बच्चों को खुद को अभिव्यक्त करने में, वस्तुओं का इस्तेमाल करने में, अपने प्राकृतिक ओर सामाजिक परिवेश की खोजबीन करने मे और स्वस्थ रूप से विकसित होने में मदद मिले । अगर बच्चों के कक्षा के अनुभवों को इस तरह आयोजित करना हो, जिससे उन्हें ज्ञान सृजित करने का अवसर मिले तो, हमारी स्कूली व्यवस्था में व्यापक व्यवस्थागत सुधारों की जरूरत होगी (पाँचवीं अध्याय) और इसकी भी कि स्कूल के विषयों और पाठ्यचर्या के क्षेत्रों की फिर से संकल्पना की जाए (तीसरा अध्याय) और स्कूल के लोकाचार की गुणवत्ता को सुधारने के लिए संसाधन जुटाए जाएँ (चौथा अध्याय) ।

स्कूली पाठ्यचर्या के चार सुपरिचित क्षेत्रों- भाषा, गुणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का सुझाव दिया गया है । इस दृष्टि से कि शिक्षा आज की और भविष्य की जरूरतों के लिए ज्यादा प्रासंगिक बन सके और बच्चों को उस दबाव से मुक्त किया जा सके, जो वे आज झेल रहे हैं । यह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज इस बात की सिफारिश करता है कि विषयों के बीच की दीवारें नीची कर दी जाएँ, ताकि बच्चों को ज्ञान का समग्र आनंद मिल सके और किसी चीज को समझने से मिलने वाली खुशी हासिल हो सके । इसके साथ यह भी सुझाया गया है कि पाठ्यपुस्तक और दूसरी सामग्री की बहुलता हो, जिनमें स्थानीय ज्ञान और पारंपरिक कौशल शामिल हो सकते हैं और बच्चों के घर और सामुदायिक परिवेश से जीवंत संबंध बनाने वाले स्फूर्तिदायक स्कूली माहौल को सुनिश्चित किया जा सके । भाषा में त्रिभाषा फार्मूले को लागू करने के फिर से प्रयास का सुझाव दिया गया है, जिसमें आदिवासी भाषाओं सहित बच्चों की मातृभाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति देने पर जोर है । प्रत्येक बच्चे में बहुभाषिक प्रवीणता विकसित करने के लिए भारतीय समाज के बहुभाषिक चरित्र को एक संसाधन के रूप में देखना चाहिए जिसमें अंग्रेजी में प्रवीणता भी शामिल है । यह तभी मुमकिन है जब भाषा का पुख्ता शिक्षाशास्त्र मातृभाषा के उपयोग पर आधारित हो । पढना, लिखना, बोलना और सुनना- ये क्रियाएँ पाठ्यक्रम के सभी क्षेत्रों में बच्चों की प्रगति में भूमिका निभाती है और इन्हें पाठ्यक्रम की योजना का आधार होना चाहिए । आरंभिक कक्षाओं के पूरे दौर में पढ़ने पर जोर देना जरूरी है, जिससे हर बच्चे को स्कूली शिक्षा का ठोस आधार मिल सके ।

गणित की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जिससे बच्चों के वे संसाधन समृद्ध हो जो चिंतन और तर्क मे अमूर्तनों की संकल्पना करने और उनका व्यवहार करने में, समस्याओं को सूत्रबद्ध करने और सुलझाने में उनकी सहायता करे । उद्देश्यों का यह व्यापक फलक उस प्रासंगिक और अर्थपूर्ण गणित को पढ़ाकर तय किया जा सकता है, जो बच्चों के अनुभवों में गुँथी हुई हो । गणित में सफलता को हर बच्चे के अधिकार की तरह देखा जाना चाहिए । इसके लिए गणित के दायरे को और विस्तृत करने की जरूरत है और इसे दूसरे विषयों से जोडने की जरूरत है ।

हर स्कूल को कम्प्यूटर, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और कनैक्टिविटी मुहैया कराने जैसी ढांचागत चुनौतियों का सामना करने की जरूरत है ।

विज्ञान के शिक्षण में इस तरह की तब्दीली की जानी चाहिए कि यह हर बच्चे को अपने रोज के अनुभवों को जाँचने ओर उनका विश्लेषण करने में सक्षम बनाए । परिवेश संबंधी सरोकारों और चिंताओं पर हर विषय में जोर दिए जाने की जरूरत है और यह ढेरों गतिविधियों और बाहरी दुनिया पर की गई परियोजनाओं के द्वारा होना चाहिए । इस प्रकार की परियोजना के माध्यम से निकलने वाली सूचनाओं और समझ के आधार पर भारतीय पर्यावरण को लेकर एक सर्वसुलभ और पारदर्शी आकड़ा-संग्रह तैयार हो सकता है, जो अत्यन्त उपयोगी शैक्षणिक संसाधन साबित होगा । यदि विद्यार्थियों की परियोजनाएँ सुनियोजित हो, तो उनसे ज्ञान सृजित होगा । बाल विज्ञान कांग्रेस की तर्ज पर एक सामाजिक आंदोलन की कल्पना की जा सकती है, जिससे पूरे देश में अन्वेषण की शिक्षा को प्रोत्साहन मिलेगा, जो बाद में पूरे दक्षिण एशिया मे फैल सकता है ।

सामाजिक विज्ञान में पाठ्यचर्या के इस दस्तावेज द्वारा प्रस्तावित उपागम ज्ञान के क्षेत्रों की विशिष्ट सीमाओं को पहचानता है और साथ ही 'पानी' जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों के लिए समाकलन पर जोर देता है । हाशिए पर धकेल दिए गए समूहों की दृष्टि से समाज विज्ञान के अध्ययन का प्रस्ताव करते हुए नजरिए में एक पूरी तब्दीली की सिफारिश की गई है । सामाजिक विज्ञान के सारे पहलुओं में जेंडर के संदर्भ में न्याय और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के मसलों को लेकर जागरूकता तथा अल्पसंख्यक संवेदनशीलता के प्रति सजगता होनी चाहिए । नागरिक-शास्त्र को राजनीति-विज्ञान के रूप में ढालना चाहिए और बच्चों के अतीत और नागरिक अस्मिता की अवधारणा पर इतिहास के प्रभाव के महत्त्व को पहचानना चाहिए ।

पाठ्यक्रम का यह दस्तावेज चार पाठ्यचर्या क्षेत्रों की तरफ ध्यान आकर्षित करता है, जो इस प्रकार हैं-

काम, कला और पारंपरिक दस्तकारियाँ, स्वास्थ्य तथा शारीरिक-शिक्षा एवं शांति । काम के संदर्भ में आरंभिक स्तर से शुरू करते हुए काम को अधिगम से जोड़ने के लिए कुछ बुनियादी कदम सुझाए गए हैं । उनके पीछे आधार यह है कि ज्ञान काम को अनुभव में रूपांतरित कर देता है और सहयोग, सृजनात्मकता और आत्म-निर्भरता जैसे मूल्यों की उत्पति करता है । यह ज्ञान और रचनात्मकता के नए रूपों की प्रेरणा भी देता है । वरिष्ठ कक्षाओं में स्कूल के बाहर के संसाधनों को औपचारिक मान्यता देने की सिफारिश है, ताकि उन बच्चों को लाभ पहुँच सके, जो आजीविका से सीधे जुड़ी हुई शिक्षा का चुनाव करते हैं । स्कूल के बाहर की आजीविका संस्थाओं को औपचारिक मान्यता की जरूरत है, जिससे वे बच्चों को ऐसा स्थान उपलब्ध करवाएँ, जहाँ बच्चे औजारों और दूसरे साधनों से काम करें । दस्तकारियों के मानचित्रीकरण की सिफारिश की गई है, जिससे उन इलाकों की पहचान की जा सके जहाँ बच्चों को स्थानीय कारीगरों के सहारे दस्तकारियों में प्रशिक्षण दिया जा सकता है ।

हर स्तर पर विषय के रूप में कला को जगह दिए जाने की सिफारिश की गई है, जिसमें गायन, नृत्य, दृश्य कलाएँ और नाटक चारों पहलू शामिल हैं । पर यहाँ भी जोर परस्पर-

क्रियात्मक पद्धतियों पर होना चाहिए न कि प्रशिक्षण पर । क्योंकि कला शिक्षण का उद्देश्य सौंदर्यात्मक और वैयक्तिक चेतना को प्रोत्साहित करना है और विविध रूपों में खुद को व्यक्त करने की क्षमता को बढ़ावा देना है । भारतीय पारंपरिक दस्तकारियाँ आर्थिक और सौंदर्यपरक मूल्यों के अर्थ में स्कूली शिक्षा के लिए प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है । यह तथ्य पहचाना जाना चाहिए ।

स्कूलों में बच्चे की कामयाबी उसके पोषण और सुनियोजित शारीरिक गतिविधि के कार्यक्रमों पर निर्भर होती हैं । इसीलिए जरूरी संसाधनों और स्कूल के समय को मध्याहन भोजन कार्यक्रम को सुदृढ़ बनाने में लगाना चाहिए । यह सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रयासों की जरूरत होगी कि स्वास्थ्य और शारीरिक-शिक्षा के कार्यक्रमों में शाला पूर्व अवस्था से लेकर आगे तक लड़कों की तरह ही लड़कियों की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाए ।

पुरी दुनिया में बढ़ती असहिष्णुता और मतभेदों को सुलझाने के तरीके के रूप में हिंसा की ओर बढ़ते रुझान को देखते हुए इस बात की सिफारिश की गई है कि शांति को राष्ट्रीय निर्माण की पूर्व शर्त और एक सामाजिक संस्कार के रूप में समग्र मूल्य संरचना के तौर पर स्वीकार किया जाए, जिसकी आज अत्यधिक प्रासंगिकता हैं । एक लोकतांत्रिक और न्यायपूर्ण संस्कृति मे बच्चों के समाजीकरण के लिए, शांति के लिए शिक्षा की संभावनाओं को विभिन्न गतिविधियों के द्वारा हर स्तर पर और हर विषय में विषयों के विवेकपूर्ण चुनाव के जरिए साकार किया जा सकता है । शांति के लिए शिक्षा को शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में शामिल करने की सिफारिश की गई है ।

स्कूल के माहौल को पाठ्यक्रम के एक पहलू की तरह देखा गया है क्योंकि यह बच्चों को शिक्षा के उद्देश्यों और सीखने की उन युक्तियों के लिए तैयार करती है जो स्कूल में सफलता के लिए जरूरी हैं । एक संसाधन के रूप में स्कूल के समय को लचीले ढंग से नियोजित किए जाने की जरूरत है । स्थानीय स्तर पर नियोजित लचीले स्कूली कलेण्डर और समय सारणी की सिफारिश की गई है ताकि परियोजना और प्राकृतिक और पारंपरिक धरोहर वाले स्थलों के लिए भ्रमण जैसी विविध प्रकार की गतिविधियों के लिए मौका मिल सके । इस बात की कोशिश करनी होगी कि बच्चों के लिए सीखने के अधिक संसाधन तैयार किए जाएँ, खासकर स्कूल और शिक्षक के लिए संदर्भ पुस्तकालय हेतु स्थानीय भाषाओं में किताबें और संदर्भ सामग्रियाँ उपलब्ध हों और बच्चों की अंतःक्रियात्मक स्तर पर विकल्पों में बहुलता और लचीलेपन के महत्त्व पर जोर देता है और बच्चों को बंद खाँचों में डाल देने की स्थापित प्रवृत्ति को हतोत्साहित करता है, क्योंकि इससे बच्चों के खास कर ग्रामीण इलाकों के बच्चों के अवसर सीमित हो जाते हैं ।

व्यवस्थागत सुधारों के संदर्भ में यह दस्तावेज पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ करने पर बल देता है । गुणवत्ता और जवाबदेही बढ़ाने के माध्यम के रूप में भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए एक अधिक सुनियोजित रुख अपनाकर यह किया जा है । पर्यावरण से जुड़ी विविध स्कूल-आधारित परियोजनाएँ पंचायती राज संस्थाओं के लिए एक ऐसा ज्ञान भण्डार हो सकती है, जिसके आधार पर वे स्थानीय पर्यावरण की बेहतर साज-संभाल कर उसे पुनर्जीवित कर सकते हैं । गुणवत्ता के स्तर को ऊपर उठाने के लिए स्कूली स्तर पर अकादमिक नियोजन

और नेतृत्व जरूरी है और खण्ड एवं संकुल स्तर पर भूमिकाओं में विभाजन करना बहुत ही आवश्यक है । चट्टोपाध्याय कमीशन (1984) द्वारा सुझाए गए पेशेवर मानकों में ढीलापन लाने की हाल की प्रवृत्ति को रोकने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण में क्रांतिकारी परिवर्तन की जरूरत हैं । सेवापूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों को ज्यादा लंबी अवधि का तथा अधिक समग्रता लिए हुए होना चाहिए, ताकि बच्चों का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने के लिए पर्याप्त अवसर और स्कूलों में इंटर्नशिप के द्वारा शिक्षा शास्त्रीय सिद्धांतों को व्यवहार से जोड़ने के पूरे मौके मिल सकें ।

पाठ्यक्रम को स्वीकृत करने के लिए सबसे जरूरी व्यवस्थागत कदम होगा परीक्षाओं में सुधार जिससे खासकर दसवीं और बारहवीं कक्षा में बच्चों और उनके माता-पिता पर बढते मनोवैज्ञानिक दबाव की गहराती समस्याओं का कोई समाधान निकाला जा सके । इसके लिए जो विशेष कदम उठाने जरूरी हैं वे हैं प्रश्न पत्र के स्वरूप का पूरा परिवर्तन, जिससे तर्कशक्ति और रचनात्मक क्षमताओं को आकलन का आधार बनाया जाए न कि रटने की क्षमता को । साथ ही पारदर्शिता और आंतरिक आकलन को बढ़ावा देते हुए परीक्षाओं को कक्षा की गतिविधियों से भी जोड़ने की जरूरत होगी कि ऐसी युक्तियाँ खोजी जाएँ, जो बच्चों को अलग-अलग स्तर की उपलब्धियों का विकल्प लेने को प्रेरित कर सके । बोर्ड-पूर्व परीक्षाओं पर अतिरिक्त जोर को भी हतोत्साहित किए जाने की जरूरत है ।

स्वमूल्यांकन प्रश्न (Self Evaluation Question)

1. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा-2000 से आप क्या समझते हैं?
2. माध्यमिक स्तर पर राष्ट्रीय पाठ्यक्रम 2000 में माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में किस पक्ष पर बल दिया गया हैं?

13.10 सारांश (Summary)

वर्तमान समय में शिक्षा का स्वरूप पूर्णतया बाल केन्द्रित हो गया है । शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना है । शिक्षा के इस महत्वपूर्ण उद्देश्य हेतु पाठ्यक्रम महत्वपूर्ण कड़ी एवं आधार होता है ।

पाठ्यक्रम शब्द अंग्रेजी Curriculum शब्द का हिन्दी रूपांतरण है । Curriculum शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द Currere से हुई है, जिसका अर्थ है 'दौड़ का मैदान' (Race Course) । इस प्रकार पाठ्यक्रम से आशय बालक के लिए उस दौड़ के मैदान के समान है, जिसमें दौड़ते हुए वह शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

शिक्षा एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है, जिसमें तीन महत्वपूर्ण घटक होते हैं - शिक्षक, शिक्षार्थी व पाठ्यक्रम । शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य होने वाली अंतःक्रिया में पाठ्यक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

पाठ्यक्रम शब्द का प्रयोग भ्रमवश कभी-कभी सिलेबस या पाठ्यचर्या के अर्थ में कर लिया जाता है । पाठ्यचर्या पाठ्यक्रम की एक व्यवहारिक रूपरेखा मात्र होती है जबकि पाठ्यक्रम विस्तृत एवं व्यापक होता है । पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा इसके क्षेत्र को व्यापक एवं विस्तृत बनाती है । बालक द्वारा कक्षा कक्ष के अन्दर व बाहर जो भी अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त

किया जाता है, उसे पाठ्यक्रम कहते हैं । जबकि शिक्षक की सुविधा के लिए जब विषय वस्तु को व्यवस्थित किया जाता है, तो उसे पाठ्य विवरण (Syllabus) कहा जाता है ।

पाठ्यक्रम निर्माण समाज, देश, काल व परिस्थिति की माँग के अनुसार किया जाता है। इसके मुख्य आधारों के अन्तर्गत दार्शनिक आधार, ऐतिहासिक आधार, मनोवैज्ञानिक आधार, समाजशास्त्रीय आधार, वैज्ञानिक आधार मुख्य हैं ।

वैदिक काल से ही पाठ्यक्रम के संबंध में समय-समय पर सुझावों व मार्गदर्शन का सिलसिला जारी है । इसके पश्चात् उत्तर वैदिक काल, बौद्ध-काल, मध्य-काल में भी शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में समय-समय पर विशेषज्ञों, विद्वानों द्वारा अपने विचार व सुझाव शिक्षा क्षेत्र को दिए गए । ब्रिटिश काल में मिशनरियों, लार्ड मैकाले, हण्टर आयोग द्वारा प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में अपने मत व अभिशंसाएं प्रस्तुत की गई । स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में डॉ. राधाकृष्णन आयोग द्वारा उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की गई । देश की स्कूली शिक्षा के संबंध में मुदालियर शिक्षा आयोग द्वारा पाठ्यक्रम के संबंध में सुझावों के अन्तर्गत अनेक विषयों की पढ़ाई माध्यमिक स्तर पर करवाये जाने संबंधी संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गई । राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी शिक्षा आयोग) द्वारा प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में नये विषयों व पाठ्यवस्तु को क्रियान्वित किए जाने की सिफारिश की गई । नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में सामाजिक विज्ञान विषय सहित प्रबंधन, शैक्षिक तकनीकी भाषा इत्यादि विषयों के पाठ्यक्रम के संबंध में अनेक सिफारिशें की गई ।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा हेतु गठित राममूर्ति कमीशन ने पाठ्यक्रम के संबंध में अपनी संस्तुतियाँ की गई ।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2000 में शिक्षा के सरोकारों को प्राथमिकता देते हुए विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम में बदलाव करने संबंधी टिप्पणियाँ व सुझाव प्रस्तुत किए गए । इसी तरह राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2005 में भी पाठ्यक्रम संबंधी अनेक सुझाव व संस्तुतियाँ प्रस्तुत की गई हैं । जिसके अन्तर्गत गणित, विज्ञान, सामाजिक-विज्ञान के विषयों के उपागमों व ज्ञान के नये क्षेत्रों को पहचानने संबंधी अनुशंसा की गई है । इसी तरह पारम्परिक दस्त कार्यो, स्वास्थ्य व शारीरिक शिक्षा तथा शांति की शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में अनेक सिफारिशें प्रस्तुत की गई।

मूल्यांकन प्रश्न (Evaluation Question)

1. पाठ्यक्रम की अवधारणा स्पष्ट कीजिए ।
2. विद्यालयी शिक्षा में पाठ्यक्रम का महत्व लिखिये ।
3. यदि आपको अपने विषय (जिसका आप शिक्षण करते हैं) के पाठ्यक्रम निर्माण समिति का सदस्य नियुक्त किया जाये तो आप का पाठ्यक्रम निर्माण के किन आधारों को प्रमुखता देंगे?
4. लार्ड मैकाले के द्वारा पाठ्यक्रम के संबंध में क्या विचार प्रस्तुत किए गए ?

5. डॉ. राधाकृष्णन आयोग के अनुसार उच्च शिक्षा के संबंध में की गई मुख्य सिफारिशें क्या हैं?
6. विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा बताई गई किन्हीं पाँच अभिशंसाओं को लिखिये ।
7. नई शिक्षा नीति 1986 में विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम के किन नये क्षेत्रों का उल्लेख किया गया ?
8. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा 2005 में शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम के संबंध में क्या प्रमुख सिफारिशें की गई?

13.11 संदर्भ ग्रन्थ (References)

1. Agrawal, J.C. (1990) : Curriculum Reforms in India,Daoba House, Delhi.
2. Burner, J.S (1960/1977) :The Process of Education, Harvard University Press.
3. Cronback, J.Lee (1964) : Evaluation for Course Improvement in New Curricula, Harper & Row, New York.
4. D.Warwick (1975) : Curriculum Structure of design, University of London Press.
5. Eisner, E. W.(1979) : The Education Imagination, Macmillan, New York.
6. IGNOU (1992): Curriculum Development for Distance Education,(ES-316), Blocks I 1 and 2, New Delhi.
7. J.Dewey (1966) : The child & the Curriculum-The School & Society Phoenix, USA.
8. Kelly, A.V. (1989) : The Curriculum :Theory and Practice,Paul Champman Publishing, London.
9. Mamidi M.R. and Ravishankar, S.(1984) : Curriculum Development and Education Techonology,Sterling Publishers, New Delhi.
10. Orsntein, C. &Hunkins P.(1988) : Curriculum, Foundations, Principles and Issues,New Jersey, U.K.
11. Sharper, D.K. (1988): Curriculum Traditions and practices Routeledge, London.
12. Stenhouse,I.(1975) : An Introduction to Curriculum Research and Development, Henemann,London.

13. Wheeler, D.K. (1967) : Curriculum Process, University of London Press.

ISBN No. 13/978-81-8496-102-7